आत्मोद्गार

(एक चिन्तन)

आत्मोद्गार

(एक चिन्तन)

(धर्मम् शरणम् गच्छामि)

लेखक -

चन्दरदास

प्रकाशक - 'चन्द्र प्रकाशन' ज्ञानदीप विद्यापीठ
म. न. 647, विद्यानगर, लालचौकी
खण्डवा (म. प्र.)
☎ : (0733) 2246795

आत्मोद्गार

वर्ष - 2003

संस्करण - प्रथम

मूल्य - 120/- (एक सौ बीस रूपये)

मुख पृष्ठ - आत्मोद्गार

वितरक - चन्द्र प्रकाशन, खण्डवा

चित्र - जिला सहकारी संघ के सौजन्य से।

मुद्रक - **जिला सहकारी संघ मुद्रणालय,**
रामेश्वर रोड़, खण्डवा ☎ :(0733)2223374

आत्म निवेदन

प्रिय श्रद्धालु पाठकों ! आत्मोद्‌गार मात्र उपदेश नहीं है बल्कि मानव जीवन जीने की एक शैली है। आज मानव अपने स्वाभाविक जीवन जीने की शैली को भूल गया है। वह कामना और ममता में, राग और द्वेष में, काम और क्रोध में, मान और अपमान में इतना डूब गया है कि वह स्वयं को ही भूल गया है। उसे यह भी ज्ञात नहीं है कि मैं कौन हूँ, मुझे क्या करना है, मैं कहाँ से आया हूँ। मुझे क्या पाना है और मैं क्या पा रहा हूँ। शान्ति क्या है और कहाँ मिलेगी- बाहर मिलेगी या भीतर मिलेगी, भौतिकता में मिलेगी या आध्यात्मिकता में मिलेगी ? धर्म क्या है और अधर्म क्या है ? पाप क्या है और पूण्य क्या है ? पाप और पूण्य आत्मा द्वारा होता है या मन द्वारा होता है ? आत्मा क्या है और परमात्मा क्या है ? सृष्टि का सृजन कब, कैसे और क्यों हुआ ... आदि अनेक प्रश्न हैं जिस पर मानव चिन्तन करना प्रायः छोड़ चुका है। वह भौतिकता के पीछे ऐसा दीवाना हो गया है कि आध्यात्मिकता का उसे ज्ञान ही नहीं है। परन्तु उसे यह नहीं पता है कि इन आध्यात्मिक प्रश्नों का उत्तर बिना ढूँढे मानव, मानव नहीं हो सकता। मानव कहलाने के लिये उसे इन प्रश्नों का उत्तर खोजना होगा।

कुछ मानव स्थूल दृष्टि से दीखने वाले जगत को ही सत्य मानते हैं और जो नहीं दीखता उसे कल्पना मात्र मानते हैं। कोई कहता है कि आत्मा परमात्मा का अंश है, तो कोई कहता है कि आत्मा परमात्मा का पुत्र है। कोई कहता है कि आत्मा निर्लिप्त है तो कोई कहता है कि आत्मा लिप्त है। कोई कहता है कि आत्मा पाप-पूण्य से ऊपर एक नित्य शुद्ध प्रकाश है तो कोई कहता है कि आत्मा पाप-पूण्य का जिम्मेदार है। कोई कहता है कि आत्मा ही मन द्वारा संपूर्ण संकल्प-विकल्प करता है परन्तु कोई कहता है कि मन ही संपूर्ण संकल्प-विकल्प करता है, आत्मा शुद्ध और पवित्र है। उसे संकल्प-विकल्प से कोई लेना-देना नहीं है। इस प्रकार आत्मा के सम्बन्ध में अनेक धारणायें हैं। प्रिय पठकों ! अपनी-अपनी बुद्धि है, अपना-अपना मत है। अपने ढंग से सोचने के लिए सभी स्वतंत्र हैं। जैसा चाहें वैसा सोचें। परन्तु एक बात सभी पंथ वालों ने मानी है कि पाप या पूण्य कैसे भी हुआ हो परन्तु उसका फ़ल आत्मा को ही भोगना पड़ता है। मन, बुद्धि, कर्म और अहंकार (संस्कार) भले ही मृत्यु के पश्चात् भी आत्मा के साथ बने रहें परन्तु पाप या पूण्य का फल उन्हें भोगना नहीं पड़ता। फल तो आत्मा ही भोगता है। मरणोंपरान्त यमलोक में

आत्मा को ही जाना पड़ता है। उसे ही अपने सतकर्म या दुष्कर्म के अनुसार पूण्य या पाप को भोगना पड़ता है, उसे ही स्वर्ग या नर्क की यात्रा करनी पड़ती है। कर्मों के अनुसार आत्मा का ही पुनर्जन्म होता है और उससे ही अगली योनि का निर्धारण होता है।

प्रिय श्रद्धालु पाठकों! यदि आत्मा ही कर्म-फल भोग रहा है तो कर्ता आत्मा ही है। क्योंकि जो कर्ता होता है उसे ही फल मिलता है, उसे ही परिणाम भुगतना पड़ता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सब कर्ता-धर्ता तो आत्मा ही है। इसलिए आत्मा अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा किये गये सुकर्म को देखकर प्रसन्न होता है और कुकर्म को देखकर दुखी होता है। अर्थात उसे अपने द्वारा किये गये कुकर्मों को देखकर पश्चाताप होता है। वह चीत्कार उठता है। उसे अपार कष्ट होता है। इस स्थिति में वह स्वयं ही अपने को समझाने लगता है- यह काम करना चाहिए, यह काम नहीं करना चाहिए, यह काम अच्छा है, यह काम बुरा है, ऐसा काम करने से शान्ति और आनन्द मिलेगा और ऐसा काम करने से अशान्ति और दुख मिलेगा, इस रास्ते पर चलने से कल्याण होगा और इस रास्ते पर चलने से कल्याण नहीं होगा, आदि-आदि।

आप अपने स्वयं के जीवन में भी अनुभव करते होंगे कि जब कभी बुरे कर्म का विचार मन में आता है तो अन्दर से आवाज उठती है कि यह कर्म बुरा है, इसे मत करो। और अगर बुरा कर्म हो गया है तो अन्तरात्मा को पछतावा होता है। वह पछताता है कि ऐसा कर्म नहीं करना चाहिए था। ऐसा कर्म करके मैंने गलत किया है। लेकिन जो हो गया सो हो गया। उसका फल तो अवश्य मिलेगा, चाहे फल अभी मिले या बाद में मिले, उसे तो आत्मा को भुगतना ही पड़ेगा। फल का कभी नाश नहीं होता। पश्चाताप करने से फल कम भी नहीं होता। पछताने से भविष्य में फिर बुरा कर्म नहीं होगा, यह भी निश्चित नहीं है। जीवन में फिर बुरा कर्म न हो इसके लिए आत्म-विश्वास जरूरी है, दृढ़ संकल्प जरूरी है, पूर्ण आस्था होना आवश्यक है। मेरा आत्मा मुझसे यही तो कहता है। वह जो कुछ भी कहता है उसे ही मैंने इस पुस्तक में लिखा है। वह कहता है कि स्वयं को पहचानों, सत्य को जानो और असत्य का त्याग करो। व्यर्थ के विवाद में मत पड़ो। द्वन्द से दूर रहो। तुम आत्मा हो, देह नहीं हो - इस सत्य तत्व को पूर्ण आस्था, दृढ़ संकल्प और आत्म विश्वास से मानो। जगत नश्वर है, माया का बन्धन है, इस बन्धन में तुम मत बधो।

प्रिय श्रद्धालु पाठकों! आज मानव इस जग-बंधन में फस कर आत्मा को ही भूल गया है। जो जानना चाहते हैं वे अनावश्यक विवाद में पड़े हुए हैं। विभिन्न पंथों की

परमात्मा के विषय में अपनी अलग-अलग राय है। कोई कहता है कि परमात्मा कण-कण में विद्यमान है तो कोई कहता है कि परमात्मा आत्मज्ञानी संतो की पुकार पर परमधाम से ततक्षण आ जाता है। अर्थात कण-कण में विद्यमान न हो कर परमधाम में विराजमान रहता है। कोई उस परमात्मा को साकार मानता है तो कोई निराकार मानता है। परन्तु यह विवाद हमारे जीवन का उद्देश्य नहीं है। हमारे जीवन का उद्देश्य है कि जब हम पूर्ण आस्था, विश्वास और समर्पण के साथ उस परमात्मा को पुकारें तो वह हमें दर्शन दे। हमारा उद्देश्य ईश्वर दर्शन से है; न कि वाद-विवाद में पड़ने से।

एक बात और, हम अक्सर अपने धर्म को श्रेष्ठ और दूसरे के धर्म को तुच्छ समझते हैं। परंतु ऐसा है नहीं। सभी धर्मों की उत्पत्ति देव आत्माओं के द्वारा हुई है। सभी धर्मों ने सत्य को स्वीकार किया है और असत्य की निन्दा की है। सभी धर्मों का एक ही उद्देश्य है - परमात्म-तत्व की प्राप्ति। रास्ता अलग-अलग है, उसे प्राप्त करने की शैली अलग-अलग है परन्तु उद्देश्य सबका एक है। स्थान एवं परिस्थिति विशेष के कारण भगवत-स्मरण के ढंग में अन्तर अवश्य है परन्तु लक्ष्य सबका एक है।अलग-अलग भाषा होने से कोई उसे भगवान कहता है तो कोई खुदा कहता है, कोई वाहे गुरु कहता है तो कोई गाड कहता है। परन्तु ये सभी नाम उसी एक परमेश्वर के हैं, जिनके द्वारा इस संसार की रचना हुई है। उसे पाने के लिए चाहे मंदिर जाओ, चाहे मस्जिद जाओ, चाहे गुरुद्वारे जाओ, चाहे गिरजाघर जाओ, चाहे पहाड़ पर जाओ, चाहे जंगल जाओ, चाहे घर में ढूँढो, चाहे गुफा में ढूँढो- सब जगह वह एक ही परमात्मा समान रूप से मिलेगा। वही एक परमात्मा आपकी मनो-भावना के अनुरूप तुम्हारे समक्ष प्रगट होगा। संत, महात्मा, साधू, संयासी, पीर, फकीर सभी इस तथ्य को जानते हैं। इसी कारण उनके लिए सारा संसार एक है। उनके लिए सब धर्म एक है। वे सदा द्वन्द से मुक्त रहते हैं। उन्हें संसार का मोह बाँध नहीं पाता। वे सदा सभी जगह स्वच्छन्द बिचरते हैं। वे धर्म, जाति, वर्ण, सम्प्रदाय आदि से मुक्त सदा आत्मराम में मस्त रहते हैं। उनकी न किसी से दोस्ती होती है और न किसी से बैर होता है। वे युग द्रष्टा होते हैं। वे सत्य को पहचानते हैं। वे हर जीव के अन्दर बैठे परमात्मा को देखते हैं। वे जीव के शरीर को नहीं देखते। उनके लिए शरीर तो नश्वर है, एक न एक दिन नष्ट हो जाने वाला हैं, उसे क्या देखना। वे शाश्वत परमात्मा को देखते हैं। इसलिए वे अमर होते हैं।

इसी सत्य-तत्व को मेरा आत्मा अपने स्वयं से कह रहा है। वह अपने स्वयं को जगा रहा है। क्योंकि बिना स्वयं को जगाये दूसरों को कैसे जगा सकता है। आप भी अपने

अन्दर झाँकिये। अपने सोये हुए आत्मा को जगाइये। आत्मा के जगते ही आप सभी द्वन्दों से मुक्त हो जायेंगे। आप के अन्दर से अपने-पराये का भेद मिट जायेगा। सारा संसार आप को ईश्वरमय दीखने लगेगा। आप सुख-दुख, हानि-लाभ, जय-पराजय से मुक्त होकर समत्व योग में प्रतिष्ठित हो जायेंगे। आप की आत्मा बार-बार जन्म ले चुकी है। उसको जीवन के तमाम उतार-चढ़ाव का अनुभव है। अच्छाई और बुराई से उसका पाला पड़ चुका है। इसलिए उसकी बात को सुनो। अगर आप अपना कल्याण चाहते हो तो उसके संकेत को समझो। अगर वह आत्मा कुछ कह रहा है तो वह केवल मेरे लिए नहीं कह रहा है, वह तो सभी आत्माओं के प्रति कह रहा है। चूँकि सभी आत्माएँ एक हैं, एक परमात्मा के अंश हैं, इसलिए हे श्रद्धालु पाठकों! कृपया आप अपनी आत्मा की आवाज को सुनो। उसके जन्म-जन्मान्तर के अनुभव से कुछ सीखो। वह आपका अपना है, इसलिए वह आपको सही रास्ता बतायेगा। वह आप को परमात्मा की राह पर ले जायेगा। उसी राह पर चल कर आप का कल्याण होगा, आप मुक्ति को प्राप्त कर सकोगे।

प्रिय श्रद्धालु पाठकों! इस पुस्तक को पढ़कर आप इसे सत्य मत मान लेना। आप इस पर चिन्तन करना। चिन्तन से सत्यता अपने आप सामने आ जायेगी। आपको किस रास्ते पर चलना है, आपको किस लक्ष्य की प्राप्ति करनी है, आप की मंजिल किस दिशा में है- ये सब तथ्य आपके सामने अपने आप आ जायेंगे। मेरा आपसे यही निवेदन है कि आप आत्म चिन्तन करें। चिन्तन से ही आपके जीवन की सारी लौकिक और पारलौकिक समस्यायें सुलझ सकेंगी। आत्म-चिन्तन से ही आपको संतोष, शान्ति और आनन्द की प्राप्ति हो सकेगी। मेरी भगवान से यही प्रार्थना है कि वह आप को चिन्तन करने की शक्ति दे ताकि आपका कल्याण हो सके।

आपका-
चन्दरदास

शुभाशीष
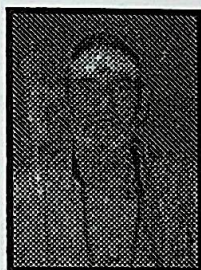
ओम् नमो नारायण !

परमात्मा की जब असीम कृपा होती है तब आत्मा की आवाज भक्त को सुनाई पड़ती है। 'आत्मोद्गार' ऐसे ही असीम कृपा पात्र भक्त की आत्मिक आवाज है जिसे उसने अपने अंतर में सुना है। जिसका उसने अनुभव किया है और जिसके अनुसार वह अपना जीवन जीआ है। वर्तमान समय में परमात्म-तत्व की सरलतापूर्वक व्याख्या करने वाले संत महात्माओं का प्राय: अभाव ही है। जिससे साधकों को सत पथ पर चलने में एवं लक्ष्य तक पहुँचने में तथा उचित मार्ग दर्शन के अभाव में विलम्ब होता है। ऐसी स्थिति में अत्यन्त सरल एवं सुबोध भाषा-शैली में रचित यह पुस्तक अवश्य मानव समाज का पथ प्रदर्शक सिद्ध होगी, ऐसी मेरी हार्दिक शुभकामना है। प्रस्तुत पुस्तक में लोक कल्याण की भावना निहित है। परम शान्ति प्राप्त करने वाला हर साधक चाहे वह किसी भी देश, काल या परिस्थिति का क्यों न हो, उसे इस पुस्तक को पढ़कर अवश्य शान्ति की प्राप्ति होगी। यह पुस्तक समस्त जाति, संप्रदाय, वर्ण एवं वर्ग के भेदों से ऊपर उठकर 'समत्वयोग' का संदेश देती है। मैं इसके उज्ज्वल भविष्य हेतु हृदय से आशीर्वाद देता हूँ और कामना करता हूँ कि यह रचना जन-जन के हृदय में भगवान के प्रति अटूट श्रद्धा, विश्वास, प्रेम और आस्था को युग-युगान्तर तक सुदृढ़ करती रहे। मेरी समस्त साधक एवं सिद्ध भक्तों से यह अनुरोध है कि इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें और इसमें समाहित ज्ञानामृत का रसपान कर अमरत्व को प्राप्त करें। ऐसी अनुपम और भगवत प्रिय पुस्तक की रचना के लिए मैं प्रिय भक्त चन्दरदास को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

परम पूज्यनीय स्वामी श्री श्यामदेवजी महाराज
भृंगदेव आश्रम, संकटमोचन, वाराणसी, उ.प्र.

समर्पण

है समर्पित आत्मोद्गार वहीं जहँ जीवन ज्योति सदा जलती,
जिसकी आत्मा नित आनन्द में सत-चित्त पुकार किया करती,
सुनता जो अनाहद नाद सदा सत-प्रेम नदी हिय में बहती,
कह चन्दरदास वही प्रभु वास जहाँ गुरु प्यास सदा रहती।
गुरु प्यास जहाँ नित वास करे उस ठौर समर्पित आप सदा,
जहँ होत दया करुणा व कृपा बरसे भर आश उजास सदा,
है समर्पित आत्मोद्गार वहीं जिसके हिय होत प्रकाश सदा,
कह चन्दर प्रेम प्रकाश वहीं जहँ होवत भक्त निवास सदा।

– चन्दरदास

अनुक्रमांक

।। आत्मोद्‌गार ।।

आत्मोद्गार

(एक चिन्तन)

।। भाग एक ।।

आत्मोद्‌गार

॥ भाग - एक ॥

हे आत्मा ! तब क्या होगा, जब तुम सत्य के तराजू पर तौले जाओगे ? यह तेरा मन, बुद्धि और अहंकार, यह तेरा शरीर, यह तेरा घर-परिवार, ये तेरे भाई-बंधु, यह तेरा सारा समाज, जब कोई नहीं होंगे, जब तेरे अपने सब बिछुड़ जायेंगे- तब क्या होगा ? जब केवल तुम होगे और कुछ भी नहीं होगा, जब तुम्हारे साथ जिन्दगी भर का किया हुआ पाप और पूण्य होगा, सत्य और असत्य होगा, कर्म और कुकर्म होगा- तब क्या होगा ? जब एक तरफ तुम्हारे जीवन का लेखा-जोखा होगा और दूसरी तरफ होगा उस अनादि शक्ति का सत्य और अहिंसा से भरा न्यायिक दरबार- तब क्या होगा ? हे आत्मा ! जब न्याय रूपी तराजू के एक पलड़े पर तुम होगे और दूसरे पलड़े पर सत्य होगा- तब क्या होगा ? ... तब क्या तुम्हारा यह झूठ और फरेख से भरा जीवन उस सत्य को झुका सकेगा ? तब क्या पाप से भरा तुम्हारा यह कृत्य साथ दे सकेगा ? उस समय तेरी मदद कौन करेगा ?

हे आत्मा ! उस दिन, जैसे अँधेरे में परछाई भी साथ छोड़ देती है, वैसे ही तुम्हारे सभी अपने तुम्हारा साथ छोड़ देंगे। कोई तुम्हारा साथ नहीं देगा। सब मरघट से लौट आयेंगे। फिर क्यों करते हो तुम बुरे कर्म ? किसके लिए करते हो यह गोरखधंधा ? क्यों सोचते हो बुरे बिचार ? क्यों बढ़ाते हो अधेरे में अपना पाँव ? क्या तुम्हें मालूम नहीं कि आगे खाँईं है ? बता मेरे भाई ? क्यों धोखा देते हो तुम अपने आप को ? जिस दिन तुम इस संसार से बिदा होगे उस दिन तुम्हें मालूम होगा कि सत्य क्या होता है। डोली के कहार की तरह ये तुम्हारे अपने ही धधकती आग में तुम्हें अकेले ही झोंक कर लौट आयेंगे। उस अग्नि में तुम्हें अकेले ही जलना होगा। वहाँ तुम किसी को क्या मुख दिखाओगे ? ससुराल में तेरी कौन सुनेगा ? वहाँ तो तेरे लिए सभी पराये होंगे। तुम अपने दामन को कैसे छिपा सकोगे। वहाँ तो यमराज न्याय के तराजू पर तुम्हें तौलेंगे। सत्य के चश्में से तुम्हें देखेंगे। तुम कैसे छिपा सकोगे अपने दाग को ? वहाँ तो सब कुछ साफ-साफ दिखाई देगा। वहाँ तुम्हारा एक भी उपाय नहीं चलेगा। इसलिए हे आत्मा ! मैं तुमसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि तुम अपने आँचल को मैला मत करो।

हे आत्मा ! क्या अपना क्या पराया, सभी तो एक हैं। इस सत्य को तुम आज नहीं समझोगे। लेकिन एक दिन ऐसा आयेगा जब तुम सोच-सोचकर पछताओगे। उस दिन

तुम मृत्यु सैया पर पड़े होंगे।उस समय तेरी यह जवानी , तेरे ये हाथ, तेरे ये पाँव, तेरी ये आँखें कोई साथ नहीं देंगे। सभी निष्क्रीय होंगे। उस समय तुम्र जो घुटन, पछतावा और निराशा का अनुभव करोगे उसकी तुम कल्पना नहीं कर सकते। उस समय तुम सोच-सोच कर रोओगे लेकिन उस रुदन को सुनने वाला तुम्हारा अपना कोई नहीं होगा। उस समय तुम रहोगे और रहेगा तुम्हारी दुर्भावना, तुम्हारी सद्‌भावना और तुम्हारे पिछले कर्म। उस समय तुम्हारे आँसू किसी के मन में दया उत्पन्न नहीं कर सकेंगे। क्योंकि तुमने जीवन में दया के बीज तो बोये ही नहीं। तुमने तो बैर बोया है, नफरत बोई है, स्वार्थ बोया है, इन्सानियत का गला घोटा है, अपनों के खनू को बहाया है, अपने ही जन्म भूमि को पैरों तले कुचला है। जिसने तुम्हें सूरज की रोशनी दी है, उसी की तुमने आँखें छीन ली है। उसे तुमने अंधकार के सागर में ढकेल दिया है। जिसने तुम्हारे पेट की ज्वाला को शान्त किया है, उसकी तुमने रोटी छीन ली है। उसको तुमने ज्वाला दी है। जिसने तुम्हें चलना सिखाया है, उसके पैरों को तुमने काट दिया है। बताओ तुम पर कौन तरस करेगा ? दुनियाँ के लोग तुम पर हँसेंगे। अच्छा हुआ एक पापी जा रहा है। लोग तुम्हें दुदकारेंगे। तुम्हारी कराह पर लोगों की आत्मा ठंठी होगी। तुम्हारे आँसू उन्हें ठंठक पहुँचायेंगे। जिनको तुमने जिन्दगी भर ईष्या की दृष्टि से देखा है उन्हें तुम्हारे दुख को देखकर खुशी होगी। कोई तुम पर तरस नहीं करेगा। तरस तो उन पर आती है जो दूसरों के सहारे होते हैं, जो दूसरों पर कुर्बान होते हैं, जो सबके प्यारे होते हैं। लेकिन तुम तो अपने-पराये सभी के दुश्मन हो, अभिभानी हो, घमंडी हो। तुम अपनी शक्ति के मद में सीना तान कर चलते हो। तुम अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हो।

• हे आत्मा ! तुम तरस के योग्य नहीं हो। तुम तड़प-तड़प कर मिट्टी हो जाओगे परन्तु तुम पर कोई तरस नहीं करेगा। वही लोग जो आज तुम्हारी जवानी पर, तुम्हारी सुन्दरता पर न्यौछावर हैं, तुम्हें सलाम करते हैं, तुम्हारे आगे झुकते हैं, समय आने पर तुमसे नफरत करेंगे, तुमसे दूर भागेंगे। उन्हीं लोगों के द्वारा तुम जलाये जाओगे। उन्हीं लोगों के द्वारा यह शरीर नष्ट कर दिया जायेगा। इसलिए कहता हूँ कि तुम घमंड मत करो। तुम किस बात का घमंड करते हो ? क्या है तुम्हारे पास ? सब तो उसका है - उस परम पिता परमात्मा का। उसका उसको लौटा दो। यही सार है, यही सत्य है। तुम्हें वही करना चाहिए जैसा वह तुमसे चाहता है, जिसमें उसकी खुशी है। तुम्हें वही करना चाहिए क्योंकि वही तुम्हारा अपना है। उसी ने तुम्हारा सृजन किया है। उसी से तुम हो। इसलिए तुम जागो मेरे भाई। उठो, सोने में कोई सार नहीं है। इस संसार को तुम मिथ्या मत मानों। यह मिथ्या

नहीं है। यह तुम्हारे लिए कुरुक्षेत्र का मैदान है। यहाँ तुम्हें धर्मयुद्ध करना है। इसे भोगो मत। यह भोगने का स्थल नहीं है। यह त्याग का स्थल है। इसे तुम अपना आदर्श मानो। यह तपस्थली है। यहाँ तुम परोपकार करो, सेवा करो। देखो ! यहाँ न जाने कितने अभागे पड़े हैं। उन्हें तुम्हारे सेवा की आवश्यकता है। तुम आगे बढ़ो। उन्हें अपनी बाहों का सहारा दो। उन्हें अपने अंग में भर लो। उन्हें प्यार की जरूरत है, उन्हें प्यार दो। उनसे नफरत मत करो। वे तुम्हारे अपने हैं। सारा संसार तुम्हारा अपना है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' - सारा संसार एक परिवार है। फिर नफरत किससे करते हो। यहाँ सभी तो अपने हैं। कोई किसी से न तो बड़ा है और न ही छोटा है। सभी एक समान हैं, उस परम पिता परमात्मा की संतान हैं। फिर तुम अपने को बड़ा क्यों समझते हो। कोई खुद में बड़ा नहीं होता। सच्चा बड़प्पन तो सबकी सेवा में है। सबको अपनाने में है। सबको अपना बनाने में है। जिस दिन तुम सबको अपने समान जानोगे, उस दिन सचमुच तुम बड़े कहलाओगे। उस दिन सारा संसार तुम्हें पूजेगा। उस दिन तुम्हें सच्चा आनन्द मिलेगा। उस दिन तुम्हें मालूम होगा कि सच्चा आनंद ही परमात्मा है, सच्चा आनन्द ही सच्चिदानन्द है। वही जीवन का सार है। वही पुरुषार्थ है। तुम उसे प्राप्त करो। जिस दिन तुम उसे प्राप्त कर लोगे उस दिन भौतिक प्रसाधनों की तुम्हें आवश्यकता नहीं होगी। उस दिन सारे भौतिक प्रसाधन तुम्हें झूठे प्रतीत होंगे।

हे आत्मा ! उस परम आनन्द को प्राप्त करने के लिए तुम्हें तपस्या करनी होगी। तुम्हें त्याग करना होगा, तुम्हें सतकर्म करना होगा। मानव-मानव के बीच बढ़ती दरार को तुम्हें भरना होगा। तुम्हें अपना सारा जीवन उनके लिए कुर्बान करना होगा। तुम स्वार्थ में मत पड़ो। स्वार्थ तुम्हारे लक्ष्य में बाधक होगा। मैं मानता हूँ कि तुम शाश्वत हो। तुम्हारा अस्तित्व नित्य है। इसलिए अपने नित्य अस्तित्व को पहचानो। तुम अपने चारो ओर प्राकृतिक पुष्पों को देखो। ये सभी नश्वर हैं। एक-एक कर सभी नष्ट हो रहे हैं। फिर भी ये सभी अपने कर्त्तव्य को बखूबी निभा रहे हैं। क्योंकि ये अपने अस्तित्व को जानते हैं। उनका अस्तित्व ही करने में है। ये अपने धर्म को निभा रहे हैं। धर्म वह है जो धारण किया जा सके। इस प्रकार प्रकृति का हर कर्म धर्मानुकूल है। सूर्य के प्रभात से ले कर शाम तक और शाम से लेकर फिर प्रभात तक प्रकृति का हर कर्म नियमबद्ध है। इसलिए प्रकृति का हर कण परिवर्तनशील हो कर भी स्थाई दीखता है। परन्तु तुम शाश्वत होते हुए भी अनित्य सा प्रतीत होत हो। तुम अपने अस्तित्व को पहचानों। तुम धर्मानुकूल कर्म करो।

हे आत्मा ! यह तुम्हारा शरीर पंच-तत्वों से बना है - क्षिति, जल, अग्नि, गगन

और हवा। ये ही तुम्हारे अस्तित्व हैं। इनके प्रति अपने कर्त्तव्य को पूरा करो। इनका हक इनको लौटा दो। आज ये तुमसे चीख-चीख कर अपना हक माँग रहे हैं। इन्हें इनका हक दे दो। इनके प्रति गद्दार मत बनो। इन पर शहीद हो जाओ। यही तुम्हारी सच्ची सेवा है। तुम इसी राह पर चलो। तुम ऐसा कुछ मत करो जिससे बाद में अपना मुख दिखा न सको। हे आत्मा! इनसे विछुड़ कर जब तुम वहाँ जाओगे जहाँ धर्मराज तुम्हारी राह देख रहे है, और वह तुमसे पूछेंगे कि तुमने अपनों के प्रति क्या किया ? तब तुम क्या जबाब दोगे। यही कहोगे कि मैंने अपनों से नफरत की, उन्हें छला, उनका सुख चैन छीन लिया। क्या यह कहते तुम्हारी जुबान नहीं कट जायेगी। बोलो मेरे भाई ! क्या माया-मोह में लोगों को ठगना ठीक है। ये माया-मोह तुम्हें तुम्हारी मंजिल से विमुख कर देंगे। माया-मोह में फस कर भला कौन वास्तविक सुख को प्राप्त कर सका है। मैं यह नहीं कहता कि तुम अपने बच्चों का, अपने परिवार का पालन-पोषण मत करो। उनका भरण-पोषण तो तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है, तुम्हारा सच्चा धर्म है। परन्तु उसी के पीछे पागलों सा दौड़ना, या उसे ही जीवन का सब कुछ मान लेना, कहाँ तक ठीक है। क्या यही धर्म है ? हे आत्मा ! तुम व्यर्थ के मोह में फस कर अपने कर्त्तव्य से विमुख मत हो। क्योंकि जो लोग मोह में फस कर अनीति करते हैं उनका अपना जीवन ही बृथा हो जाता है।

इसलिए हे आत्मा ! मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम आत्म-ज्ञानी बनो। मन के मत से मत चलो। मन के मत से चलनेवाला खाँई में गिरता है। क्योंकि मन खुद अंधा होता है। अंधे का क्या भरोसा। वह कब गिर जाय। वह कब गिरा दे। मन बड़ा चंचल होता है। वह न जाने कहाँ-कहाँ तुम्हें भटकायेगा। कभी धन का लालच देगा तो कभी तन का लालच देगा। कभी राग-द्वेष में फसायेगा तो कभी काम-क्रोध में बाँधेगा। कभी इस डाल पर लें जायेगा तो कभी उस डाल पर ले जायेगा। कभी तुम्हें स्थिर नहीं रहने देगा। क्योंकि मन का स्वभाव ही अस्थिर है। हे आत्मा ! तुम नित्य हो, शाश्वत हो, सदा स्थिर हो, पर तुम्हारा मन अनित्य है, नश्वर है और अस्थिर है। तुम चेतन हो वह जड़ है। इसलिए उसके इशारे पर चलना ठीक नहीं हैं। तुम मालिक हो; मन नौकर है। तुम मन का मालिक बन कर रहो नौकर मत बनो। तभी तुम्हें शान्ति मिलेगी, शाश्वत आनन्द मिलेगा और तुम्हारा कल्याण होगा।

हे आत्मा ! जो लोग मोह के वशीभूत होते हैं वे मकड़ी की तरह अपने ही बनाये जाल में स्वयं फसले हैं। मोह के वशीभूत होकर मनुष्य अंधा हो जाता है। वह अपनी

चेतना खो बैठता है। उसे अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं रहता। वह मनुष्य होकर भी जानवर हो जाता है। इसलिए तुम मोह से दूर रहो। तुम अपने को उससे मुक्त रखो। मोह की ओर तुम्हारी मुक्ति नहीं है, उधर दलदल है। मोह के दलदल में जो एक बार फस गया उसका फिर निकलना मुश्किल है। मोह में फस कर बहुत से ऋषि मुनि अपने को नहीं बचा सके। फिर तुम किस खेत की मूली हो। उनके जीवन से तुम कुछ सीखो। मोह से अपना सम्बन्ध तोड़ो। वहाँ कुछ नहीं मिलेगा। उसका कोई अन्त नहीं है। तुम जीवन भर उसके पीछे-पीछे दौड़ते रहोगे और वह तुम्हें दौड़ाती रहेगी। इसी दौड़-धूप में एक दिन तुम्हारा अन्त हो जायेगा। तुम हाथ मल कर रह जाओगे। हे आत्मा! मोह बहुत खूबसूरत फंदा है। स्त्री और पुरुष दोनो के लिए मोह एक बहुत मजबूत जंजीर है। दोनों का एक दूसरे के लिए आकर्षर्ण तो स्वभाविक है, क्योंकि उसके बिना उस परम पिता परमात्मा का खेल नहीं चल सकता। लेकिन इसे ही सब कुछ मान कर उस परमात्मा को भूल जाना ही मोह है। तुम्हें क्या संसार में इसलिए भेजा गया है कि तुम मोह में फस कर उस परमात्मा को भूल जाओ, जो तुम्हारा अपना पिता है। क्या तुम्हें इसलिए भेजा गया है कि तुम अपने पूरी जिन्दगी को मोह में गुजार दो, अपनी इच्छाओं की पूर्ति में लगा दो। नहीं; तुम अपनी इच्छाओं का दमन करो। वरना ये इच्छायें बढ़कर एक दिन तिल का ताड़ बन जायेंगी। फिर तुम खुद पंछताओगे। तुम खुद सोचोगे कि इन इच्छाओं को क्यों इतना बढ़ाया। अपनी चादर के बराबर ही अपना पैर फैलाओ। ज्यादा फैलाओगे तो चादर फट जायेगा अथवा तुम्हारा अपना पैर चादर से बाहर हो जायेगा।

इसलिए हे आत्मा! तुम समय रहते जागो। अपने स्वभाव और सामर्थ्य के अनुसार कार्य करो। इच्छा या मन के अनुसार कर्म मत करो। मैं प्रत्येक कार्य से पूर्व तुम्हें जगाता हूँ। पर तुम जागो तब न। तुम तो मन की बात मानते हो। तुम तो यह भी नहीं सोचते कि मेरे भीतर भी कोई मेरा अपना है, उससे भी पूछ लूँ। यदि तुम मुझसे पूछोगे तो मैं अवश्य बताऊँगा। मुझे खुशी होती है जब तुम पूछते हो। तुम पूछो या न पूछो; मैं तो बोलता ही हूँ। तुम मेरी आवाज सुनो। मेरे पास मुख नहीं है। मेरे तो तुम ही मुख हो। मैं जो कुछ भी कहता हूँ तुम्हारे मुख से ही कहता हूँ। आँखे बंद कर तुम मेरी आवाज सुनो। मैं वही कहूँगा जो उचित होगा। अनुचित मैं कभी नहीं कहता। क्योंकि मैं उस परमात्मा का अंश हूँ जिसके तुम अंश हो। भला कोई अपने को गिरते देख सकता है। फिर मैं तुम्हें गिरते कैसे देख सकता हूँ। मैं तुम्हें हर तरह से सभालूँगा। तुम परमेश्वर की इच्छा का परिणाम हो। तुम्हें अपना सारा कार्य उसी को समर्पित करना है। तुम मेरे साथ चलो। तुम अपने को धोखा मत दो।

हे आत्मा ! तुम अपनी जग हँसाई मत कराओ। ऐसा काम मत करो जिस पर लोग हँसें। ऐसे काम से तुम्हें क्या मिलेगा ? क्षणिक शारीरिक सुख, क्षणिक मानसिक आनन्द। जीवन क्षणिक नहीं है। क्षणिक के पीछे अपने चिर स्थाई सुख को मत भूलो। तुम्हारा चिर स्थाई आनन्द उस परमात्मा के सानिध्य में है। तुम उसी के लिए कार्य करो। उसके निमित्त किया जाने वाला हर कार्य आसान होगा। वह खुद सरल है। उसका रास्ता सरल है। वही तुम्हें लक्ष्य तक पहुँचायेगा। तुम इस सरल रास्ते को ग्रहण करो। तुम टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर मत चलो। ऐसा रास्ता तुम्हारे लिए कष्टदायक होगा। ऐसे रास्ते पर तुम भूल जाओगे। इसलिए आसान पथ ग्रहण करो। मैं विश्वास के साथ कहता हूँ कि तुम अपने लक्ष्य तक जरूर पहुँच जाओगे। तुम्हें यदि सुख चाहिए तो परमात्मा से प्रेम करो। उससे तुम्हें सुख मिलेगा , शान्ति मिलेगी, संतोष मिलेगा। ये क्षणिक सुख जिसके पीछे आज तुम दौड़ रहे हो, तुम्हें कष्ट देंगे। तुम्हारे दुखों को, उलझनों को और बढ़ायेंगे। तुम प्यासे मृग की तरह रेगिस्तान में दौड़ते रहोगे लेकिन तुम्हें पानी नहीं मिलेगा। तुम्हें सच्चा सुख नहीं मिलेगा। प्रकृति या प्रकृति के साधन कभी सच्चा सुख दे ही नहीं सकते। वे प्यास को और बढ़ाते हैं। उनसे सुख और शान्ति नहीं मिलती उनसे सुख और शान्ति तो दूर हो जाती है। लेकिन तुम अज्ञानता में सुख के पीछे भागते हो और सुख तुमसे भागता है। अर्थात एक इच्छा पूर्ति के लिए तुम दौड़ोगे वह पूर्ण भी नहीं होगा कि दूसरी इच्छा प्रबल हो जायेगी। दूसरी इच्छा पूर्ण भी नहीं होगी कि तीसरी इच्छा प्रबल हो जायेगी। इस प्रकार एक पर एक इच्छायें उठती रहेंगी और तुम जीवन भर उसके पीछे दौड़ते रहोगे। तुम थक जाओगे पर तुम्हारी इच्छाओं का अन्त नहीं होगा। इच्छायें अनन्त होती हैं और मानव की आयु सीमित होती है। तुम अपने आयु का सही उपयोग करो। इस प्रकार कब तक इच्छाओं के पीछे दौड़ते रहोगे। एक न एक दिन तो थकोगे ही। उस दिन ढेर सारी इच्छायें तुम्हारे आस-पास घूमती रहेंगी। लेकिन तुम कुछ नहीं कर पाओगे। तुम कर भी क्या सकते हो, तुम्हारा पौरुष तो समाप्त हो जायेगा। तुम बूढ़े हो जाओगे। तुम चल भी नहीं सकोगे। उठने के लिए भी दूसरों का सहारा लेना होगा। तुम खुद अपने लिए बोझ हो जाओगे। तुम्हारे ये हाथ, जिस पर तुम नाज करते हो उठ भी नहीं सकेंगे। तुम्हारे ये पैर, जिसके भरोसे तुम कूदते हो, चल भी नहीं सकेंगे। तुम्हारा यह शरीर जिस पर तुम इठलाते हो, सूख कर काँटा हो जायेगा, झुर्रियाँ पड़ जायेंगी। कोई नजर उठाकर तुम्हारी ओर प्यार से देखेगा भी नहीं। उस समय तुम चीख-चीख कर चिल्लाओगे पर तुम्हारी चीख को सुनने वाला कोई नहीं होगा। सब तुमसे मुख मोड़ कर चले जायेंगे। उस समय तुम पछताओगे। लेकिन 'तब पछताये क्या

भये जब चिड़िया चुग गई खेत।' समय गुजर जाने पर पछताने से क्या फायदा। उस समय तुम्हारे हाथ से समय निकल जायेगा। तुम बेबस हो जाओगे।

इसलिए कहता हूँ कि हे आत्मा तुम समय रहते आँखें खोलो। अपने आप को पहचानो। समय को जानो। यह संसार एक भुलावा है। इस भूल-भुलैया से निकलो। इसमें पड़कर तुम अपना मानव जीवन व्यर्थ मत गवाओ। मैं सच कहता हूँ; मेरा यकीन मानो, मैं तुम्हारा अपना हूँ। मैं कभी झूठ नहीं बोलता। हर महापुरूष वही कहता है जो मैं कहता हूँ। स्वयं परमेश्वर भी जब कभी इस पृथ्वी पर अवतरित होता है, तो वह भी वही कहता है जो मैं कहता हूँ। तुम्हें यकीन न हो तो आँखें खोल कर देख लो। गीता यही कहती है। रामायण यही कहता है। वेद यही गाता है। जितने भी शास्त्र हैं, सब यही कहते हैं। क्योंकि यही सत्य है। और सत्य को झुठलाया नहीं जा सकता इसलिए मैं कहता हूँ कि तुम सत्य का सहारा लो; झूठ को त्याग दो। झूठ सिर्फ अपने को भुलावा है। तुम मेरी बात मानों। मुझे तुम अपना दुश्मन मत समझो। मैं तुम्हारा हूँ। मैं तुम ही हूँ। तुम्हारे हर अच्छे कार्य का मैं खुल कर प्रशंसा करूँगा। तुम्हारा साथ दूँगा। तुम्हें रास्ता दिखाऊँगा। तुम्हें हर बुरे कार्यो से आगाह करूँगा। मैं तुम्हारा रखवाला हूँ। मैं हमेशा जागता हूँ। जब दुनियाँ सो जाती है तब भी मैं जागता हूँ। मैं हर क्षण तुम्हारे साथ जागते हुए रहता हूँ। क्योंकि तुम्हारे अलावा और मेरा कोई नहीं है।

हे आत्मा ! तुमने कभी किसी भिखारी को दो चुटकी आटा दिया है ? तुमने कभी डूबते इन्सान को बचाया है ? तुमने कभी किसी की मदद की है ? अगर नहीं की हो तो करके देखो ! तुम्हें आनन्द मिलेगा। आत्मिक सुख मिलेगा। एक ऐसी अलौकिक शान्ति मिलेगी जिसकी कभी तुमने कल्पना नहीं की होगी। मोह रूपी सुख क्षणिक है। वह एक ऐसी पिपासा है जो कभी तृप्त नहीं होती। वह केवल भुलावा है। वास्तविक सुख तो सेवा में है। तुम किसी की सेवा करके देखो। किसी दुखियारी के दुख में भागीदार बनकर देखो। उसमें तुम्हें परम आनन्द मिलेगा। उस आनन्द के समक्ष यह लौकिक सुख तुम्हें तुच्छ प्रतीत होगा। मैं यकीन के साथ कहता हूँ कि तुम एक बार पर-सेवा में लग जाओ, फिर तुम्हें दूसरा सुख अच्छा नहीं लगेगा।

हे आत्मा ! तुम्हारा स्वभाव भोग का नहीं है। तुम्हारा स्वभाव सेवा का है, कुछ सतकर्म करने का है, संसार के निर्माण में कुछ सहयोग देने का है। आज चारो ओर हाहाकार मचा हुआ है। जनता पीड़ित है। कोई शरीर से पीड़ित है तो कोई भूख से, कोई

जाति से पीड़ित है तो कोई धर्म से, कोई देश से पीड़ित है तो कोई विदेश से, कोई गरीबी से पीड़ित है तो कोई अमीरी से - सभी पीड़ित हैं, सभी लड़ रहे हैं, सभी टूट रहे हैं। आज मानवता नष्ट हो रही है। लोग पशु होते जा रहे हैं। लोग पथ-भ्रष्ट हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में तुम्हारी जिम्मेदारी और बढ़ जाती है। तुम स्वार्थ में पड़ कर अपने तक सीमित रहोगे तो उनका क्या होगा ? उन्हें शान्त्वना कौन देगा ? उन्हें सहारा कौन देगा ? उन्हें राह कौन दिखायेगा ? वे भटक गये हैं। उन्हें राह दिखाना है। वरना वे आपस में लड़कर नष्ट हो जायेंगे। सारा विश्व प्रलय में डूब जायेगा। ऐसी विषम परिस्थितियों से विश्व को बचाओ। डरो मत ! जागो ! मैं तुम्हारे साथ हूँ। हे आत्मा ! हो सकता है कि सेवा में ही तुम्हारी सारी जिन्दगी समाप्त हो जाय। लेकिन तुम इससे घबराना मत। क्योंकि तुम्हारे जीवन की यही तो वास्तविक सार्थकता है। तुम उनको राह दिखाओ। अगर समय रहते तुमने उन्हें राह नहीं दिखाया तो तुम खुद दोषी होगे। समय तुम्हें माफ नहीं करेगा।

इसलिए हे आत्मा ! तुम जागो। ऐसे कब तक सोते रहोगे। जरा सोचो ! तुम्हारे चारो ओर कितना हाहाकार है। हर तरफ हलचल है, पीड़ा है, कराह है, दुख है। हर निगाहें तुम्हारी ओर सहयोग की आशा में ताक रही हैं। उन्हें सहारा दो। इस तरह सो कर तुम अपने जीवन को बृथा मत करो। तुम सोने के लिए नहीं आये हो। तुम जागने के लिए आये हो। तुम जाग कर अपनी सार्थकता प्रमाणित करो। तुम आँखें खोलो। तुम्हें दिखाई देगा कि तुम्हें क्या करना है। तुम्हें खुद अपनी मंजिल दिखाई देगी। बस तुम जाग जाओ। क्योंकि जब तक तुम जागोगे नहीं तब तक तुम्हें दिखाई नहीं देगा। तुम उठो। इस संसार की सत्यता को पहचानो। यह संसार बिलकुल झूठा है; बिलकुल असत्य है। सत्य तो तुम हो। सत्य तो परमात्मा है। सत्य तो तुम्हारा योग है। सत्य तो सेवा है, सहयोग है, परोपकार है।

हे आत्मा ! आज हर व्यक्ति एक दूसरे से नफरत करता है। कहीं कोई लगाव नहीं, कहीं कोई अपनापन नहीं। चारो तरफ टकराव है, स्वार्थ है, स्वहित है। सभी अपने सीमित बंधन में जी रहे हैं। इसलिए मानवीय विकास अवरुद्ध हो गया है। लोगों के मन में एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या भर गई है। कोई किसी का उत्थान देखना नहीं चाहता। चाहे वह विद्वान हो या मूर्ख हो, चाहे धनी हो या निर्धन हो, चाहे व्यक्ति हो या समाज हो, चाहे वह देश हो या विदेश हो- हर जगह दरार है। यही दरार मानवता को नष्ट किये जा रही है। इस दरार को तुम्हें भरना है। इस दरार को तुम्हें स्नेह के लेप से लिप्त करना है। प्रेम से तो जानवर भी अपने हो जाते हैं। अनबोल पशु भी बोलना सीख जाते हैं। फिर ये सब तो इन्सान हैं।

सबके अन्दर तुम विराजमान हो। बस तुम्हें यह एहसास करना है कि मैं सबमें हूँ और सब मुझमें हैं। मैं उसी परमात्मा का सन्तान हूँ जिसके पास हम सब को जाना है। इसलिए हे आत्मा ! तुम्हें तमाम दुराग्रह मिटा कर, सारे मत-भेद दूर कर एक होना है। परन्तु यह तभी सम्भव है जब तुम अपने को पहचानो। जब तक तुम अपने को न देखकर दूसरों को देखते रहोगे, दूसरों में गुण दोष निकालते रहोगे तब तक तुम सत्य को नहीं जान सकते, तुम अपने को नहीं पहचान सकते। आज तुम दूसरे के अवगुणों को देखने में व्यस्त हो। फिर तुम अपने को कब देखोगे। मेरे प्रिय आत्मा ! तुम पहले अपने आप को देखो। अपने को सुधारो। यह मत कहो कि सभी तो ऐसे ही हैं। सारा संसार तो इसी ओर जा रहा है, फिर मैं क्यों अपने को देखूँ। इस वाद-विवाद से तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा। तुम भ्रम में अपने आप को ही खो दोगे।

इसलिए हे आत्मा ! तुम्हें अपने को पहचान कर भलाई के रास्ते पर, पूण्य के रास्ते पर चलना है। मैं तुम्हें इस तरह गिरने नहीं दूँगा। आखिरस, मैं ही तो तुम हो। मैं तुम्हें कैसे गिरने दूँगा। हे आत्मा ! यह संसार तो सोने का पिंजरा है। बहुत खूब सूरत बंधन है। जिसमें एक बार यदि तुम फस गये तो फिर नहीं निकल सकोगे। उसी में छटपटाते रहोगे। फिर उस बंधन से निकालने वाला भी कोई नहीं मिलेगा। फिर तुम न तो इस लोक के रह जाओगे, न परलोक के। तुम त्रिशंकू की तरह सदा अधर में लटकते रहोगे। ऐसे लटकने वालों पर दुनियाँ हँसती है, उसे दुदकारती है, धिक्कारती है। कहती है देखो यह पापी है, कुकर्मी है, अपने परमपिता को धोखा देने वाला है... । लोग कोसते हैं। सभी उससे नफ़रत करते हैं। उसे समाज बहिष्कार कर देता है। वह अकेला रह जाता है - अभागा।

इसलिए कहता हूँ कि तुम अपने को पहचानों। मन को भूल जाओ। संसार को अपना मत मानो। जब तुम्हें सत्य का ज्ञान होगा तब तुम्हें मालूम होगा कि संसार कितनी आसानी से तुम्हें अपनी जाल में फसा रखा है। वह तुम्हें उस रास्ते पर ले जा रहा है; जो बर्बादी का रास्ता है, भूल-भुलैया का रास्ता है। जिसमें फस कर तुम अपनी जिन्दगी को बर्बाद कर रहे हो। सत्य को देख कर तुम्हारी आँखे खुल जायेंगी। संसार में क्या पूण्य है क्या पाप है-तुम्हें स्पष्ट दिखाई देगा। बस तुम एक बार अपनी ओर झाँक कर देख भर लो।

हे आत्मा ! तुम्हें ही जानने के लिए संत, महात्मा, पीर, फकीर दिन रात तपस्या करते हैं। तुम्हारे द्वारा ही उनका अपने परम पिता परमात्मा से मिलन होता है। और तुम हो कि अपने को ही ठुकरा रहे हो। मैं सच कहता हूँ कि तुम्हारे भीतर 'वसुधैव कुटुम्बकम्'

की भावना तभी जाग्रत होगी जब तुम स्वयं को पहचानोगे। जब तुम इस संसार को परमात्मा का मानोगे। हे आत्मा! तभी तुम्हारे भीतर से अपने पराये का भेद मिटेगा। तभी सब अपने प्रतीत होंगे। तब कहीं कोई द्वेष नही होगा। सब का सुख-दुख अपना सुख-दुख होगा। तब किसी की आह तुमसे देखी नहीं जायेगी। तुम दूसरों को भूखा देख कर अपने सामने की थाली उसके सामने कर दोगे। उसकी तृप्ति में ही अपनी तृप्ति का तुम अनुभव करोगे। हे आत्मा! जब ऐसा अनुभव होता है तभी मानव महान बनता है। लोग उसे महापुरुष कहते हैं। उसकी पूजा करते हैं। उसके समक्ष श्रद्धा से सिर झुकाते हैं। उस समय उसे जो आनन्द आता है; वह तमाम धन-दौलत के आनन्द से अधिक श्रेष्ठ होता है। क्योंकि वही परम आनन्द है। वही जगत का सार है। उसे ही प्राप्त करने के लिए वेदों ने, पुराणों ने नेति-नेति कहा है।

हे आत्मा! तुम मेरी उपेक्षा मत करो। तुम मेरी बातों को अनसूनी मत करो। देखो; तुम्हें प्रकृति ने कोटि-कोटि साँसें दी हैं। तुम हर साँस के साथ अपने वास्तविकता को जानो। तुम अपने को भूलो मत। तुम्हें हर समय यह एहसास होता रहे कि किसी भी क्षण मेरी यह साँस रुक सकती है और मेरा अस्तित्व इस संसार से मिट सकता है। इसलिए जब तक साँस चल रही है तब तक सतकर्म करो। कल के लिए कुछ मत छोड़ो। क्या मालूम कल आयेगा भी या नहीं। कल को किसने देखा है। कल पर भरोसा कर कितने ही इस संसार से चले गये। लेकिन कल कब आया है। जो करना है उसे आज ही करो। कल की आशा मत करो। कल से पहले ही यदि साँस रुक गई तो तुम्हारी आशाओं का क्या होगा। तब तुम हाथ मल कर रहा जाओगे। इसलिए समय रहते जागो। समय को पहचानो। समय किसी का नहीं होता। समय अपनी गति से भागता रहता है। जो महापुरुष हैं वे समय को पहचान लेते हैं। समय की गति को पकड़ देते हैं। क्योंकि वे युग दृष्टा होते हैं। उन्हें समय का ज्ञान होता है। अज्ञानी समय को पहचान नहीं पाते। समय निकल जाता है और वे पछता कर रह जाते हैं। इसलिए तुम ज्ञानी बनो। तुम बिना ज्ञान के समय को नहीं पहचान सकते। ज्ञान मार्ग से ही तुम परमात्मा तक पहुँच सकते हो। ज्ञानी बनने के लिए तुम्हें सत्य को जानना होगा। सत्य ज्ञान की पहली सीढ़ी है।

तुम सत्य बोलो। सत्य से तुम्हारी शुद्धि होगी। सत्य से तुम महान बनोगे। सत्य ही परमात्मा है। उस परमात्मा का स्वरूप ही सत्य है। इसलिए सत्य को स्वीकार करो। सत्य की प्राप्ति के लिए तुम्हें भक्ति की शरण में जाना होगा। क्योंकि भक्ति ही वह सरल रास्ता

है जिसे तुम आसानी से ग्रहण कर सकते हो। बिना भक्ति के तुम्हारे कर्म शुद्ध नहीं हो सकते। भक्ति तुम्हारे कर्मों को शुद्ध करेगी। भक्ति में सद्भाव है, प्रेम है, परहित है, परोपकार है। इनसे तुम्हारा मन शुद्ध होगा। जब तुम्हारा मन शुद्ध होगा तो तुम्हारे कर्म भी अवश्य शुद्ध होंगे। उस समय तुम्हारे हर कर्म योग बन जायेंगे। तुम भक्ति में लीन हो जाओगे। और जब तुम भक्ति में लीन हो जाओगे तब तुम्हें आत्मज्ञान का अनुभव होगा। और तब तुम अपने असली स्वरूप को पहचान सकोगे।

हे आत्मा! जब तुम अपने असली रूप को पहचान लोगे तब तुम परमात्मा को भी जान लोगे। परमात्मा का ज्ञान होते ही तुम्हारे भीतर ज्ञान का प्रकाश फैल जायेगा। क्योंकि तब तुम्हें परमात्मा के विषय में ज्ञान हो जायेगा कि मेरा और परमात्मा का क्या सम्बन्ध है। उस समय तुम्हें लौकिक वस्तुएँ नहीं लुभा सकेंगी। बल्कि तुम्हें प्रकृति और प्रकृति के कार्य से मोह ही समाप्त हो जायेगा। इसलिए हे आत्मा! यदि तुम्हें मेरी आवाज नहीं सुनाई देती तो तुम भक्ति के सहारे मेरे पास आओ। गौर से मेरी आवाज सुनो। तुम्हें मेरी आवाज स्पष्ट सुनाई देगी। जब तुम मेरी आवाज सुनोगे तब कोटि-कोटि ब्रह्मांड स्वरूप परमात्मा तुम्हारे भीतर प्रकट हो जायेगा। उस समय तुम्हारे कर्म किसी को कष्ट नहीं देंगे। तुम हिंसा का मार्ग छोड़कर अहिंसा मार्गी हो जाओगे। 'अहिंसा परमोधर्मः' तुम्हारे नस-नस में समा जायेगी। मैंने तुम्हें बताया है कि जो ज्ञानी पुरुष होता है उसे अहिंसा में ही परम आनन्द मिलता है। क्योंकि अहिंसा ही आनन्द की जननी है।

हे आत्मा! तुम किसी को कष्ट मत दो। कोई कष्ट में है तो यथासम्भव उसकी मदद करो। तुम्हारी मदद से उस व्यक्ति को जो संतोष होगा, वह तुम्हारे इस लोक और परलोक को सुधार देगा। और उस व्यक्ति के हृदय में जो अनुराग, जो प्रेम तुम्हारे प्रति उत्पन्न होगा वह तुम्हें आत्म ज्ञान प्राप्त करने में मददगार होगा। उस समय तुम्हें संसार की सबसे बड़ी सम्पत्ति सहयोग मिल जायेगी। और तभी तुम्हें अनुभव होगा कि लौकिक सुख में आनन्द है या अहिंसा में। मान लो तुम ट्रेन में सफर कर रहे हो। कोई भीख मागने वाला आता है। उसके दोनों हाथ तुम्हारे सामने फैलते हैं। तुम दस पैसे का एक सिक्का उसकी हथेली में डाल देते हो। उस समय तुम्हें कैसा लगता है ? यद्यपि उस दस पैसे का तुम्हारे लिए कोई मूल्य नहीं है। और न ही उस भिखारी के लिए ही उस दस पैसे का मूल्य है। क्योंकि दस पैसे में आज मिलता ही क्या है। लेकिन उस समय तुम्हें जिस आनन्द की अनुभूति होती है उससे मन संतोष से भर जाता है। तुम यह सोच कर अपने मन में सुख का अनुभव करते हो कि मैंने

कुछ दिया, कुछ परोपकार किया। उस भिखारी के कष्ट में कुछ भागीदार बना। अब जरा तुम सोचो- जब छोटे से उपकार पर तुम्हें इतने सुख की अनुभूति होती है तो जब तुम पूर्ण रूप से परोपकारी बन जाओगे, जब तुम पूर्ण रूप से परमात्मा पर अर्पित हो जाओगे तब तुम्हें कितना सुख होगा। तब तुम्हें कितनी आनन्द की अनुभूति होगी। यह चिन्तन की बात है। क्योंकि जब तक तुम चिन्तन नहीं करोगे तब तक आनन्द की अनुभूति नहीं होगी। इसलिए तुम सोचो ! आत्मा से सोचो। तुम सदा यही पाओगे कि सत्य में, अहिंसा में, परोपकार में जो आनन्द है, वह धन-दौलत में नहीं है, वह भोग-विलास में नहीं है।

इसलिए हे आत्मा ! तुम अपने को पवित्र करो। स्व-शुद्धि से ही तुम पवित्र होगे, तुम निर्मल होगे। जब तुम निर्मल होगे तभी शुद्ध विचार और पवित्र भावनायें तुम्हारे भीतर उत्पन्न होंगी। जब तुम्हारे भीतर शुद्ध विचार और पवित्र भावनायें उत्पन्न होगी तो निश्चय ही तुम्हारे पैर अच्छे कर्मों की ओर बढ़ेंगे। वाणी सत्य निकलेगी। हाथ परोपकार करेंगे। मन शुद्ध होगा। बुद्धि भला सोचेगी। और भावनायें कल्याणकारी उत्पन्न होंगी। जब यह सब तुम्हारे भीतर होने लगेगा तब तुम पवित्र हो जाओगे, तब तुम शुद्ध हो जाओगे, तब तुम्हारी गिनती महात्माओं में होगी। तुम ज्ञानी हो जाओगे।

इसलिए हे आत्मा ! तुम अपने जीवन को सुधारो। कामना का त्याग करो। क्योंकि सतगुणों की प्राप्ति बिना कामना त्याग के नहीं हो सकती। कामना मन को भ्रम जाल में फसाती है। उसे सतकर्म से विमुख करती है। मानव को भूल-भुलैया की कोठरी में बंद करती है। और जब मानव उसमें बंद हो जाता है तो कामना उस अंधकार-सागर में मन को डुबा देती है। मन को पहले तो उसमें अच्छा लगता है। वह बड़े चाव से उसमें फसता जाता है। परन्तु जब मन उससे ऊब जाता है, जब उसे वास्तविकता का पता चलता है तब वह उस अंधकार से निकलना चाहता है। लेकिन तब तक बाहर के सब दरवाजे बन्द हो जाते हैं। मन अंधकार में डूब जाता है। उसके सामने गहन कालिमा छा जाती है। उस अंधकार से बाहर निकलने के सब पथ गायब हो जाते हैं। मन सत-पथ को ढूँढ नहीं पाता। और वह उस भूल-भुलैया में छटपटा कर रह जाता है।

इसलिए हे आत्मा ! कामना की भूल-भुलैया में मन को मत फसने दो। कामना ही फल की चाह है। तुम्हें बिना फल की इच्छा किये कर्म करना है। इसे ही निष्काम कर्म कहते हैं। श्री कृष्ण ने अर्जुन को यही शिक्षा दी थी। कर्म करते समय फल की इच्छा मत करो। क्योंकि फल की इच्छा करने वाला व्यक्ति माया से रहित नहीं हो सकता। माया से रहित

होने के लिए फल की इच्छा का त्याग करना होगा। फल की इच्छा का त्याग ही संयास है, योग है। तुम्हें यदि योगी बनना है तो कामना का त्याग करना होगा। बिना त्याग के तुम कर्मयोगी नहीं बन सकते। लेकिन तुम्हें फल की इच्छा का त्याग कर कर्मयोगी बनना है। क्योंकि योग में लगन है, एक निश्चित पथ है, जिन्दगी का सत्य है, और योग में ही परम पिता परमात्मा है। सत पथ पर चलने के लिये योग आवश्यक है। योग जीवन का आधार है।

हे आत्मा ! सत्य का पथ कठिन नहीं होता। तुम सत्य की राह पर चलो, उसमें पूरा मन लगाकर चलो, उसमें पूरी मेहनत के साथ लगो। यही सच्चा कर्मयोग है। तुम दूसरे की ओर मत झाँको; अपनी ओर देखो। इस बात का अवलोकन करो कि तुम मेहनत और पूरी इमानदारी से कर्म कर रहे हो अथवा नहीं। जिस तरह व्यक्ति-व्यक्ति से समाज बनता है, समाज-समाज से राष्ट्र बनता है और राष्ट्र-राष्ट्र से विश्व बनता है, उसी प्रकार हर व्यक्ति का कर्म मूल्यवान होता है। हर व्यक्ति यदि अच्छा कर्म करने लगे तो पूरा समाज अच्छा हो जायेगा। और जब समाज अच्छा होगा तो राष्ट्र अच्छा होगा। राष्ट्र तीव्र गति से विकास करेगा। जब राष्ट्र का विकास होगा तो मानवता का विकास होगा, विश्व का विकास होगा। विश्व में सुख और शान्ति होगी। सभी राष्ट्र मित्र भाव से रहेंगे। युद्ध नहीं होगा। हर व्यक्ति दूसरे के सुख-दुख को अपना सुख-दुख समझेगा। विश्व का इतिहास स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा। यह सब कुछ व्यक्ति पर निर्भर है। तुम पहले अपने को सुधारो। अपने कर्मों को सुधारो। बिना दूसरे की ओर देखे तुम अपनी ओर देखो। तुम क्या कर रहे हो, तुम क्या सोच रहे हो, तुम्हारी राह किधर है और तुम्हारा पैर किधर जा रहा है - इस बात का अवलोकन करो। तभी तुम्हारा कल्याण है, तभी राष्ट्र का कल्याण है, तभी विश्व का कल्याण है।

हे आत्मा ! जिस दिन तुम में अपने को देखने की शक्ति आ जायेगी उस दिन तुम महान हो जाओगे। लेकिन यह तभी संभव है जब इच्छाओं का दमन हो। क्योंकि इच्छाएँ तुम्हें अपनी ओर देखने नहीं देती। वे तुम्हारे अन्तर-मन को दबा देती है। इच्छायें बहुत प्रबल होती हैं। उनको दबाना बहुत कठिन होता है। तुम यह सोचते रहोगे कि फलाँ कार्य पूर्ण हो जाय तो शान्ति मिलेगी। लेकिन जब तक वह कार्य पूर्ण हो उससे पहले ही दूसरा कार्य, दूसरी इच्छायें उठ खड़ी हो जायेंगी। तुम उस नई इच्छा के पीछे भागने लगोगे। इसी प्रकार एक पर एक इच्छायें उठती रहेगी और तुम उसके पीछे दौड़ते रहोगे। हे आत्मा ! फिर एक दिन ऐसा आयेगा जब इच्छाओं को लिए हुए तुम इस संसार से विदा हो जाओगे। ये

अतृप्त इच्छायें तुम्हारा साथ मरने के बाद भी नहीं छोड़ेंगी। बल्कि इच्छाओं के अनुसार ही तुम्हारा पुनर्जन्म होगा। इसलिए इच्छाओं का पीछा मत करो। उसका दमन करो। जिस दिन तुम इच्छाओं पर काबू पा लोगे उस दिन निश्चय ही तुम सफलता की सीढ़ी पर चढ़ जाओगे। तुम्हारा जीवन निखर जायेगा।

इसलिए हे आत्मा ! तुम इच्छाओं का दमन करो। इन्द्रियों को अधिकार में लो। निष्काम कर्मयोगी बनो। निष्काम कर्मयोग से तुम्हें संतोष मिलेगा, तुम्हें शान्ति मिलेगी। तुम्हें सफलता और असफलता पर सुख या दुख नहीं होगा। तुम्हें हार और जीत एक समान लगेंगे। तुम्हें कर्म करने मात्र से संतोष मिलेगा। फल मिले या न मिले, लक्ष्य मिले या न मिले, बस निस्वार्थ भाव से कर्म करने में ही तुम्हें परमानन्द का अनुभव होगा। ऐसा नहीं कि फल नहीं मिलेगा। फल तो अवश्य मिलेगा। क्योंकि हर कर्म का फल तो मिलता ही है। उस फल से तुम बचोगे नहीं। लेकिन वह फल मानवता पर, जीव मात्र पर अर्पित होगा।

हे आत्मा ! कर्म-अकर्म, सुगति-दुर्गति, पाप-पूण्य, सफलता-असफलता सब कुछ तुम्हारे अपने हाथों में है। तुम जिस पथ पर चलोगे तुम्हें वैसा ही परिणाम मिलेगा। अंधकार का रास्ता तुम्हारे नाश का कारण होगा। तुम्हें भ्रष्ट कर देगा। तुम्हें लक्ष्य से दूर ले जायेगा। लेकिन प्रकाश का रास्ता तुम्हें लक्ष्य तक पहुँचायेगा। तुम ज्ञान के प्रकाश में अपने रास्ते को देखते हुए चलोगे। तुम्हें ठोकर नहीं लगेगा। तुम जिन्दगी का रास्ता आसानी से पार कर लोगे।

हे आत्मा ! अनन्त-अनन्त आत्मायें सब एक हैं। सभी एक परम पिता परमात्मा के अंश हैं। सभी एक होते हुए भी इस संसार में कोटि-कोटि रूपों में प्रगट हुए हैं। इनके शरीर अलग-अलग हैं। परन्तु मूल में सब एक हैं। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, इसाई, धनी, निर्धन, ऊँच, नीच- सभी एक हैं। सब में एक ही उस परमात्मा का अंश विद्यमान है। यदि तुम इनमें से एक से भी नफरत करोगे तो उस परमात्मा से नफरत करोगे, जो तुम्हारा अपना है। वह तुमसे रूठ जायेगा। क्योंकि उसकी निगाह में तुम उससे ही नफरत करोगे। हे आत्मा ! वह परमात्मा हम सबको विभिन्न रूप देकर रास करता है, परमानन्द में रहता है, लेकिन अज्ञानतावश हम इसी बाह्य विभिन्नता को सब कुछ मान कर अपनों से ही नफरत करने लगते हैं। इस नफरत से परमात्मा को दुख होता है। उसने तो कभी नहीं कहा कि तुम सब अनेक हो। उसकी निगाह में तो सभी एक हैं। उसके यहाँ जो गया, जिस रूप में गया उसने सबको प्रेम से ग्रहण किया। वह जब भी बोलता है तब यही बोलता है कि तुम सब

एक हो। संपूर्ण चराचर एक है। सबके प्रति दया करो। सबसे प्रेम करो। सबको अपना समझ कर अपनो सा व्यवहार करो।

हे आत्मा ! यह सब तो तुम्हारे मन की उत्पत्ति है जो तुम आपस में वर्ण, जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि श्रेणियों में विभक्त हो गये हो। वास्तव में तो तुम सब एक हो। गीता, वेद, कुरान, बाइबिल, गुरुग्रन्थ साहब आदि सभी धर्म ग्रंथ एक ही मानवता की सीख देते हैं। सभी धर्म मानव मात्र के कल्याण का गीत गाते हैं। ये सभी ग्रंथ यही कहते हैं कि तुम उस ईश्वर के अंश हो। वही सबका परमात्मा है। उसमें और तुमसें कोई भेद नहीं हैं। अनेकता में भी तुम एक हो। तुम सब एक साथ मिलकर रहो। क्योंकि सभी तुम्हारे अपने हैं। तुम्हारे मन के कलुषित भावों को दूर करने के लिए ही परमात्मा ने इन सभी धर्म ग्रन्थों की धर्म-गुरुओं के द्वारा रचना करवाई है। ताकि तुम्हारी आँखें खुल सके। तुम जिससे नफरत करते हो उससे प्रेम कर सको। उन्हें अपना मान सको। उन्हें परमात्मा के रूप में देख सको। हे आत्मा ! सभी प्रेम चाहते हैं क्योंकि सभी उस परम प्रेमी परमात्मा के अंश हैं। वह संपूर्ण ब्रह्मांड से प्रेम करता है। इसलिए वह प्रत्येक जीव के शरीर में किसी न किसी अंश में प्रेम रूप में अवश्य विद्यमान रहता है। तुम्हें उसी प्रेम की श्रोत को जाग्रत करना है। हे आत्मा ! तुम अपने उसी प्रेम के श्रोत को जाग्रत करो वरना वह श्रोत जो तुमको परमात्मा ने दिया है; सूख जायेगा। जब तुम्हारा अपना ही प्रेम श्रोत सूख जायेगा तो दूसरों के प्रेम श्रोत को कैसे जाग्रत कर सकोगे।

हे आत्मा ! सभी धर्म ग्रंथों का एक ही संदेश है - जब-जब पृथ्वी पर अधर्म होगा, पाप बढ़ेगा, प्रेम का नाश होगा, मातृत्व का विनाश होगा, राग और द्वेष में लोग जलेंगे, अत्याचार बढ़ेगा तब-तब वह परमात्मा किसी न किसी रूप में प्रकट होगा और अधर्म का नाश करेगा। लोगों को प्रेम के रास्ते पर चलना सिखायेगा। लोगो के प्रेम श्रोत को उद्दीप्त करेगा। वह पाप और शत्रुता के बंधन से लोगों को मुक्त करेगा। भय और आतंक का नाश करेगा। वह अपने प्रेम की अमिय श्रोत से सभी सूखे हृदय को रसमय करेगा। और एक सुन्दर, शान्त और आनन्दमय राज्य की स्थापना करेगा। क्या तुम उस विनाश लीला का एक दुष्ट पात्र बनना चाहते हो। क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारा विनाश भी रावण या कंस की तरह हो। यदि नहीं तो समस्त चराचर जीव से प्रेम करना सीखो। सबमें परमात्मा विद्यमान है, ऐसा अनुभव करो। तभी तुम्हारा कल्याण होगा। वरना विनाश से तुम बच नहीं सकोगे।

हे आत्मा ! आज तुम्हारा हृदय सूख गया है। वह प्रेम की धारा जिसे परमात्मा ने

तुम्हारे भीतर प्रवाहित किया था, उसका बहना बन्द हो गया है। तुम उसे पुनः प्रवाहित करो। वरना परमात्मा तुम्हें कभी माफ नहीं करेगा। तुम यह मत भूलो कि एक न एक दिन तुम्हें उसके पास जाना है। अपने किये का समस्त लेखा-जोखा वहाँ प्रस्तुत करना है। इसलिए तुम अपने सारे मतभेद भुला कर, शत्रुता मिटा कर, एक दूसरे से गले मिलकर प्रेम से रहना सीखो। किसी से नफ़रत मत करो। सभी धर्मों का लक्ष्य उसी परमात्मा तक पहुँचता है। इसलिए जो भी तुम्हारा रास्ता है, उस पर निर्विघ्न चलो। किसी दूसरे की राह का काँटा मत बनो। किसी धर्म पंथी को उसके धर्म से विमुख मत करो। जो जिस भी रास्ते जाता है, उसे जाने दो। उसके पथ में रोड़ा मत बनो।हे आत्मा! जब सभी अपने धर्म पथ पर चलने लगेंगे, कोई किसी के रास्ते का रोड़ा नहीं बनेगा तो निश्चय ही एक दूसरे के प्रति प्रेम बढ़ेगा। उस दिन प्रेम और सद्भाव मानव मात्र के आदर्श बन जायेंगे। उस दिन विश्व में शान्ति का राज्य हो जायेगा।मानवता अपनी चरम सीमा पर पहुँच जायेगी। सभी लोग भाई चारे से रहना अपना कर्त्तव्य समझेंगे। उस दिन यह मृत्यु लोक ही स्वर्ग लोक हो जायेगा।

हे आत्मा! मैं तुमसे यही आशा करता हूँ कि तुम मेरी आशा को निराश नहीं करोगे। मृत्यु अवश्यम्भावी है। वह सबको काल-कवलित कर लेता है। परन्तु एक के मरने पर लोग हँसते हैं। कहते हैं- अच्छा हुआ मर गया। पापी के बोझ से पृथ्वी हलकी हुई। और दूसरे के मरने पर लोग अफसोस करते हैं। आँसू बहाते हैं। उसके जाने के बाद भी लोग याद करते हैं। एक वह भी मृत्यु है और एक यह भी मृत्यु है। इसलिए तुम संसार में कुछ ऐसा कर जाओ ताकि सारी मानवता तुम्हें याद करे। मरने के बाद भी तुम्हारे विचार, तुम्हारे कर्म एक आदर्श बन कर समाज के लिए पथ-प्रदर्शक सिद्ध हों। संपूर्ण मानवता श्रद्धा के साथ तुम्हारा नाम ले। यही तुम्हारी सच्ची साधना है।

हे आत्मा! तुम हर कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व उस परमात्मा को याद करो। उसके स्मरण से तुम्हारे कर्म शुद्ध होंगे। कुकर्म का त्याग होगा। तुम्हें अपने कर्मों के अच्छे-बुरे का आभाष होगा। जब तुम्हें अपने कर्मों की अच्छाई या बुराई का ज्ञान होगा तभी तुम अच्छे कर्मों का निर्णय कर सकोगे। क्योंकि जिस कर्म के पहले सोचा-समझा जाता है वह कर्म अच्छा और लाभकारी सिद्ध होता है। ऐसे सतकर्म तुम्हारे उद्देश्य में सहायक सिद्ध होंगे। ऐसे सतकर्म उस परमात्मा के विमित्त होंगे जिनके द्वारा तुम्हारा श्रृजन किया गया है। इसलिए कोई भी कर्म करने से पहले यह सोचो कि क्या तुम्हारे कर्म उसकी सेवा के योग्य हैं। जब तुम्हें यकीन हो जाय कि तुम्हारे कर्म उसकी सेवा के योग्य हैं तब उस कर्म को करो।

तभी वह परमात्मा तुम से खुश होगा। तुम्हारे कर्म उसे आनन्द प्रदान करेंगे। तुम उसके प्रिय बन जाओगे और सदा-सदा के लिए उसके प्रेम का पात्र बन जाओगे।

हे आत्मा ! तुम अपने को सीमित दायरे से बाहर निकालो। जब तक तुम सीमा के दायरे में बँधे रहोगे तब तक तुम्हारा उत्थान नहीं होगा। हृदय की विशालता ही महानता की कुंजी है। तुम विशाल बनो। सबको अपने भीतर समाहित कर लो। सबको अपने प्यार से सीचो। इसलिए तुम सबसे प्रेम करो। किसी से नफरत मत करो। जब तुम सभी से प्रेम करने लगोगे तो सभी तुम्हारे अपने हो जायेंगे, तुम सबके हो जाओगे। परम पिता परमात्मा यही तो चाहता है। वह खुद में असीम है , विशाल है, संपूर्ण विश्व उसमें समाहित है। वह सारे संसार को चाहता है। क्योंकि परमात्मा प्रेम है, प्रेममय है। इसलिए वह तुमसे चाहता है कि तुम भी सबके प्रेमी बनो। और प्रेम से सारे विश्व को जीत लो। जब सारा विश्व तुम्हारा हो जायेगा तब सभी एक हो जायेंगे। जब सभी एक हो जायेंगे तब तुम्हारे बीच का राग और द्वेष समाप्त हो जायेगा। आज जो एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का, एक जाति दूसरे जाति का, एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय का दुश्मन बना हुआ है, एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे है, इसका एक मात्र कारण यही है कि आज किसी का हृदय शुद्ध व विशाल नहीं है। सभी संकुचित हैं, सभी सीमित दायरे में जी रहे हैं। केवल अपना सोच रहे हैं। किसी को दूसरे की परवाह नहीं है। कोई दूसरे को बढ़ते देखना नहीं चाहता। सभी एक दूसरे के विकास को देखकर जलते हैं। इसलिए आज हर बढ़ते कदमों के आगे अनेक समस्यायें, अनेक बाधायें आती हैं। लोग प्रगति के आगे रोड़ा बन कर खड़े हो जाते है। एक दूसरे की टाँग खीचते हैं। ईष्या करते हैं। लेकिन जिस दिन हृदय परमात्म-प्रेम से भर जायेगा, जिस दिन सभी सबको अपना समझने लगेंगे, जिस दिन सबके प्रति सबके हृदय में समान रूप से प्रेम-रस भरने लगेगा उस दिन सारा संसार स्वर्ग बन जायेगा। सबके मन की ईष्या समाप्त हो जायेगी। सभी एक दूसरे को बढ़ते देख कर प्रसन्न होंगे। हृदय में एक अलौकिक आत्मिक संतोष होगा। सबके उन्नति में अपनी उन्नति सा आनन्द होगा। उस समय चारो तरफ खुशहाली नजर आयेगी। विश्व समृद्ध और बलवान हो जायेगा। चारो तरफ आनन्द ही आनन्द होगा। कहीं कोई दुखी नहीं होगा। सब तरफ भाई-चारे का साम्राज्य होगा। हे आत्मा ! यही तो वह परमात्मा तुमसे चाहता है। इसलिए तो वह तुम्हारा श्रृजन किया है। यही तुम्हें करना है। यही तुम करो।

हे आत्मा ! तुम भागो मत। विपत्ति से घबराओ मत। विपत्ति तुम्हारी कसौटी है।

उससे तुम कुछ सीखो। वह तुम्हें सही रास्ता बतायेगी। वह तुम्हारी हितैषी है। वह तुम्हारे समक्ष इसीलिए आई है कि तुम उससे प्रेम करो। विपत्ति से जो तुम्हे दुख होता है वह तुम्हारे रोग का निदान है। जो तुम्हें ठीक करेगी। तुम्हारी बिमारी को दूर करेगी। तुम उससे परेशान मत हो। वह तो तुम्हारे धैर्य की अग्नि परीक्षा है। उस परीक्षा में उत्तीर्ण होओ। अच्छे नम्बर पाओ। उसमें पास होने के बाद ही तुम परमात्मा सें मिल सकोगे। तुम्हारा जीवन आनन्दमय हो सकेगा। तुम शान्ति के संसार में विश्राम कर सकोगे।

हे आत्मा! विपत्ति इसलिए आती है कि तुम सही रास्ता देख सको। तुम्हें दूसरे के प्रति दुख दर्द का आभाष हो। तुम दूसरों का सहयोगी बन सको।उसके दुख-दर्द का एहसास कर सको। इसलिए हे आत्मा! तुम विपत्ति में फसे लोगों से नफरत मत करो। उनसे सदा स्नेह करो। स्नेह देकर तुम उसके दुख को बाँटो। जब तक तुम दूसरे के दुख में सहयोगी नहीं होगे तब तक तुम आत्मा नहीं हो। तब तक लोग तुम्हें प्यार नही करेंगे। तब तक तुम्हें लोग अपना नहीं मानेंगे।

हे आत्मा! जो व्यक्ति विपत्ति में जीना सीख लिया है, वही व्यक्ति श्रेष्ठ है। इसलिए तुम विपत्ति को गले लगाओ। उसे साहस के साथ झेलो। घबराओ मत। घबराने वाला कायर होता है। वह अंधा होता है। वह सही रास्ता ढूँढ नहीं पाता। वह राह भटक जाता है। सही रास्ता तो कर्मयोगी ही ढूँढ सकता है। हे आत्मा! जो घबरा गया वह मर गया। वह जीकर भी मरा हुआ है। उसके हाथ पैर होते हुए भी टूटे हुए हैं। वह विपत्तियों से घबरा कर खाँई में कूद पड़ा है। उसके विचार दूषित हो गये हैं। उसकी भावनायें कलुषित हो गई हैं। उसके कर्म खराब हो गये हैं। वह जी नहीं रहा हैं, घुट रहा है। तिल-तिल कर मर रहा है। क्या तुम जीते जी मरना चाहते हो ? क्या तुम पतित होना चाहते हो ? क्या तुम नीच इंसान बनना चाहते हो ? यदि नहीं; तो धैर्य रखो। संकट आता है और चला जाता है। तुम उसका सामना करो। आगे बढ़ो। पीछे मत मुड़ो। सही रास्ता पीछे नहीं, आगे है। पीछे तो तुम्हारे ही पद-चिन्ह हैं। जो दूसरों के लिए हैं। दूसरे उससे सीखेंगे। अच्छे होंगे तो लोग अनुशरण करेंगे और बुरे होंगे तो त्याग देंगे। इसलिए ऐसा पद-चिन्ह छोड़ो जो सही हो, साफ हो, सुन्दर हो, पवित्र हो, और मंगलकारी हो। लोग उसके सहारे आगे बढ़ सकें। तुम्हारा वह चिन्ह ही बतलायेगा कि तुम कैसे थे। तुम्हारा रास्ता कैसा था। सही रास्ते के राही थे या गलत रास्ते के। यदि तुम्हारा रास्ता सही होगा तो लोग अनुशरण करेंगे। और यदि गलत होगा तो लोग ठुकरा देंगे, मिटा देंगे। लोग तुम्हें भूल जायेंगे। इसलिए तुम सही

रास्ते का चुनाव करो। सही रास्ता बनाओ। आगे जागते हुए बढ़ो। पीछे मत देखो। आगे आने वाली पीढ़ी के प्रति तुम्हारा कुछ कर्त्तव्य है, तुम्हारा कुछ उत्तरदायित्व है। उसे समझो। उसे प्रेम से निभाओ। तुम अपने को अकेला मत समझो। तुम्हारे पीछे लोगों की पूरी कतार है। तुम्हारे हर कदम पर उनकी निगाहें हैं। वे देख रहे हैं कि तुम कहाँ तक अपने उत्तरदायित्व को निभा रहे हो। तुम यह बिलकुल मत सोचो कि तुमको देखने वाला कोई नहीं है। तुमको मैं देख रहा है। तुमको वह ईश्वर देख रहा है। वह परमात्मा बिना आँख के ही देखता है। बिना कान के ही सुनता है। उसकी सहस्त्रों आँखें तुम्हारी ओर देख रही हैं। उसकी दृष्टि से तुम अपने को छिपा नहीं सकते। विश्व का कण-कण उसकी दृष्टि परिधि के अन्दर है। वह तुम्हारे प्रत्येक पग का लेखा रखता है। इसलिए तुम अपने भीतर से यह भ्रम निकाल दो कि तुम्हें देखने वाला कोई नहीं है। तुम्हारे कर्मों का कोई हिसाब नहीं है। मानव भले ही तुम्हारे कर्मों को न देख सके परन्तु वह परमात्मा सब कुछ देखता है। वह सत्य है। वह सर्वव्यापी है। तुम उसकी दृष्टि से छिप नहीं सकते। इसलिए तुम अपनी आँखों को खुली रखो। उसे बन्द मत करो। माया का पर्दा तुम्हारी आँखों पर न पड़े। बल्कि तुम्हारी आँखें निर्मल हों, स्वच्छ हों, राग और द्वेष से मुक्त हों, सबके प्रति समान हों।

हे आत्मा ! यदि तुम्हारी दृष्टि निर्मल है तो मन भी निर्मल होगा। इसे ऐसे भी समझ लो कि यदि मन निर्मल है तो दृष्टि भी निर्मल होगी। दोनो का एक दूसरे के साथ सीधा सम्बन्ध है। मन निर्मल है तो विचार भी निर्मल होंगे। भावनायें भी निर्मल होंगी। कर्म परहितकारी होंगे। इसलिए तुम अपनी दृष्टि को, अपने को निर्मल करो। मन चंचल है। उसे स्थिर रखना होगा। क्योंकि स्थिरता से ही मन की चंचलता दूर होती है। जब मन स्थिर होगा तो विचार, भावनायें स्थिर होंगी। उसमें गहराई होगी। छिछोरापन नहीं होगा। लोग उसें सुनेंगे। उसका अमल करेंगे। इसलिए मन की स्थिरता आवश्यक है। मन को बाँध कर रखना होगा। ऐसा नहीं कि मन की उपेक्षा करो। तुम मन की उपेक्षा मत करो। क्योंकि बिना मन के तो कोई कार्य पूर्ण होता नहीं। मन की लगन जरूरी है। पर आवश्यकता है उसमें स्थिरता की, शुद्धता की, गंभीरता की, कोमलता की। मन के अनेक रास्ते होते हैं। वह किसी भी रास्ते जा सकता है। उसे अच्छाई और बुराई से कोई सरोकार नहीं है। लेकिन यह भी सत्य है कि रास्ते पर जाता है मन ही, दूसरा कोई नहीं जाता। इसलिए तुम्हें मन को पुचकारना है। उसे लगाम देना है। जैसे टाँगेवाला अपने घोड़े को लगाम देता है और अपनी इच्छानुसार उसे रास्ते पर ले जाता है, जैसे कोचवान विशालकाय हाथी को अंकुश के बल पर मन मुताबिक घुमाता है, वैसे ही तुम मन को भी लगाम दो। लगाम के सहारे ही

वह सुपथ पर चलेगा। उसे सुपथ पर लाने के लिए तुम्हें सतर्क रहना होगा। इसलिए तुम्हें सदा जागते रहना है। यदि कभी भी उसे तनिक भी तुमने छूट दी तो वह अपने मन मुताबिक चल देगा। तुम्हारी परवाह बिलकुल नहीं करेगा। क्योंकि चलना उसका स्वभाव है। वह पहाड़ पर भी चढ़ सकता है और खाँई में भी गिर सकता है। उस समय तुम लाख कोशिश करोगे पर बच नहीं सकते। फिर गिरे हुए को कौन पूछता है। उसे तो लोगों का ठोकर ही मिलता है। लोग उसे कुचल देते हैं। इसलिए मन को गिरने मत दो। उसे सभालो। उसको अपनी सीमा में रखो। यदि वह सीमा में रहेगा तो तुम भी सीमा में रहोगे, मर्यादित रहोगे। और मर्यादा में रह कर चलना ही सत पथ पर चलना है। अब तुम्हारे ऊपर निर्भर है कि तुम मन को छूट देते हो या बाँध कर रखते हो।

हे आत्मा ! तुम अभिमान मत करो। तुम्हारे पास क्या है जो अभिमान करते हो। जो है सो सब क्षणभंगुर है। तुम्हारा अपना शरीर भी क्षणभंगुर है। वह भी तुम्हारा साथ छोड़ देगा। तुम कितना भी सजो, अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनो, कीमती गहने पहनो, पाउडर-लिपिस्टिक लगाओ, खूब श्रृंगार करो पर तुम्हें देखने वाला कोई नहीं है। सभी अपने में मस्त हैं। किसी को दूसरे की फिक्र कहाँ। सभी अपने धुन में चल रहे हैं। नजर उठा कर दूसरे की ओर देखने की फुरसत किसको है। देखेंगे तो वे लोग जो कामी हैं। जिनका मन गंदा है। जो सुन्दर रूप को वासना तृप्ति का साधन मानते हैं। जो तुम्हारे श्रृंगार को देखकर जलते हैं, उसे छीन लेना चाहते हैं, उसे नष्ट कर देना चाहते हैं। भले लोग तुम्हारे श्रृंगार को नहीं देखेंगे। वे तुम्हारी ओर से मुख फेर लेंगे। जो तुम्हें जानते हैं वे तुम्हारे रूप को नहीं, तुम्हें देखते हैं। परंतु तुम्हें जानने वाले हैं कितने। जब तुम ही अपने को नहीं जानते तो भला दूसरा तुम्हें क्यों जानेगा। जो तुम्हें नहीं जानते वे तुम्हारी ओर बिना देखे एक अजनबी की तरह तुम्हारे बगल से निकल जायेंगे। इस बात को तुम रोज अनुभव करते हो। कितने अनजाने लोग तुम्हारी बगल से निकल जाते हैं लेकिन तुम्हारी ओर दखेते भी नहीं। तुमको कोई क्यों देखेगा ? तुममें ऐसी कौन सी विशेषता है जो लोग तुम्हें देखेंगे। अच्छा कपड़ा, अच्छा गहना, अच्छा खाना कोई विशेषता नहीं है। यह तो सब पैसे का खेल है। जिसके पास पैसा है, वह इन वस्तुओं को प्राप्त कर सकता है। इसमें कोई विशेषता नही है। तुम कहोगे कि पैसा सबके पास नहीं होता। किसी-किसी के पास होता है। जिसके पास होता है वह पैसे वाल होता है - यही विशेषता है। तो मैं कहूँगा कि पृथ्वी के उत्पत्ति से लेकर आज तक कौन पैसे वाला अमर हुआ है। जितने लोग पृथ्वी पर अमर हुए हैं सभी ने पैसे का, राज का, घर-बार का त्याग किया है। चाहे आप राम को देखें या कृष्ण को, चाहे

आप बुद्ध को देखें या महावीर को। सभी ने पैसे का त्याग किया है। कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, मीरा, गुरूनानक, रबिया, बुलेशा, मोहम्मद साहब, ईसा मसीह - किसके पास पैसा था। किसी ने पैसे का मोह नहीं किया। अगर पैसे का मोह करते तो इतिहास के धुंध में कहीं दब कर रह जाते। पर इन लोगों ने पैसे का, अपने सुख का त्याग किया। यही कारण है कि समय इन्हें दबा नहीं सका। बल्कि समय को इन महापुरुषों ने दबा दिया। खुद समय इन महापुरुषों के नाम से जाना जाता है।

हे आत्मा ! यदि तुम पैसे के पीछे दौड़ोगे तो जीवन की वास्तविका को भूल जाओगे। क्योंकि पैसा लोभ और विलास की जननी है। जब कि तुम जीवन की वास्तविकता हो। तुम ज्ञान और सत्य हो। इसलिए पैसे के पीछे मत दौड़ो। सत्य के पीछे दौड़ो। क्योंकि तुम चेतन हो, पैसा जड़ है। चेतन और जड़ का कैसा साथ। चेतनता सोने चाँदी से नहीं निखरती, कपड़े से नहीं सजती। वह निखरती है सत्य से। वह चमकती है सत्य बोलने से, सतकर्म करने से, अहिंसा से, परोपकार से। इन आभूषणों से तुम अपने अन्तर मन को सजाओ। फिर अपरिचित भी तुम्हारे परिचित हो जायेंगे। अनजाने भी तुम्हारे अपने हो जायेंगे। फिर तुम्हें लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने की आवश्यकता नहीं होगी। लोग अपने आप खिचे चले आयेंगे। तुम्हें पूजेंगे। तुम पूज्य हो जाओगे। इसलिए हे आत्मा ! तुम बाहरी आडम्बरों का त्याग करो। बाह्य आडम्बर तुम्हें छलेंगे। तुम्हें पथ से भटका देंगे। तुम उसमें उलझ जाओगे। इसलिए तुम दिखावे में न पड़ कर अपने अन्तर को शुद्ध करो। तुम्हारी शक्ति वही है। उस केन्द्र बिन्दु से ही तुम्हारे व्यक्तित्व का निखार होगा। तुम अपने व्यक्तित्व का निखार करो। जिस दिन तुम्हारा व्यक्तित्व निखर जायेगा उस दिन तुम्हें अपने शरीर निखार की आवश्यकता नहीं होगी। वह तो अपने आप ही निखर उठेगा।

हे आत्मा ! तुम देरी मत करो। तुम्हारे पास समय नहीं है। समय तो बहुत तीव्र गति से भाग रहा है। तुम पीछे कब छूट जाओ, कुछ पता नहीं। तुम्हारे चारो ओर काल मँडरा रहा है। तुम उससे भाग नहीं सकते। जहाँ तुम्हारी अवधि पूरी हुई कि वह तुम्हें ले जायेगा। तुम्हें छोड़ेगा नहीं। वह किसी को नहीं छोड़ता। वह अपने वख्त का पाबंद है। इसलिए तुम भी अपने वख्त का पाबंद बनो। मृत्यु के भय को छोड़ कर तुम्हें आगे बढ़ना है। तुम्हें अपने कार्य में पूरी लगन और इमानदारी से लग जाना है। ताकि जब भी, जिस भी कदम पर मृत्यु आवे तुम उसका प्रेम से स्वागत कर सको। हँसते-हँसते उसके साथ चल सको। मृत्यु पर विजय का यही एक रास्ता है। हँसते-हँसते उसे गले लगाओ। महापुरुष हँसते-हँसते

अपने शरीर को मृत्यु के हाथों सौप देते हैं। वे मृत्यु से धबराते नहीं। मृत्यु उनसे घबरा जाती है। क्योंकि मृत्यु उन्हें डराना चाहती है परन्तु महापुरुष उससे डरते नहीं। निडर होकर उसे अपनाते हैं। मृत्यु सकुचा जाती है लेकिन छोड़ती नहीं। क्योंकि वह छोड़ कर कभी अधर्म नहीं करती। वह तो धर्मानुकुल कार्य करती है। वह तो ले जायेगी। लेकिन ले जाने की परिस्थिति अलग होती है। एक की मृत्यु पर काल रोता है, औरं एक की मृत्यु पर काल हँसता है। यही है अन्तर। जिस पर काल रोता है वह अमर हो जाता है। और जिस पर काल हँसता है उसे लोग भूल जाते हैं। वह नर्क का भागी होता है। मृत्यु का काम है पापियों को यातनायें देना। वह यातना देती है। उन यातनाओं को कौन सहन करेगा ? इसलिए ऐसा कर्म करो कि मृत्यु तुम पर रोये, हँसे नहीं। हर पग पर तो काल है। अभी अगले क्षण में भूकम्प आ सकता है, सर्प डस सकता है, जिस छत के नीचे तुम बैठे हो; वह तुम्हारे ऊपर गिर सकता है। तुम्हारे हृदय की गति रुक सकती है। अर्थात किसी भी क्षण तुम्हारी मृत्यु हो सकती है। और यह संसार तुमसे बिछुड़ सकता है। इसलिए तुम मेरी बात मानों। समय रहते जागो। शरीर के सुख पर मत जाओ। संसार के बंधन में मत पड़ो।

हे आत्मा ! तुम देहाभिमान त्याग कर देही का अभिमान करो। यही तुम्हारा सच्चा पुरुषार्थ है। तुम हर भौतिक कार्य में उस परमपिता परमात्मा का स्मरण करो। तुम खुद देखो कि उस परमात्मा का मनसा स्मरण हो रहा है या नहीं। व्यक्त संसार से अव्यक्त लोक की यात्रा हो रही है या नहीं। तुम कहाँ तक पहुँचे हो। वह परमात्मा निराकार है। परन्तु संसार की सेवा के लिए वह साकार रूप धारण करता है। वैसे ही तुम साकार रूप धारण कर संसार में आये हो तो संसार की सेवा करो। पर तुम अपनी निराकारिता को मत भूलो। यह जगत तो एक रंगमंच है। इस रंगमंच के तुम अभिनेता हो। रंगमंच और अभिनेता में कैसी एकता। जैसे ये दोनों अलग-अलग होते है वैसे ही तुम और यह जगतरूपी रंगमंच अलग-अलग हैं। तुम साकार शरीर रूपी रंगमंच के भी मोह में मत पड़ो। यह शरीर भी इस संसार का एक अंग है। इसे स्वयं का मत समझो। तुम उससे अलग हो। तुम चेतन हो और शरीर-संसार जड़ है। तुम इस मंच पर अपना पावन अभिनय करो। तुम मेहमान कलाकार हो। इस बात को कभी मत भूलो। तुम्हारा वास्तविक घर तो ब्रह्म लोक है। तुम्हारे शारीरिक सारे संस्कार, स्वभाव और संपर्क सब व्यर्थ हैं। तुम इस व्यर्थ के मोह में मत फसो। इसे त्याग दो। तुम कितना समय लोगे अपने यथार्थ को जनानें में। झूठ जगत्त को जानने में समय लग सकता है, पूरा जीवन समाप्त हो सकता है, परन्तु अपने सत्य को जानने में एक पल भी

नहीं लगता। तुम जागकर तो देखो।

हे आत्मा ! मन और बुद्धि तुम्हारे हैं। तुम अपने मन और बुद्धि के मालिक हो। फिर ये मनमानी क्यों करते हैं। तुम इनके मालिक क्यों नहीं बनते। तुम जहाँ ले जाना चाहते हो वहाँ ये क्यों नहीं जाते ? तुम इन्हें अपने अधिकार में लो। तुम्हें अन्य आत्माओं से बाते करनी है। तुम उनसे कैसे बातें कर सकोगे जब तक इन्हें अपने अधिकार में नहीं लोगे। तुम मन और बुद्धि को अपने अधिकार में लो। उसे स्वच्छ करो। बुद्धि में भरे तमाम कचरे को बाहर फेको। उसे निर्मल और पवित्र बनाओ फिर देखो तुम अन्य आत्माओं से बातें करने लगोगे। तब तुम्हें मुख की आवश्यकता नहीं होगी। तब तुम्हारा संकल्प ही काफी होगा। तुम संकल्प मात्र से सब कुछ जान जाओगे। तुम शरीर का भाव छोड़कर अशरीरी बन जाओगे। तब तुम्हें शरीर और आत्मा अलग-अलग अनुभव होने लगेंगे। तब तुम सत्य को पहचान सकोगे। लेकिन हे आत्मा ! तुम मोह में फस कर इन्हें अलग-अलग अनुभव नहीं कर सकते। मोह में चिपकने से तुम्हारा सारा ज्ञान विलुप्त हो जायेगा। इसलिए मोह से अलग हो कर तुम सहज और पावन बन जाओ। संस्कारों को त्याग कर निर्मल बन जाओ। फिर ये मोह के बंधन तुम्हें बाँध नहीं सकेंगे। फिर तुम्हें अशरीरी होने में पल भर का भी समय नहीं लगेगा।

हे आत्मा ! अगर तुम्हें रँगना ही है तो परमात्मा के रंग में रँगो। अगर तुम्हें कुछ बनना ही है तो परमात्मा सदृश बनो। वही तुम्हारा परम पिता है। तुम उसके पुत्र हो। उसके समान तुम निर्मल बनो। कण-कण को समान देखने वाला अव्यक्त अशरीरी बनो। तुम स्वमान में रहो, देह-अभिमान में मत रहो। स्वमान से बड़ा कोई मान नहीं है। स्वमान का अनुभव होते ही संसार के सारे अंधकार मिट जाते हैं। फिर देहाभिमान को छोड़ने के लिए मेहनत नहीं करनी पड़ती। जितना स्वमान में तुम गहरे उतरोगे उतना ही देहाभिमान अपने आप दूर होता जायेगा। तुम अपनी भावना का निरीक्षण करो। कहीं तुम्हारी भावना प्रीति के बजाय बैर की तो नहीं है। क्योंकि जैसी भावना होगी वैसा भाव होगा, जैसा भाव होगा वैसा संकल्प होगा, जैसा संकल्प होगा वैसा ही कर्म होगा, जैसा कर्म होगा वैसा ही संस्कार बनेगा। भावना बुरी है तो संस्कार बुरा होगा। भावना अच्छी है तो संस्कार भी अच्छा होगा। इसलिए हे आत्मा ! तुम शुभभावनाओं से अपने अन्तःकरण को भर दो।

हे आत्मा ! तुम अविनाशी हो इसलिए अविनाशी परमात्मा से प्रेम करो। तुम अविनाशी हो कर इस विनाशी संसार में मत फसो। तुम अपने संपूर्ण प्रेम को उस परमात्मा

के ऊपर उड़ेल दो। उसका प्यारा होने के लिए तुम अपने को उस पर न्यौछावर कर दो। फिर देखो, तुम्हारे कर्म कर्मयोग बन जायेंगे। अहंकार दूर हो जायेगा। तुम निरहंकारी हो जाओगे। हे आत्मा ! अहंकार अनेक रूप धारण कर तुम्हारे सामने आता है। कभी ज्ञान का अहंकार तो कभी ध्यान का अहंकार, कभी तन का अहंकार तो कभी मन का अहंकार, कभी वचन का अहंकार तो कभी कर्म का अहंकार - न जाने कितने अहंकार। कौन सा अहंकार कब प्रगट हो जाय, कब तुम्हें ठग ले; क्या ठिकाना। इसलिए सदा जागते रहो। निरहंकारी बनो। लोगों के प्रति सद्भावना को बनाये रखो। क्योंकि बिना सद्भावना के तुम्हारे भीतर सर्व के प्रति कल्याण की भावना नहीं हो सकती। कल्याण की भावना न होने से तुम परमात्मा के पुत्र कैसे कहलाओगे। कैसे कह सकोगे उसे अपना पिता। तुम्हें शर्म नहीं आयेगी। क्या तुम्हारे कुकर्मों पर तुम्हारा परमपिता खुश होगा ? क्या तुम्हें वह अपनी गोदी में बिठायेगा ? क्या तुम्हें दुलारेगा ? क्या तुम्हें प्यार करेगा ? अरे वह तो तुम्हारी तरफ देखना भी पसन्द नहीं करेगा। लेकिन उसकी लाचारी को तो देखो, वह तुम्हें दंड भी नही दे सकता। क्योंकि तुम उसके पुत्र हो। दंड तो तुम्हारे कर्म ही तुम्हें देंगे। वही तुम्हें नर्क में ढकेलेंगे। इसलिए सदा सबके प्रति प्रेम की भावना रखो। तुम जीवन को सदा सहयोग में लगाओ। दूसरा कोई कैसा भी हो; उसे देखने के लिए परमात्मा है, तुम उसके प्रति सदा कल्याण की भावना रखो। तुम क्यों द्वेष करते हो ? तुम तो अपने स्वभाव में रहो। सदा समानता का भाव रखो। सभी आत्मायें हैं। सभी अपने हैं। न कोई बड़ा है,न कोई छोटा है। तुम न किसी से राग करो न किसी से द्वेष करो। तुम्हारा कोई पराया नहीं है। सब उसी परमात्मा के पुत्र हैं जिसके तुम हो। पराया तो यह शरीर है। अगर अलग होना है तो तुम शरीर से अलग होओ। अपने से क्यों अलग होते हो ? आत्मा से तुम अलग हो ही नहीं सकते। क्योंकि वही तो तुम हो। तुम अपने को पहचानों । फिर सारा संसार तुम्हारा अपना है।

हे आत्मा ! तुम व्यक्त जगत को मत देखो। व्यक्त जगत में आकर्षण है। भूल जाओ व्यक्त जगत और उसकी प्रकृति को। तुम उसे याद ही इसलिए करते हो क्योंकि परम पिता को भूल गये हो, क्योंकि तुम्हारे अन्दर संयम की कमी हो गई है। संयम की कमी से ही जगत तुम्हें अपनी ओर आकर्षित करता है। संयम की कमी माने स्वयं को भूलना। जहाँ स्वयं को भूलें कि परमात्मा को भूले। और परमात्मा को भूले तो जगत की यांद आनी ही है। जगत की याद आते ही माया अपना चक्र चलाना शुरू कर देती है। तुमको अपने बंधन में बाँध लेती है। फिर छूटोगे कैसे; उपाय तो तुम्हारे पास है नहीं। अस्त्र-शस्त्र तो

कहीं और रख आये हो। परमपिता को स्मरण करते नहीं। जीवन में संयम है नहीं। फिर नाग-पास को काटोगे कैसे ? ऐसे समय में तुम्हारे पास केवल एक रास्ता है - परसेवा। परसेवा से जगत का आकर्षण खत्म हो जायेगा, रूपान्तरित हो जायेगा। जो जगत कल तक तुम्हें बाँधे हुए था वही आज बंधन मुक्त कर देगा। तब तुम्हारा व्यक्त जगत के प्रति आध्यात्मिक लगाव हो जायेगा। तुम जितेन्द्रीय हो जाओगे। सारा जगत फिर तुम्हें परमात्ममय दीखने लगेगा और जीवन परमानन्द से भर जायेगा।

हे आत्मा ! तुम परमात्मा को याद करो। तुम उस अव्यक्त का अनुभव करो। उसका अनुभव तो वैसे ही शान्ति प्रिय है जैसे वह स्वयं शान्तिप्रिय है। उसके अनुभव मात्र से तुम्हारे जीवन का उद्देश्य पूरा हो जायेगा। क्योंकि तुम उस सर्वशक्तिमान परमात्मा के पुत्र हो, उसके तुम एक अभिन्न अंश हो। उसका अनुभव करना ही तुम्हारा लक्ष्य है। तुम उस पर अपने को मिटा दो। जितना तुम उस पर अपने को मिटाओगे उतना ही वह तुम्हारे पास आता जायेगा। तुम उसके होते जाओगे। और एक क्षण ऐसा आयेगा जब पूर्ण रूप से तुम उसके हो जाओगे और वह तुम्हारा हो जायेगा। फिर इस व्यक्त जगत में रहते हुए भी तुम अव्यक्त के संग रहने जैसा अनुभव करोगे। इसलिए प्रेम करो तो उस ईश्वर से। जगत से प्रेम करना हो तो जगत को ईश्वर ही मानो। क्योंकि जगत ईश्वर की ही रचना है। प्रेमी तो अपने प्रेमी के तोते को भी प्रेम करते हैं। फिर जगत को तो उस प्रेमी ने पूरी लगन से रच कर बनाया है। उसे उतना ही प्यार करो जितना ईश्वर उसे प्यार करता है। तुम अर्पित कर दो अपने आप को। तुम जितनी तन्मयता से उस पर अपने को अर्पित करोगे उतना ही तुम उस ईश्वर के अपने होते जाओगे। और एक दिन ऐसा आयेगा जब तुम खुद ईश्वर हो जाओगे।

हे आत्मा ! तुम परमपिता परमात्मा के समान सबका प्यारा बनो। प्यारा बनना बहुत आसान है। तुम अपने देहाभिमान का त्याग कर दो। देहाभिमान का त्याग करते ही आत्माभिमान जाग्रत हो जायेगा। फिर सारा संसार प्रिय लगेगा। तुम देह को भूल जाओगे। मन के अन्दर उठने वाले संकल्प-विकल्प नष्ट हो जायेंगे। स्थूल भाव तरंगें उठना बन्द हो जायेंगी। मन शुद्ध हो जायेगा। फिर परमात्मा के तुम प्यारे बन जाओगे। देहाभिमान से तुम परमात्मा के प्यारे नहीं बन सकते। तुम याद रखो कि परमात्मा कभी विकारों में नहीं बँधता। आत्म-ज्ञान होते ही तुम भी विकारों से मुक्त हो जाओगे, सुख-दुख से परे सदा सच्चिदानंद स्वरूप। तुम्हारा जन्म घुट-घुट कर मरने के लिए नहीं हुआ हैं। तुम अपने मूल स्वरूप को

पहचानो और आत्म-रस में डूब जाओ।

हे आत्मा ! तुम राजा बनो। जैसे सम्पूर्ण ब्रह्मांड का राजा परमपिता परमात्मा है वैसे ही तुम संपूर्ण इन्द्रियों का राजा बनो। जैसे राजा के एक आदेश पर सारी प्रजा चलती है वैसे ही तुम अपने आदेश पर सारे इन्द्रियों को चलाओ। ऐसा न हो कि तुम राजा होते हुए भी इन्द्रियों के बस में हो जाओ। फिर कैसा राजा। जब अपने प्यादों पर तुम्हारा अधिकार नहीं होगा, फिर सम्पूर्ण देह रूपी देश पर तुम्हारा अधिकार कैसे होगा। मैं मानता हूँ कि अनेक जन्मों से तुम बिकारी जीवन जी रहे हो। राजा होते हुए भी प्रजा की तरह जीवन व्यतीत कर रहे हो। यह पुरानी आदत जल्दी छूटेगी नहीं। पर कोशिश तो प्रारम्भ करो। अपने स्वरूप को तो पहचानो। तुम शरीर नहीं हो, आत्मा हो। तुम्हारा अपने इन्द्रियों पर पूरा अधिकार है। तुम अपने अधिकार को मत भूलो। तुम इन्द्रियों के अधिकार में मत जाओ। वरना उलटी धारा बहने लगेगी। फिर तुम बच नहीं पाओगे। उलटी धारा से (भँवर से) आज तक कौन बच सका है। उस लहर में तुम खिंचे चले जाओगे। तुम्हें कोई नहीं बचा सकता। तुम अवश्य डूब जाओगे। इसलिए तुम अपने पुराने आदतों को छोड़ो। उसमें बहुत धोखा है। वे तुम्हें सच्चा पुरुषार्थ नहीं करने देगी। तुम अपने वास्तविक स्वरूप को मत भूलो। तुम्हें जानना होगा कि तुम्हारा स्वरूप क्या है ? उसका संकल्प, विकल्प और स्वभाव क्या है ? हे आत्मा ! तुम्हारा स्वरूप प्रकाशमय है, शून्यमय है, निराकार है, फिर तुम आकार के पीछे क्यों पागल होते हो। आकार तो नष्ट हो जाने वाला है। यह तो तुम्हारे उपयोग के लिए मिला है। इसका उपभोग मत करो। तुम्हारा स्वभाव चन्द्रमा की तरह उज्ज्वल है, शीतल है, निर्मल है, पवित्र है। इसकी पवित्रता पर दाग मत लगाओ। तुम्हें पता नहीं है पर दाग लग चुका है। तुम अपने स्वरूप को भूल गये हो। तुम देह के वश में हो गये हो। तुम अपने को आत्मा मानने को तैयार नहीं हो। तुम शरीर को ही सब कुछ मान बैठे हो। इसी कारण कर्म-अकर्म में भेद करना तुम्हारे लिए कठिन हो रहा है। तुम एक-एक कर फसते जा रहो हो। तुम्हें पता नहीं कि तुम्हारा संकल्प परमात्मा से योग का है परन्तु तुम उससे दूर होते जा रहे हो। देहाभिमान में आत्माभिमान भूलते जा रहे हो। आज तुम्हारे सारे संकल्प भौतिकवादी होते जा रहे हैं। आज तुम्हारी सारी बुद्धि भौतिक सुख में खर्च हो रही है। तुम्हारा अन्तर खोखला होता जा रहा है। तुम्हारे भीतर अध्यात्म की एक किरण भी जलती नजर नहीं आ रही है। तुम्हारे चारो तरफ अँधेरा ही अँधेरा है। तुम इस भौतिकता के बोझ को लेकर कैसे चल सकोगे। पथ पर तो अँधेरा है। राह का पता भी नहीं है। पथ प्रदर्शक भी नहीं है। फिर भला कैसे पहुँच सकोगे अपने लक्ष्य तक। पहुँचना तो

दूर; खाँई से निकल भी नहीं सकोगे। हे आत्मा ! यदि तुम इस राह पर इसी तरह चलते रहे तो एक न एक दिन गिरोगे अवश्य।

हे आत्मा ! कितना निरर्थक जीवन हो गया है आज तुम्हारा। तुम अपने लक्ष्य को ही भूल गये हो। मालूम है तुम्हारा लक्ष्य क्या है ? तुम्हारा लक्ष्य है सत्य की प्राप्ति। जिसे पाकर फिर कुछ पाना शेष नहीं रहता। जो आनन्द की पराकाष्ठा है। जहाँ से आदि, मध्य और अन्त स्पष्ट दीखते हैं। जहाँ से देह और आत्मा अलग-अलग साफ-साफ दिखाई देते हैं। जहाँ प्रकाश ही प्रकाश है। जहाँ बिना चले ही पहुँचना होता है। जो तुम्हारा आत्म-स्वरूप है। जहाँ आत्म संतुष्टि है। जहाँ परमात्मा वास करता है। जहाँ परमात्मा के सिवा और कुछ है ही नहीं। जिनके समक्ष सारे भौतिक साधन व्यर्थ लगते हैं। सूर्य की रोशनी भी जिसके समक्ष नगण्य है। जहाँ अपार सुख, शान्ति और आनन्द है। हे आत्मा ! तुम अपने संकल्प को बदलो। और सत्य पथ का राही बनो।

हे आत्मा ! तुमने कभी सोचा है कि शरीर तुमसे है या तुम शरीर से हो। नहीं सोचा है न ! तो सोचो ! अगर तुम न होते तो क्या तुम्हारा यह शरीर होता। शरीर प्राप्त कर जब तुम उससे निकल जाते हो तब क्या शरीर होता है, नहीं; शरीर जला दिया जाता है, ज़मीन में दफन कर दिया जाता है। शरीर को नष्ट कर दिया जाता है। पर क्या शरीर के नष्ट होने पर तुम नष्ट हो जाते हो। कोई है संसार में जो तुम्हें नष्ट कर सके। तुम सूक्ष्म हो। दुनियाँ की पकड़ से परे हो। तुम निराकारी हो, शाश्वत हो, नित्य हो। इसलिए तुम अपनी नित्यता को पहचानो। शरीरधारी होकर अहंकारी मत बनो। अपनी निराकारिता को पहचानों। अपने स्वरूप को पहचानने के लिए तुम्हें मैं को पहचानना होगा। क्योंकि यह मैं ही धोखा है। मैं के दो रूप है - एक शुद्ध मैं है, एक अशुद्ध मैं है, एक बिम्ब है, एक प्रतिबिम्ब है, एक सत्य है एक झूठ है। एक मैं मय रूप है तो एक मैं आत्म रूप है। दोनो के अन्तर को तुम जानो। उसकी वास्तविकता को तुम पहचानो। एक नीचे गिराता है तो दूसरा ऊपर उठाता है। एक असत में ले जाता है तो दूसरा सत की राह बताता है। एक स्थूल जगत के मोह में बाँधता है तो दूसरा सूक्ष्म लोक में ले जाकर मुक्त कराता है। एक शूल होता है तो दूसरा मूल होता है। इसलिए हे आत्मा ! तुम अपने मूल को पहचानों। मैं की सत्यता को तुम जानों। मैं माने शरीर नहीं होता। मै माने होता है आत्मा, मैं माने होता है सत्य।

इसलिए हे आत्मा ! तुम अपने अभिमान को छोड़कर आत्मीयता धारण करो। संसार में सभी अपने हैं - चाहे मानव हों, पशु पक्षी हों, कीट-पतंगे हों या वृक्ष लताये हों। तुम

सबको अपना मानो। बिना क्रोध किये प्रसन्नता से सबको ग्रहण करो। क्रोध से तुम्हारा जीवन बिगड़ जायेगा। क्रोध मानव का सबसे बड़ा विकार है। इससे मानव का पतन हो जाता है। क्रोध में अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं रहता। क्रोध में व्यक्ति की बुद्धि समाप्त हो जाती है। जैसे भीड़ में व्यक्ति की बुद्धि भीड़ की बुद्धि बन जाती है वैसे ही क्रोध में व्यक्ति की बुद्धि क्रोध-बुद्धि हो जाती है। व्यक्ति का अपनापन खो जाता है। क्रोध में स्व का ज्ञान नहीं रह जाता। इसलिए हे आत्मा! जहाँ स्व का ज्ञान नहीं होता वहाँ विनाश होता है।

हे आत्मा! तुम स्वार्थी मत बनो। स्वार्थी होकर यदि तुम संसार से प्रेम करोगे तो उसमें प्रेम नहीं होगा। जहाँ प्रेम नहीं होगा वहाँ जीवन नीरस होगा। फिर तुम किसी के प्यारे नहीं बन सकते। प्यारा बनने के लिए तुम न्यारा बनो। एक रस में लीन हो जाओ। वरना सारी दुनियाँ तुमसे नफरत करेगी। इस भीड़ में कौन किसकी परवाह करता है। तुम भीड़ के लिए एक ज्योति बन जाओ। तुम भीड़ के लिए एक नई राह बन जाओ। यदि राह प्रिय है तो लोग उस पर चल पड़ेंगे। इस प्रकार तुम भीड़ से न्यारे बनो, देह से न्यारे बनो। देही का हो जाओ। मत भूलो कि तुम देही ही हो। देही को भूलोगे तो तुम अपना स्वरूप ही भूल जाओगे। तुम्हारा स्वरूप निस्वार्थी है। तुम स्वार्थी बने हो। अज्ञानता ने तुम्हें स्वार्थी बनाया है। तुम स्वार्थ का खोता ऊपर से ओढ़े हो। उसे फेक दो। फिर जो शेष बचेगा वह तुम्हारा निस्वार्थी स्वरूप ही होगा। जो संसार के अंधेरे में एक ज्योति किरण की तरह प्रकाश देगा। तुम अज्ञानता से उस प्रकाश को ढक दिये हो। और खुद उस अंधकार में घूम रहे हो। सोचो! प्रकाश स्वरूप हो कर अंधकार में रहना क्या तुम्हें शोभा देता है। निस्वार्थी होकर स्वर्थी बनाना क्या तुम्हें भला लगता है। तुम अपने आप को समझो। जिस दिन इस संसार से तुम न्यारे बन जाओगे उस दिन सबके प्यारे भी बन जाओगे। स्वार्थी होकर तो तुम प्यारे नहीं बन सकते। स्वार्थी होकर तुम संसार में बधोगे। माया तुम्हें बाँध लेगी। वह तुम्हें छोड़ेगी नहीं। स्वार्थ तो माया का प्रथम अजेय शस्त्र है। तुम उसे जीत नहीं पाओगे। तुम उससे हारकर टूट जाओगे। फिर पछताने के अलावा तुम्हारे हाथ कुछ नहीं लगेगा। तुम माया की जड़ स्वार्थ को काट दो। तुम्हारा जीवन निखर जायेगा। तुम्हें परम लक्ष्य की प्राप्ति हो जायेगी।

इसलिए हे आत्मा! तुम संसार से प्रीति करो। फिर संसार तुम्हारा अपना हो जायेगा। सभी तुम्हारे मित्र बन जायेंगे। तुम सबके साथ मिलकर प्रेम का गीत गाओ। फिर ईश्वर की हर लीला तुम्हारे लिए संगीत बन जायेगी। तुम्हें चारो तरफ उसके गुण ही गुण

दिखाई देंगे। तुम गुणग्राही बनो। तुम्हारी दृष्टि पावन हो जायेगी। तुम्हें चारो ओर पवित्रता नजर आयेगी। तुम्हारी सबसे प्रीति हो जायेगी। तुम झूमकर गा उठोगे। उस ईश्वर के गुणगान में तुम्हारे कंठ मुखरित हो जायेगे। वह अव्यक्त साकार रूप में तुम्हारे सामने प्रकट हो जायेगा। तुम उसके गुणों के गीत गाओ। देखो, खुशी के संगीत स्वतः बज उठेंगे। तुम उस संगीत में खो जाओगे। तुम्हें देह का आभास तक नहीं होगा। तुम विदेह बन जाओगे। विदेही होकर ही तुम देही का अनुभव कर सकते हो। शरीर रहते हुए भी तुम अशरीरी का अनुभव कर सकते हो। इसलिए तुम झूम उठो उस परमेश्वर की याद में। लगा दो अपनी संपूर्ण इन्द्रियों को उसकी प्रीति में। तुम प्रेममय बन जाओ। फिर तुम्हारे चारो ओर होंगी प्रेम की लहराती हुई अनंत लहरें।

हे आत्मा ! तुम अपने स्व-स्वभाव में जीना सीखो। तुम देखो उस परमात्मा के इशारे को। उसे पहचानो। वह परमात्मा सदा तुम्हारे साथ है। तुम पुरुषार्थ करो। पुरुषार्थ करने के अनेकों राह हैं। उनमें से यदि तुमने एक भी राह पकड़ ली तो तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। मानव जीवन पाने का तुम्हारा उद्देश्य पूरा हो जायेगा। पुरुषार्थ का पथ भूलने वाला संसार सागर में डूब जाता है। तुम आत्मा इस संसार में डूबने के लिए शरीर धारण नहीं किये हो। तुम्हें तो उस पार जाना है। तुम अपनी नौका और पतवार को ठीक से पकड़ो। ऐसा न हो कि लहरें चलें और नौका पलट जाय या पतवार हाथ से छूट जाय। सागर में लहरें तो चलेंगी। ज्वार-भाटा भी आयेंगे। यह तो सागर का स्वभाव है। हवा भी चलेगी। पूनम भी आयेगा। लहरें ऊँची से ऊँची उठेंगी। लहरें बौरायेंगी। तुम्हारे डूबने के सारे लक्षण मौजूद होंगे। इस विकट परिस्थिति में भी तुम्हें संभल कर पार जाना है। तुम्हें होश में जीना है। तुम्हें संयम से आगे बढ़ना है, धीरज नहीं खोना है। तुम्हें पुरुषार्थी बनना है।

हे आत्मा ! तुम प्रीति कर लो उस परमात्मा से; फिर देखो-सारी अलौकिकता तुम्हारी अपनी हो जायेगी। लौकिक जगत तुम्हारा मीत बन जायेगा। लौकिकता और अलौकिकता का भेद मिट जायेगा। क्योंकि प्रींति की कोई सीमा नहीं होती। प्रीति निस्सीम है। प्रीति में कोई पराया नहीं होता। सब अपने होते हैं। सब मीत बन जाते हैं। कहीं कोई भेद नहीं होता। मन में औरों के प्रति न राग होता है न द्वेष होता है। व्यक्ति रागातीत हो जाता है। फिर किस बात का बंधन। यही तो मुक्ति है, जीते जी मुक्ति- आदि, अन्त और मध्य को जानने वाला ज्ञानातीत, जितेन्द्रीय। जिसकी आँखों से स्वयं ईश्वर देखता है। जिसकी वाणी से सरस्वती बोलती है। जिसके कहे हुए हर शब्द बीज मंत्र बन जाते हैं।

जिसके हर कदम रीति कहलाते हैं। ऐसा महात्मा हो जाता है वह आत्मा। इसलिए हे आत्मा ! तुम भी ऐसे ही राह के राही बनो। फिर संसार का कोई भी बंधन तुम्हें बाँध नहीं सकेगा। शरीर के सारे संस्कार मिट जायेंगे। फिर तुम्हारे भीतर अशरीरी संसार प्रकट हो जायेगा। फिर देह और विदेह की हर अवस्था अपने हाथ में आ जायेगी। एक मिनट में देही, एक मिनट में विदेही।

हे आत्मा ! तुम जो भी करते हो परमात्मा उसे देखता है। उसके पास इतनी सूक्ष्म दृष्टि है जिससे सारा ब्रह्मांड उसे दिखाई देता है। वह देखता है कि कौन-कौन से बच्चे बन्धन मुक्त हैं। कौन-कौन अपने परमपिता पर गये हैं। किसने अपना रास्ता बदल दिया है। किसने अपने मूल रास्ते को भूलकर कुपथ को धारण किया है। ऐसे बच्चों पर परमात्मा को दया आती है। वह उन्हें देखकर अफसोस करता है, पछताता है। परन्तु जिसने उस परमात्मा पर अपना तन-मन-धन अर्पित कर दिया है, जिसने उसकी सेवा की है, जिसने उसके लिए संसार का त्याग किया है - उसको वह प्यार करता है। हे आत्मा ! वह परमात्मा ज्ञानरूप है। वह यह भी देखता है कि यह दिखावे का त्याग तो नहीं कर रहा है। अन्दर देह अभिमान हो और बाहर सरल बनने का नाटक तो नहीं कर रहा है। मन मैला तो नहीं है। मन पवित्र है या नहीं। मुख में राम बगल में छूरी तो सत्य नहीं हो रहा है। कहीं मन के मते तो नहीं चल रहा है। कहीं ऊपर-ऊपर तो नहीं दिखा रहा है कि मैं मनजीत हूँ। धन का सदुपयोग कर रहा है या नहीं। धन का दान उचित पात्र को दे रहा है या कुपात्र को दे रहा है। उचित समय पर धन खर्च कर रहा है या अनुचित समय पर। धन खर्च करने का ढंग क्या है - लुटा रहा है या त्याग कर रहा है। वह तनिक भी भेद-भाव नहीं करता। क्योंकि सारी आत्मायें तो उसकी अपनी हैं। वह तो सब का परमपिता है।

हे आत्मा ! देह-अभिमान के स्मृति की विस्मृति ही सच्चा त्याग है। देह एक घर है। कोई त्यागी जब घर छोड़ कर जाता है तो घर की सारी सामग्री भी त्याग जाता है। वह कुछ भी अपने साथ नहीं ले जाता। क्योंकि कुछ भी साथ ले जाने का मतलब है संपूर्ण त्याग का अभाव। संपूर्ण त्याग तभी है जब घर के साथ-साथ संपूर्ण वस्तुओं का भी त्याग हो जाय। ऐसे ही देह रूपी घर में दस इन्द्रियाँ रूपी सामान हैं। यदि त्यागी पुरुष इन दस इन्द्रियों में से किसी एक को भी पकड़ कर रखता है तो वह पूर्ण रूपेण त्यागी नहीं है। उसका एक के प्रति पकड़ ही उसे परमात्मा से मिलने नहीं देगा। इसलिए तुम सदा सावधान रहो। कोई भी इन्द्रियाँ छोटी बड़ी नहीं होती। सबका मूल्य बराबर है। जितना ज्ञानेन्द्रियों

का मूल्य है उतना की कर्मेन्द्रियों का मूल्य है। सभी एकं से बढ़ कर एक हैं। इसकी छोटी सी छोटी पकड़ भी तुम्हें परमात्मा तक पहुँचने नहीं देगी। परमात्मा से मिलने में एक भी इन्द्रिय पहाड़ की तरह तुम्हें रोक लेगी। जैसे जल में तैरती हुई नौका को वायु का एक झरोका भी उसे डुबाने के लिए काफी होता है वैसे ही एक भी इन्द्रिय के प्रति तुम्हारा मोह तुम्हें संसार सागर से पार नहीं जाने दगी। गीता कहती है कि 'अपने-अपने विषयों में बिचरती हुई इन्द्रियों में से एक ही इन्द्रिय जिस मन को अपना अनुगामी बना लेती है वह अकेला मन जल में नौका को वायु की तरह बुद्धि को हर लेती है।' वह वायु नौका को या तो डुबा देगी अथवा पथभ्रष्ट कर देगी। दोनो ही स्थिति में तुम्हारा परमात्मा से मिलन नहीं होगा। इसलिए हे आत्मा ! तुम संपूर्ण त्यागी बनो।

हे आत्मा ! तुम इस देह रूपी घर में मालिक नहीं, मेहमान हो। तुम इस पर अपना हुकुम मत चलाओ। इन्दियाँ तुम्हारी नहीं हैं। ये प्रकृति की हैं। इसलिए इस पर अधिकार भी प्रकृति का ही है। प्रकृति जैसा नाच नचाती है वैसा इसे नाचने दो। तुम इस नाच से अपने को दूर रखो। तुम्हारा नाच प्रकृति के साथ नहीं, परमात्मा के साथ होगा। जो सदा तुम्हारा अपना है। ये इन्द्रियाँ तो कभी भी तुम्हारा साथ छोड़ देंगी। इनका तुम्हारा कैसा साथ। ये हमेशा तुम्हें अपने मोह जाल में फसाने की कोशिश करेंगी। तुम्हें अपनी ओर खीचेंगी। पर तुम अपने सच्चे घर को मत भूलना। इन इन्द्रियों के चक्कर में पड़कर तुम दलदल में मत फँसना। तुम परमात्मा के पुत्र हो। तुम्हें परमात्मा के पास जाना है। उसका सब कुछ तुम्हारा अपना है। तुम यहाँ छोटी-छोटी चीजों के मोह में क्यों फसते हो। तुम्हारा परमपिता तो पूरे ब्रह्मांड का मालिक है। उसके पास किस चीज की कमी है। जो तुम देहाभिमान में फँस कर संसार में भटक रहे हो। तुम्हें यहाँ क्या मिलेगा। जो कुछ मिलेगा वह सब नश्वर ही होगा। किसी न किसी दिन वह नष्ट हो जायेगा। वह तुम्हारा साथ छोड़ देगा। इसलिए तुम यह मत भूलो कि जहाँ तुम ठहरे हो वह एक सराय है। वह अपना घर नहीं है। उसे छोड़ कर एक दिन तुम्हें जाना है। तुम उस घर में एक मेहमान हो।

हे निराकारी आत्मा ! तुम साकार से इतना मोह क्यों करते हो। क्यों आकार के मान में अपने स्वरूप को भूल गये हो। निराकार तुम्हारा अपना स्वरूप है। अपने को अपनाने में कोई देरी करता है क्या ! फिर वास्तविकता को तुम क्यों नहीं समझते। क्यों आकार पर मोहित होते हो। आकार का मोह झूठ है, नश्वर है। वह एक दिन नष्ट हो जायेगा। परन्तु तुम्हारा अपना निराकार स्वरूप तो सत्य है, शाश्वत है। तुम पहचानो अपने आप

को। तुम्हें कर्त्तव्य के लिए आकार अलग से मिला है। वह तुम नहीं हो। वह तुम्हारे सहयोग के लिए है।उसे माया के बंधन में मत बाँधो। यदि उसे माया के बंधन में बाँधोगे तो वह टूट जायेगा। फिर वह तुम्हारे किसी काम का नहीं रहेगा। तुम्हें दुख ही देगा। अन्त घड़ी में माया-मोह रूपी बंधन इतना दुख देगा कि तुम छटपटाते रहोगे, तड़पते रहोगे पर तुम्हारा प्राण नहीं निकलेगा।

हे आत्मा ! माया से छुटकारा पाने के लिए तुम इन्द्रियों पर अंकुश लगाओ। ये इन्द्रियाँ काम करने के लिए ही मिली है। इन्हें अपना काम करने दो। परन्तु उसके साथ तुम कर्मभोगी मत बन जाओ। वे तुम्हें अपनी ओर खीचेंगी। परन्तु तुम शासक की तरह आदेश दो। जो तुम चाहो वही वे करें। जैसा वे चाहे वैसा तुम मत करो। तुम कर्मयोगी बनो। इन्द्रियाँ कर्मभोग की ओर तुम्हे खीचेंगी। तुम उन्हें कर्मयोग की ओर खीचो। इस खीचा-तानी का तुम अभ्यास करो। इन्द्रियाँ अवश्य झुकेंगी। तुम्हारी विजय होगी। तुम कहोगे कि यह कर्म करो तो वे वही कर्म करेंगी। तुम कहोगे कि यह कर्म मत करो तो वे वह कर्म नहीं करेगी। इसका निरन्तर अभ्यास करो।

हे आत्मा ! इस अभ्यास में सर्वप्रथम तुम्हें स्वयं अपना साक्षी बनने का प्रयत्न करना होगा। तुम देह और इन्द्रियों से अलग खड़े हो जाओ। तुम पूरे दृष्टा होकर देखो। तुम इन्द्रियों के एक-एक कर्म पर निगाह डालो। तुम्हें उनके द्वारा किये जा रहे समस्त कर्म स्पष्ट दीखेगे। तुम उनके बुरे कर्मो पर रोक लगाओ। यह बहुत आसान नहीं है। पर तुम धीरे-धीरे अभ्यास करते रहो। एक दिन ऐसा आयेगा जब तुम्हारे सारे बुरे कर्म छूट जायेंगे।तब तुम्हारे द्वारा केवल सतकर्म होंगे। यही तो कर्मयोग है। हे आत्मा तुम हो जाओ देह से परे। तुम हो जाओ देह के मालिक। तुम हो जाओ इन्द्रियों से सतत् सतकर्म करवाने वाले। इस नेक कार्य में मन तुम्हारा साथ नहीं देगा। बुद्धि भी मचलेगी। शरीर में भी पीड़ा होगी। परन्तु तुम मन, बुद्धि और शरीर से अपने सतकर्म में लगे रहो। इनका काम ही है तुम्हारी मदद करना, तुम्हारे साक्षी भाव में सहयोग करना, तुम्हारे साक्षीपन को पक्का करना। तुम इनका उपयोग करो। तुम इनका इतना उपयोग करो कि इन्हें मनमानी करने का समय ही न मिले। धीरे-धीरे ये तुम्हारे रंग में रँग जायेंगी। फिर तुम्हें मेहनत नहीं करना होगा। फिर तो ये सदा तुम्हें सजग करती रहेंगी। लेकिन तुम इन्हें कभी स्वतंत्र नहीं छोड़ना। अन्यथा ये अपनी तिकड़ी चाल चलने लगेंगी। मन माया की ओर भागेगा, बुद्धि विकार को सोचेगा, शरीर मोह में लिप्त होगा। इसलिए इन्हें खूब कस कर पकड़ो। तुम इन्हें मनमानी मत करने दो।

इन्हें सदा व्यस्त रखो। इतना व्यस्त कि ये सतकर्म के अतिरिक्त और कुछ सोच ही न सकें। इन्हें निरन्तर ईश्वर की याद में लगाओ। इतना याद रखना कि यह सब प्रेम से ही संभव है। तुम आत्मीयता के साथ इन्हें अपना बनाना। बिना आत्मीयता के न तो मन, बुद्धि और देह का सहयोग ही सम्भव है और न ही परमात्मा से योग ही सम्भव है।

हे आत्मा ! तुम सदा जागते रहो। यह मत भूलो कि तुम आत्मा हो। यह स्मरण ही तुम्हारे लिए बीज मंत्र है। यह मंत्र तुम्हारे जीवन में महान अलौकिकता भर देगा। तुम भरपूर हो जाओगे। तुम्हे कुछ भी पाना शेष नहीं होगा। तुम्हारी दृष्टि अलौकिक हो जायेगी। तुम्हारी भावनायें सदभावना में बदल जायेंगी। और तुम्हारे कार्य ईश्वर की ओर चल पड़ेगे ! तुम सर्वशक्तिमान बन जाओगे। हे आत्मा ऐसा जीवन कितना प्यारा होगा। कभी तुमने सोचा है कि जब तुम परमात्मा के गले लगोगे तो कितना आनन्द आयेगा।

हे आत्मा ! कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम ज्ञानमार्गी हो या भक्तिमार्गी। ज्ञानमार्ग उत्कृष्ट चिन्तन का पथ है तो भक्तिमार्ग अति कोमल भावना का मार्ग है। ये दोनों नदी के दो किनारे हैं। ये एक नाव के दो पतवार हैं। ये पक्षी के दो पंख हैं। तुम इन्ही दोनों के बीच प्रवाहित होते हो। याद रहे कि बिना भावना के चिन्तन अधूरा है, और बिना चिन्तन के भावना पूरी नहीं है। पूर्णता और समग्रता दोनों के मिलन में ही है। अत: एक को छोड़ कर तुम आगे नहीं बढ़ सकते। दोनों किनारे साथ-साथ चलेंगे। चिड़िया एक पंख से उड़ नहीं सकती। नदी एक किनारे की कभी हो नहीं सकती। नाविक दो पतवार से ही नाव चलायेगा। अन्यथा नाव एक ओर बह जायेगी। दरिया पार नहीं कर सकेगी। पार पाने के लिए तुम्हें ज्ञान और भक्ति दोनों पतवारों का सहारा लेना होगा। ज्ञान भक्ति का प्रथम चरण है और भक्ति ज्ञान का चरमोत्कर्ष है। पौधा तभी तैयार होगा जब उपजाऊ भूमि हो और अच्छा बीज हो। अन्यथा बीज अंकुरित हो कर भी पौधा नहीं बन सकेगा, सूख जायेगा। इसलिए विवेक और भावना दोनों का होना तुम्हारे जीवन के लिए आवश्यक है।

हे आत्मा ! तुम जहाँ तेइस घंटे देह पर खर्च करते हो वही एक घंटा देही के लिए भी खर्च करो। बस एक घंटा तुम अपनी शुद्धि के लिए, अपनी आत्मिक समृद्धि के लिए लगाओ। उस एक घंटे में तुम अपने को उस परमपिता की याद में छोड़ दो। बहने दो अपने को उस आध्यात्म की धारा में, जो ब्रम्हलोक तक, परमपिता के श्री चरणों तक जाती है। जहाँ प्रकाश ही प्रकाश है। जहाँ अंधकार का नाम नहीं है। जहाँ परमात्मा का आशीर्वाद निरन्तर झरने की तरह झरता रहता है। जहाँ असीम आनन्द है। तुम जिस आनन्द की खोज

में अपना तेइस घंटे लगाते हो और उस आनन्द को नहीं प्राप्त कर पाते वही आनन्द तुम एक घंटा उस देही पर लगाकर प्राप्त कर सकते हो। तुम सांसारिक दौड़ धुप को छोड़ो। आलस्य का त्याग करो। निरर्थक प्रलाप में अपना समय व्यतीत मत करो। तुम लगा दो अपने आप को श्री चरणों में। न्यौछावर कर दो स्वयं को परमात्मा की सेवा में। वही तुम्हारा सबसे बड़ा गुरु है। उसकी प्यार भरी मुरली जब बजती है तो सारा संसार उसके प्यार में दीवाना हो जाता है। गोपियों की तरह लोक-लाज छोड़कर, सुध-बुध भूलकर आत्म विभोर हो पागलों की भाँति दौड़ पड़ता है। तुम अपने को उसके सुपूर्त कर दो। तुम जिस संसार पर अपने को समर्पित करते हो वह क्या तुम्हारा साथ देगा। जिस धन के पीछे तुम रात-दिन मरते हो वह क्या तुम्हारे साथ एक कदम भी चल सकेगा। साँस रुकते ही सब पराये हो जायेंगे। वृद्धावस्था में तुम खाट पर पड़े रहोगे और तुम्हारे बेटे तुमसे तुम्हारा अधिकार छीन लेंगे। तुम खाली हाथ मर जाओगे। तुम्हारे अपने तेरह दिन से ज्यादा तुम्हें याद नहीं करेंगे। वे भूल जायेंगे तुम्हें अपनी मस्ती में। हे आत्मा ! ऐसे समय में तुम्हारा कर्म ही तुम्हारा साथ देगा। जब तुम धर्मराज के दरबार में लाये जाओगे तब वही कर्म तुम्हें मुक्त करायेंगे। वही गवाही देंगे कि तुमने संसार में कैसे-कैसे कर्म किये हैं। तुम्हारे कर्म पर ही तुम्हारा पुनर्जन्म निर्भर होगा। उसकी ही गवाही पर तुम्हारे नये देह का निर्धारण होगा। उसी के अनुसार तुम सुख-दुख के भोगी बनोगे।

इसलिए हे आत्मा ! तुम सतकर्मों से ही सम्पत्ति प्राप्त करो। तुम सांसारिक सम्पत्ति के पीछे पागलों की तरह दिन-रात मत भटको। ज्यादा सम्पत्ति इकट्ठा कर लोगे तो क्या हो जायेगा। चोर ही तो कहलाओगे। लोग यही कहेंगे कि देखो ! लूट-मार से पैसा इकट्ठा किया है। कोई तारीफ नहीं करेगा। बदनामी ही मिलेगी। लोग कहेंगे कि जो पैसा औरों के काम आता उसे इसने अपने तिजोरी में बंद कर लिया है। अर्थात् औरों का हिस्सा तुमने लूट लिया है। यह चोरी नहीं तो और क्या है। मरोगे तो क्या साथ ले जाओगे। सब यहीं छूट जायेगा। फिर चाहे एक कमरे का घर हो चाहे दस कोठी हो, चाहे एक रुपया हो या एक करोड़ हो, तुम्हारे किस काम का। तुम्हारे लिए तो सब पराया है। इसलिए हे आत्मा ! तुम नेकी करो। तुम अपनी आवश्यकता के अनुरूप पैसा कमाओ। दूसरे का हक मत छीनों। दूसरे का हक छीनोगे तो आह मिलेगी। आह की मार से दुनियाँ में कौन बच सका है। गरीबों की बद्दुआयें वृथा नहीं जाती। वे निरंतर आकाश में घूमती रहती हैं। वे बद्दुआयें अनैतिक रूप से धन प्राप्त करने वाले सभी व्यक्तियों के ऊपर गिरती रहती हैं। तुम्हारे उ पर भी गिरेंगी। जिसका प्रतिफल एक न एक दिन तुम्हें ज़रूर भुगतना होगा। इसलिए धन

के पीछे तुम पागल मत बनो। अपनी आवश्यकता के अनुरूप सतकर्मों से जो मिल जाय उसे ही तुम परमात्मा की परम कृपा समझ कर ग्रहण करो।

हे आत्मा ! तुम सम्बन्धियों के मोह में मत फसो। वे ब्रम्हलोक की यात्रा में तुम्हारे बाधक होंगे। सम्बन्धियों से ही मन के अन्दर मोह उत्पन्न होता है। वे उस उलझे हुए जाल के समान है जो कभी सुलझते नहीं। जो तुम्हें अपने मोह जाल में फसा लेते हैं परंतु तुम्हें परमार्थ की यात्रा करने नहीं देते। इसलिए हे आत्मा ! तुम उनसे बचो। लेकिन तुम उनका तिरस्कार भी मत करो। उनका आदर करो। यथाशक्ति उनकी सेवा करो। उनकी सेवा करना ही तुम्हारा धर्म है। तुम घर-द्वार छोड़कर भागो मत, परन्तु उनके मोह में भी मत फसो। उन्हें परमात्मा का वरदान समझो। उनकी देख-रेख करो। उन्हें अपना नहीं ईश्वर का मानो। उन्हें मानव नहीं एक आत्मा पहचानो। तब तुम्हारे भीतर उनके प्रति मोह नहीं होगा। तब तुम्हारे भीतर सदा समता का भाव होगा। यही तो समत्व योग है। तुम मोह में नहीं योग में जीओ। उनके प्रति किया गया तुम्हारा निष्काम कर्म तुम्हारे लिए कर्मयोग बन जायेंगे। तुम गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी एक योगी का जीवन जी सकोगे। इसलिए तुम अपनी भावना को बदल दो। कर्म करने का ढंग अलग कर दो। तुम आज भी उनकी सेवा करते हो पर कामना युक्त हो कर करते हो, स्वार्थ के वशीभूत होकर करते हो। तुम अपनी कामना और स्वार्थ भाव को बदल दो। उसे निष्कामी और निस्वार्थी बना दो। फिर जो कुछ भी तुम करोगे सब सेवा हो जायेगा।

इसलिए हे आत्मा ! तुम सदा सतकर्म करो। यही तुम्हारे साथ जायेगा। तुम जो कर्म रोज करते हो उसमें सदबुद्धि लगाओ। सदा दूसरों की सुख-सुविधा का ध्यान रखो। देखो; तुम्हारे कर्मों से किसी दूसरे को कष्ट तो नहीं हो रहा है। उन कर्मों से किसी प्रकार की हिंसा तो नहीं हो रही है। क्योंकि हिंसा घोर पाप है और अहिंसा परमपूण्य है। कोई भी काम करने से पहले पूरा निरीक्षण करो ताकि उसके विषय में तुम्हें पूरा ज्ञान हो सके। इस भावना से कोई कर्म मत करो कि तुम्हारे कर्म केवल तुम्हारे लिए ही सुख-कर हो, बल्कि इस भावना से करो कि तुम्हारे कर्म औरों को भी सुख देने योग्य हो। यह मत भूलो कि कर्म पर ही तुम्हारा पुनर्जन्म निर्भर है। सतकर्म ही एक ऐसा पतवार है जिसके सहारे तुम संसार सागर से पार हो सकते हो। अपने सतकर्म रूपी पतवार को तुम मत भूलो। पर-सेवा से बढ़कर कोई सेवा नहीं। तुम पर-सेवा में लग जाओ। शरीर की सेवा करो तो उसे परमात्मा का अमूल्य वरदान मान कर करो। सगे-सम्बन्धियों की सेवा करो तो उन्हें भगवान समझ

कर करो। अनजाने की सेवा करो तो मानो कि परमात्मा ही प्रगट हो गया है। मानव ही नहीं तुम पशु-पक्षी, पेड़-पौधों, कीट-पतंगों से भी प्रेम करो। सबके प्रति सदा उदार रहो। पूरे संसार को ईश्वरमय जानो। फिर हृदय में जो आनन्द प्रगट होगा वह सांसारिक किसी भी आनन्द से लाख-लाख गुना अधिक होगा।

हे आत्मा ! तुम ईश्वर की संतान हो। ईश्वर को प्राप्त करना ही तुम्हारा परमलक्ष्य है। बिना लक्ष्य प्राप्त किये तुम्हारा जीवन अधूरा है। बिना परमात्मा से मिले तुम्हारा कल्याण नहीं हो सकता। लेकिन तुम इस संसार की चकाचौंध में अपने पिता को भूल गये हो। तुम अपने सही घर को भूल कर इस संसार को ही अपना घर मान बैठे हो। तुम्हारा सही घर तो परमात्मा का धाम ही है। यह संसार तो एक सराय है। जिसे छोड़कर एक दिन तुम्हें जाना है। सराय की कोई भी वस्तु अपनी नहीं होती। जब तक तुम सराय में ठहरे हुए हो तब तक उसका उपयोग करो। फिर तो सब छोड़कर तुम्हें जाना पड़ेगा। कोई कुछ भी साथ लेकर नहीं जाता। और तो और तुम्हारे जाने के बाद सराय वालों को तुम्हारी याद भी नहीं आती। वहाँ तो रोज मुसाफिर आते हैं , ठहरते हैं और चले जाते हैं। लगातार यह क्रम चलता रहता है। किसको पड़ी है जो मुसाफिरों को याद रखे। सराय वाले भी तो नौकर हैं। एक न एक दिन उन्हें भी तो सराय छोड़कर जाना है। स्वयं सराय को भी एक दिन मिट जाना है। समय का एक झोका सब कुछ नष्ट कर देता है। ऐसे नश्वर सराय से क्या मोह करना। मोह करना ही है तो परमात्मा से करो। जो तुम्हारे हर सुख-दुख का साथी है। जिसकी कृपा से तुम्हारा कल्याण होगा। जिसकी सारी सम्पत्ति तुम्हारी अपनी है। जिसके बिना तुम अधूरे हो। जो तुम्हें छोड़ने को तैयार बैठा है उसे तुम छोड़ना नहीं चाहते हो और जो कभी छोड़ना नही चाहता, जिसके जिगर के तुम टुकड़े हो; उसे छोड़ना चाहते हो। यह कैसी विडम्बना है। जो हाथ पसारे तुम्हें अपनी गोद में लेने को व्याकुल है उससे तुम मुख मोड़ लिए हो, और जो छलावा है, माया है उसे अपना मान बैठे हो। कितने पागल हो तुम। पागल नहीं तो तुमको और क्या कहूँ। जो सत्य है उसे झूठ माने बैठे हो और जो झूठ है उसे सत्य मान रहे हो। मुक्ति तभी मिलेगी जब सत्य को सत्य पहचानो। इसलिए तुम अपने अन्दर झाँको। बाहर सब माया है। सारी शाश्वतता तो अन्दर है। बाहर तो नश्वरता है। तुम अपने शाश्वत को जानो। शाश्वत को जानना तुम्हारा अधिकार है। क्या तुम शाश्वत को पा सके हो। तुम उस शाश्वत के बच्चे हो और उसे आज तक प्राप्त नहीं कर सके हो, यह कैसी तुम्हारी लीला है। बड़ी-बड़ी बाते करते हो, लोगो को समझाते हो, पर खुद में अनजान बने हो। उसे जानो। उसे तुम जीते जी प्राप्त करो। मरने के बाद मुक्ति किसने देखी है। मुक्ति जीते

जी मिलती है। तुम जीते जी मुक्ति प्राप्त करो। यही तुम्हारे जीवन की सार्थकता है।

हे आत्मा ! तुम्हें नहीं लगता कि इस संसार में तुम बधे हुए हो। यह दिन-रात की हाय-हाय क्या है ? तुम किसके लिए जी रहे हो ? किसी से पूछो। उत्तर यही मिलेगा; बच्चों के लिए जी रहा हूँ, बच्चों के लिए कर रहा हूँ। रात दिन की भागा दौड़ी क्या बच्चों के लिए कर रहे हो ? नहीं; सब झूठ है। तुम दौड़ रहे हो अपनी तृष्णा की तृप्ति के लिए, अपनी प्यास बुझाने के लिए। क्या बच्चों के लिए भगवान नहीं है। क्या बच्चे लगड़े-लूले हैं ? क्या वे बड़े होकर अपने पैरों पर खड़े नहीं हो सकते। क्या तुम खड़े नहीं हो गये हो। क्या भगवान का आशीर्वाद तुम्हें प्राप्त नहीं है ? अरे, पशु-पक्षी के बच्चे भी जी लेते हैं। फिर ये तो इन्सान के बच्चे हैं। इनकी चिन्ता तुम मत करो। घर का बंधन, दफ्तर का बंधन, दुकान का बंधन- रात-दिन बंधन ही बंधन। क्या तुम्हें यह बन्धन दिखाई नहीं देता। इस बंधन से मुक्ति ही तुम्हारी मुक्ति है, जीते जी तुम्हारे ऊपर उस परम पिता की असीम कृपा है। तुम अपनी भावना को बदलो। वह आशीर्वाद देने में तनिक भी देर नहीं करता। वह भेद-भाव भी नहीं करता। छोटा-बड़ा, धनी-निर्धन सभी उसके लिए बराबर हैं। हाँ, कर्मो से अगर तुम अशुद्ध हो, कुकर्मी हो तो वह तुम्हें निराधार छोड़ देगा, फिर तुम्हारी क्या दशा होगी, उसकी कल्पना तुम स्वयं कर सकते हो। इसलिए देह से , देह के सम्बन्धों से, देह के कर्मो से तुम मुक्त हो। तुम जानो कि सब ईश्वर के लिए हो रहा है, सब ईश्वर ही कर रहा है। यही तो जीवन मुक्ति है।

हे आत्मा ! तुम सुधारो अपने आप को। तुम मन और कर्म से निश्चय करो। क्योंकि बिना निश्चय किये किसी लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती। फिर भगवान का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए तो तुम्हें दृढ़ निश्चय करना होगा। बार-बार अभ्यास करना होगा। परमात्मा में पूरी श्रद्धा और दृढ़ विश्वास से लगना होगा। तुम निश्चय करो कि काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ सभी जीवन के लिए कष्टदायक हैं। इनसे कभी सुख नहीं मिल सकता। क्रोध में भला कोई सुख पाता है। क्रोधी मनुष्य अपने क्रोध में खुद जलता है। क्रोध पाप का मूल होता है। क्रोध आते ही बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं रह जाता। फिर जो भी कर्म होते हैं वे पतन के कारण होते हैं। तुम काम (इच्छा) को सुख कहते हो ! कामी मनुष्य की आत्मा मर जाती है। भावना का नाश हो जाता है। बुद्धि हर ली जाती है। शक्ति क्षीण हो जाती है। लोक में उसकी बदनामी होती है और परलोक बिगड़ जाता है। स्मरण शक्ति समाप्त हो जाती है। जीवन एक कुत्ते की भाँति हो जाता है। इसे

तुम सुख कहते हो। कामी जीवन सदा रोगी होता है, शोक से ग्रस्त होता है और नर्क का भागी होता है। मद में मानव पागल हो जाता है। वह दूसरो को क्या, अपने को भी नहीं समझता। परमात्मा तो दूर की बात है, उसे आत्मा की भी पहचान नहीं होती। उसके चारो ओर अँधेरा होता है। उसे कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का ज्ञान नहीं होता। वह अहम की आग में जलता रहता है। मोह, मोह तो सब पापों का मूल है। मोह में मानव पागल और अंधा दोनों होता है। उसे ईश्वर नहीं दीखता। वह अपने आप में ही उलझ कर मरता रहता है। व्यक्ति मोह के वशीभूत नाना प्रकार के कुकर्म करता है। उसका जीवन नर्क के समान हो जाता है। मोह में व्यक्ति को दूसरे की हानि-लाभ नहीं दीखता। व्यक्ति अपने में पगलाया रहता है। वह पागलों की भाँति रात-दिन इसी चिन्ता में रहता है कि क्या पाऊँ क्या खाऊँ। उसकी बुद्धि इतनी कुंठित हो जाती है कि सोचने लग जाता है कि जो उसके पास है वह दूसरे का न हो और जो दूसरे का है वह सब मेरा हो जाय। वह दूसरों से छीन लेना चाहता है। वह ऐसा निर्लज्ज हो जाता है कि प्राण जाय पर दमड़ी न जाय। लोभी व्यक्ति अशान्ति का घर होता है। उसका तिनका भी चला जाय तो उसे प्राण जाने जैसा दुख होता है। सच कहा जाय तो लोभी जीवन दुख का पहाड़ा होता है। क्या पाऊँ, क्या छीनू - लोभी इसी चिन्ता में मरा करता है। वह सोचता है कि दुनियाँ ही अपनी तिजोरी में आ जाय। वह यह भी चाहता है कि संसार के सारे लोग कंगाल हो जाय। सिर्फ वही एक सुखी रहे। लोभी सदा चिन्तित रहता है। वह अन्दर ही अन्दर घुटता रहता है। ऐसे व्यक्ति को सुख कैसे मिल सकता है। अतः हे आत्मा ! तुम समयोगी बनो। राग-द्वेष से दूर, सुख-दुख से परे आत्मरामी बनो। मानव तभी तक कंगाल होता है जब तक उसमें अध्यात्म की भावना नहीं होती। यदि अध्यात्म की भावना से मानव कर्म करने लगे तो वह कर्मयोगी बन जाय। अतः हे आत्मा तुम कर्मयोगी बनो।

हे आत्मा ! तुम अपने स्वभाव को सरल बनाओ। उसे उलझाओ मत। संसार में फस कर तुम उलझते हो और परमात्मा से गठजोड़ कर तुम सुलझते हो। तुम स्वभाव से सुलझे हुए हो। अतः तुम आत्म-स्वरूप में स्थित हो जाओ। सरलता परमात्मा का गुण है। वह खुद में अति सरल है। तुम उसकी संतान हो। इसलिए सरलता तुम्हारे स्वभाव में होना चाहिए। उलझी हुई बुद्धि का मनुष्य परमात्मा को प्रिय नहीं होता। कुटिल बुद्धि वाले मनुष्य के जीवन में शान्ति नहीं होती। वह सदा अशान्त रहता है। वह ईश्वर के विधान को बदलना चाहता है, उसे बिगाड़ना चाहता है। पर वह उसे बदल नहीं पाता। वह अन्दर ही अन्दर टूट जाता है। क्योंकि जहाँ परमात्मा की कृपा नहीं है वहाँ योग नहीं हो सकता। वहाँ

भोग होता है, वहाँ टूटना ही होता है। सुलझा व्यक्ति सरल होता है। वह परमात्मा से प्रेम करता है। संपूर्ण संसार उसे अपन मानता है। क्योंकि ऐसा मानव संसार को भगवान मानता है। इसलिए तुम सरल बनो। सरलता सफलता की कुंजी है। ऐसे व्यक्ति से बिगड़े काम बन जाते हैं। वह समाज का पथ प्रदर्शक होता है। वह मानवता का संदेशवाहक होता है। वह ईश्वर का देवदूत होता है। उसके नाम से समय को याद किया जाता है। वह समय को सूर्य की तरह अपने किरणों से प्रकाशित कर देता है। परन्तु यह तभी सम्भव है जब तुम सरल बनो। सरलता एक आध्यात्मिक गुण है। तुम उस गुण के ग्राहक बनो।

हे आत्मा ! वह परमात्मा इतना सरल है कि कभी अभिमान नही करता। इसलिए तुम भी अभिमान मत करो। तुम उस परम पिता परमात्मा की याद करो। तुम उसकी स्मृति सदा करते रहो, उसी में लीन रहो। तुम सभी विकारों को भूल कर शुद्ध आत्मा बन जाओ। यही तो आत्मा परमात्मा का योग है। तुम निरंतर उसकी स्मृति को प्रगाढ़ बनाते चलो। तभी सच्चे अर्थ में तुम 'नष्टो मोहः स्मृति लब्धः' की-भावना को समझ सकोगे। यदि परमात्मा में सच्ची लगन है, उसके प्रति पूर्ण समर्पण है तो मानो कि तुम्हें जीवन जीने की कला आ गई है। यदि तुम्हें उस परमात्मा की याद नहीं आयेगी तो जगत की याद आयेगी। तब परमात्मा से प्रीति नहीं होगी। तुम्हारा जीवन मर्यादित नहीं होगा। परमात्मा के स्मरण से सरलता, समता, शुद्धता और सहनशीलता ये चारो गुण अपने आप आ जाते हैं। परन्तु हे आत्मा ! परमात्मा की स्मृति इतनी सरल नहीं है। इसके लिए तुम्हें ब्रम्हचर्य का पालन करना होगा। ब्रम्हचर्य के लिए आहार की शुद्धता, मन, वचन और कर्म की पवित्रता तथा पूर्ण दृढ़ता की आवश्यकता है। पूरी आस्था और विश्वास की आवश्यकता है। ब्रम्हचर्य के बिना परमात्मा की स्मृति और समत्व योग में स्थित होना असम्भव है। विकारी जीवन जी कर कोई ब्रम्हचर्य का पालन नहीं कर सकता। और बिना ब्रम्हचर्य के परमात्मा की स्मृति नहीं हो सकती। ब्रम्हचर्य पालन के लिए खान-पान में शुद्धता होनी चाहिए। शुद्ध भोजन से शरीर में जो खून बनता है वह सात्विक होता है। इससे मन में शुद्ध विचार आते हैं। बुद्धि निर्मल और संतुलित होती है। काम और क्रोध का विनाश होता है। मन निर्मल और काया पवित्र होती है। एकाग्रता बढ़ती है और जीवन आनन्द से भर जाता है।

हे आत्मा ! तुम परमात्मा की संतान हो, इस बात को कभी मत भूलो। संसार में इस सत्यता को भूलने से ही सारे अनर्थ होते हैं। व्यक्ति देह अभिमान में फस जाता है और देही को भूल जाता है। उसे परमात्मा की याद तक नहीं आती। ऐसा व्यक्ति परमानन्द नहीं पा

सकता। परमात्मा तुम्हारा पिता है, यदि तुम इस बात को याद रखते हो तो उसका सब कुछ तुम्हारा है। वह इतना दयालु है कि एक प्रेम के ऊपर अपना सब कुछ अर्पित कर देता है। बाधा तब आती है जब तुम उसे भूल कर संसार को अपना मानते हो। जबकि इस संसार में तुम एक मेहमान की तरह आये हो। इस संसार रूपी सराय में तुम्हारा कुछ दिन का ही बसेरा है। बाद में तुम्हें लौट कर वहीं जाना है। यहाँ से तेरा नाता केवल एक मेहमान का है। जो एक न एक दिन अवश्य छूट जाना है। अपना सच्चा तो एक वही परमात्मा है। उसी की दी हुई पूँजी से तुम पूँजीपति हो। उसकी अपार कृपा तुम्हारे ऊपर निरंतर झरती रहती है। उसकी करुणा का श्रोत कभी सूखता नहीं है। वह दया का सागर है। वह विश्वास रूप सारे ब्रह्मांड में विराजमान है। इसलिए हे आत्मा ! तुम उस पर पूर्ण आस्था रखो। उस पर अपना अडिग विश्वास रखो। उससे असीमित प्रेम करो। वह तुम्हारे ऊपर प्रेम का सागर उड़ेल देगा। उसकी करुणा से तुम परम आनन्द को प्राप्त होगे। यह मानव जीवन दुर्लभ है। जो बड़े भाग्य से तुम्हें मिला है। इसका सदुपयोग करो। मुक्ति इसी तन से तुम्हें मिलेगी। इसलिए तुम उस परम पिता की भक्ति में लीन हो जाओ। अपने आचरण को शुद्ध बनाओ। सदा सदगुणों से अपने मन को, अपने इन्द्रियों को बस में करो। इन्द्रियाँ प्रकृति की धरोधर हैं। तुम उसका सदुपयोग करो।

हे आत्मा ! तुम शरीर नहीं हो। शरीर तुम्हारी ओढ़नी है। ओढ़नी एक न एक दिन फट जायेगी। वह तुम्हारा साथ छोड़ देगी। परंतु तुम रहोगे। क्योंकि तुम शाश्वत हो। तुम न मन हो, न बुद्धि हो, न अहंकार हो। तुम चिदानन्द स्वरूप शिव हो। पुत्र तो पिता के समान ही होता है। तुम अपने पिता के सच्चे वारिश हो। तुम पंचतत्व नहीं हो। तुम्हें पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु छू भी नहीं सकते। तुम निराकार हो। इन्द्रियों से, पंचतत्वों से परे तुम विज्ञान हो। तुम्हारा नाश कभी नहीं होता। तुम अविनाशी हो। तुम अपने मुख से ऐसी वाणी बोलो कि सुनने वालो को अपना लगे- आत्मीयता से भरी हुई, मिश्री की तरह मीठी, आनन्द देने वाली, राग और द्वेष से परे, अपने और पराये के बन्धन से मुक्त, समता के सागर में डूबी हुई वाणी। जो अपने लिए ही नहीं औरों के लिए भी मंत्र बन जाय। जिसे सुनकर हृदय के तार झंकृत हो उठे। मन गीत गाने को व्याकुल हो जाय। अन्तरात्मा की आवाज अन्तरात्मा के लिए गोहार कर उठे। लेकिन याद रखना जब तक मन शुद्ध नहीं होगा, मुख से ऐसी आवाज नहीं निकलेगी। गंगा में स्नान करने से मन शुद्ध नहीं होगा। गंगा में स्नान करने से तन का मैल धुल सकता है। जो फिर कुछ समय में गंदा हो जायेगा। मन की शुद्धि तो प्रेम की गंगा में डुबकी लगाने से होगा। तुम प्रेम की नदी में

डूब कर स्नान करो। तुम्हारा मन निर्मल हो जायेगा। मन का स्वभाव चंचल होता है। इससे घबराना मत। मन चंचल नहीं होगा तो प्रेम गंगा में डुबकी कैसे लगायेगा। तैरेगा कैसे। मन अगर स्थिर हो जाय तो तुम जड़ हो जाओगे। जड़ का चेतन से क्या नाता। मन की चंचलता तुम्हें अपनी चेतनता का आभाष दिलाती रहती है। तुम्हें खीच कर ज्ञान के सागर में ले जाती है। तुम्हें स्व-स्वरूप की पहचान कराती है। इसलिए मन की चंचलता का स्वागत करो। मन को धन्यवाद दो कि वह चंचल रूप में तुझे मिला है। अगर मन नहीं होता तो कर्मयोग भी नहीं होता। क्योंकि सारे कर्मो के भूल में एक मन ही तो है।

हे आत्मा ! मन की शुद्धता के लिए बुद्धि है। वह देखती है कि मन में उठने वाले संकल्प-विकल्प कैसे हैं - अच्छे हैं या बुरे हैं, विकारी हैं या निर्विकारी हैं, सतोगुणी हैं, रजोगुणी हैं या तपोगुणी हैं। वह मन के एक-एक बिन्दु का बारीकी से छानबीन करती है। वह मन को निर्मल करती है। तदुपरान्त मानव द्वारा होनेवाले सारे कार्य हितकर होते हैं। कर्मो का हितकारी होना ही बुद्धि का लक्ष्य है। इसलिए अपनी बुद्धि को सचेत रखो। बुद्धि जितनी सचेत होगी उतना ही तुम्हारा कर्म श्रेष्ठ होगा। और कर्म जितना परहितकारी होगा उतना ही तुम्हारा उत्थान होगा, उतना ही तुम निर्मल होगे, उतना ही तुम परमात्मा के नजदीक होगे। इसलिए हे आत्मा ! तुम अपनी बुद्धि को सचेत करो। कर्मों को परसेवा में लगाओ। पूर्ण समर्पण के साथ पर-सेवा करना ही परमात्मा की भक्ति है। भगवान द्वारा सृजन की गई इस पृथ्वी पर जितने जीव हैं, पेड़-पौधे हैं, पशु-पक्षी हैं, कीट-पतंगे हैं - सबके प्रति परोपकार की भावना रखो। यही सच्ची भगवान के प्रति प्रीति है, यही सच्चा कर्म है।

हे आत्मा ! मैं जानता हूँ कि जन्मों-जन्मों से विकारी तुम्हारा यह जीवन तुरन्त निर्विकारी नहीं होगा। इसके लिए तुम्हें बहुत अभ्यास करना होगा। युगों-युगों से दैहिक सम्बन्धों के कारण तुम अपने को देह समझ बैठे हो। तुम्हें विश्वास हो गया है कि मैं देह हूँ। तुम भूल गये हो कि तुम आत्मा हो। तुम्हें विस्मृति हो गई है अपने सत्य की। तुम्हें मालूम नहीं कि तुम परमात्मा की संतान हो- उस परमात्मा की जो सारे जहाँ का मालिक है। जिसके एक इशारे पर सारी पृथ्वी में भूचाल आ सकता है। जिसकी एक मुसकान से सारे संसार में खुशियों की वर्षा हो सकती है। जिसके चाह से ही संसार की चाह है। जिसकी मुरली की आवाज सारे विश्व में संगीत भर देती है। जिसकी कृपा मात्र से मानव धन्य हो जाता है। जिसे पा कर कुछ भी पाना शेष नहीं रह जाता, जो स्वयं सच्चिदानन्द स्वरूप है। जिसके

आनन्द में डुबकी मार कर मानव संसार के सारे बंधनों से मुक्त हो जाता है। तुम ऐसे परमात्मा के पुत्र हो। फिर भी एक भिखारी की तरह हाथ फैलाये माँगते फिरते हो। क्या यह तुम्हें अच्छा लगता है ? क्या इस तरह द्वार-द्वार माँगना तुम्हारे लिए उचित है ? अरे यदि तुम्हें माँगना ही है तो उस परमात्मा से माँगो; जिसकी कृपा तुम्हारे ऊपर निरंतर बरसती रहती है। जो तुम्हारे ऊपर अपना सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार बैठा है। तुम शरणागत हो तो उसी परमात्मा के श्री चरणों में हो। तुम ध्यान करो तो उसी परमात्मा का ध्यान करो। वही तुम्हारा कल्याण करेगा। वही तुम्हारा प्रकाश है। वही तुम्हारी राह है।

हे आत्मा ! तुमने कभी सोचा है कि वह परमात्मा निरंतर तुम्हारे साथ रहता है। जो तुम्हारे हर कदम पर अपनी कृपा न्यौछावर करता है। जिसके स्मरण में सदा तुम विद्यमान रहते हो। जो तुम्हारे रँग-रँग में चेतन रूप में विद्यमान है। क्या उसे तुम कभी याद करते हो। क्या तुम्हारे स्मरण के सभी तरीके ढोंग नहीं हैं ? क्या तुम सच्चे हृदय से उसकी उपासना करते हो ? क्या तुम उपासना में कामना का भाव नहीं रखते ? क्या तुम सांसारिक सुख के लिए उसे भूल नहीं गये हो ? क्या तुम्हारे सभी पूजा पाठ छलावा मात्र नहीं है ? क्या तुम ईश्वर की श्रृष्टि से नफरत नही करते ? बोलो मेरे आत्मा ! जो सदा करुणा की निगाह से तुम्हारी ओर देखता है क्या तुम उससे प्रेम करते हो ? नहीं न ! फिर सुख, शान्ति और आनन्द की कामना क्यों करते हो ? तुम माया में फस कर उस परमात्मा को भूल गये हो। तुम झूठ के लिए सत्य को भूल गये हो। तुम जीवन के लिए जीवनदाता को भूल गये हो। कितने बड़े मुर्ख हो तुम। जिस सुख के पीछे तुम पागलों की तरह दौड़ते हो, वह सांसारिक सुख, सुख नहीं है। सच्चा सुख नश्वरता में नहीं मिलता। सच्चा सुख तो शाश्वत तत्व की विशेषता है। वह तो परमात्मा के प्रेम में ही मिलता हैं। पर तुम इतने बड़े अज्ञानी हो कि संसार के पीछे उस सुख-सागर को ही भूल गये हो। याद रखो कि संसार में सुख नहीं है। सुख तो परमात्मा की स्मृति में है। संसार में तो केवल इच्छायें हैं , दुख है। मन में एक इच्छा उठी, जैसे-तैसे पूरी हुई या नहीं हुई, पर दूसरी इच्छा उठ खड़ी हो गई। एक इच्छा की पूर्ति और दूसरी इच्छा के उठने के बीच के समय को तुम सुख कहते हो। उसी खाली समय को तुम सुख का नाम देते हो। पर वह सुख नहीं है। वह तो तुम्हारी निष्क्रीयता की अवस्था है। उस समय तुम शून्य हो जाते हो। उस समय तुम अकर्मण्य हो जाते हो। उस निष्क्रियता को, उस शून्यता को, उस अकर्मण्यता को तुम सुख कहते हो। परन्तु सुख तो कुछ और ही है। सुख को तुमने आज तक देखा ही नहीं, पहचाना ही नहीं, जाना ही नहीं। सुख तो एक ऐसी अनुभूति है जिसकी झलक मात्र से मानव जीवन आनन्दित हो उठता है,

इच्छाओं का अंत हो जाता है। मन में न ममता रह जाती है न कामना उठती है। राग-द्वेष सब समाप्त हो जाते हैं। काम-क्रोध जैसे विकार मन से दूर भाग जाते हैं। देहाभिमान को भूलकर मानव आत्माभिमान में मस्त हो जाता है। उस अलौकिक सुख के सामने इस लौकिक सुख की कोई तुलना नहीं है। तुम एक बार उस अलौकिक सुख का अनुभव कर लो फिर तुम संसार-सुख को भूल जाओगे। तुम्हें सांसारिक सुख तुच्छ लगने लगेंगे। तुम ऐसा अनुभव करोगे कि अभी तक तुम हीरा को छोड़कर काँच के पीछे दौड़ रहे थे। तब तुम्हें हीरा और काँच की सच्ची परख हो जायेगी। अभी तो तुम काँच को ही हीरा माने बैठे हो। हे आत्मा, तुम जागो ! हीरा और काँच के अन्तर को पहचानो। एक बार तुम उस सुख को प्राप्त कर लो फिर तुम्हें सांसारिक सुख की आवश्यकता नहीं होगी। सांसारिक सुख तो तुम्हें बाँधने वाले हैं। तन का, धन का, सन्तान का आदि जितने भी सुख हैं, सब मोह के बंधन हैं। जिसमें फस कर तुम अंधे हो जाते हो। तुम्हें प्रकाश में भी दिखाई नहीं देता। तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। तुम अनजाने राही की तरह रास्ता भटक जाते हो। जिस रास्ते को परम पिता परमात्मा ने तुम्हारे लिए बनाया है, उसे तुम भूल जाते हो। तुम विकारी पथ पर चले जाते हो। जहाँ तुम्हारे साथी होते हैं - राग और द्वेष। जहाँ चलने को प्रेरित करते हैं काम और क्रोध। जिस पर चलते हुए तुम्हारी आँखों पर रहता है मोह का पर्दा। जहाँ तुम लोभ में नित झुलसते रहते हो। जहाँ मद का नशा इस तरह छाया रहता है कि तुम्हारी बुद्धि विनाशी और अविनाशी में भेद ही नहीं कर पाती। वह पाप और पूण्य की परिभाषा तक भूल जाती है। इसलिए हे आत्मा तुम जागो ! तुम इस सच्चाई को अपने में दृढ़ता से भर लो कि मैं देह नहीं हूँ। मैं मन नहीं हूँ, मैं बुद्धि नही हूँ। मैं निराकार परमपिता परमात्मा का पुत्र हूँ। मैं सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ। मैं स्वयं शिव हूँ।

हे आत्मा ! यह शुद्ध परमात्म-स्मृति बार-बार अभ्यास से ही होगी। तुम नित प्रति इसे अभ्यास करो। तुम याद करो कि मैं परमपिता परमात्मा का एक शाश्वत अंश हूँ। मुझमें सारे ऐश्वर्य मौजूद हैं जो परमात्मा में हैं। तुम केवल सुबह और शाम ही नहीं दिनभर के कार्य-व्यवहार में भी उस परमात्मा को याद करो। हे आत्मा ! माया इतनी प्रबल है कि जगत व्यवहार करते समय तुम्हें उस परमात्मा को याद नहीं करने देती। वह मानव को देहाभिमान में फँसा रखती है। मानव उसी अभिमान में भगवान को भी भूल जाता है। वह उसी अभिमान में अपने सारे कर्मो का कर्ता स्वयं को मानने लगता है। लेकिन हे आत्मा ! तुम इस भुलावे में मत पड़ना। तुम निरन्तर योगाभ्यास में लगे रहना। अभ्यास के प्रथम दिनों में तुम्हें आलस सताएगी। उदासी भी आयेगी। तुम्हारा मन खिन्न भी होगा। क्योंकि

इतना बड़ा परिवर्तन कोई आसान काम तो नहीं है। फिर भी यदि तुम लगे रहोगे तो सफलता अवश्य मिलेगी। कभी-कभी अभ्यास के दौरान ऐसा भी होता है कि अभ्यास करते-करते उस अभ्यास का ही अभिमान साधक को हो जाता है। यह अभिमान और भी पतन का कारण है। क्योंकि योगाभ्यास का अभिमान इतना बारींक होता है कि साधक समझ ही नहीं पाता और वह उस रोग से ग्रसित हो जाता है। इसलिए तुम सदा सजग होकर अभ्यास करो। तुम्हें योग से ही परमात्मा का संयोग प्राप्त होगा। योग भगवान से मिलने का एक सरल साधन है। इसके लिए मन की स्थिरता और एकाग्रता अति आवश्यक है। तुम एकाग्रचित्त होकर स्थिर मन से योगाभ्यास करो। महर्षि पतंजलि के अनुसार चित्त वृत्तियों का निरोध ही योग है। अत: तुम अपने मन के अन्दर उठने वाले समस्त संकल्प और विकल्प का निरोध करो। तुम्हें धीरे-धीरे परमात्म प्राप्ति की अनुभूति होने लगेगी। तुम्हें एक अलौकिक आनन्द की अनुभूति होगी। तुम्हारा मन पवित्र हो जायेगा। भीतर में अध्यात्मिक दिव्यता छा जायेगी। वाणी से प्रेम रस टपकने लगेगा। तुम्हारा सारा व्यवहार बदल जायेगा। तुम्हारे हर व्यवहार में परहित की झलक आने लगेगी। तुम सदा औरों के हित की बात ही सोचोगे। तुम्हें आदि, मध्य और अन्त का ज्ञान हो जायेगा। तुम स्वयं पतित पावन बन जाओगे।

हे आत्मा ! ईश्वर के पथ पर चलते समय तुम्हें अनेक कठिनाईयों का सामना करना होगा। तुम्हें कई प्रकार की अनजान परीक्षाओं से गुजरना होगा। परन्तु तुम्हें अपने पथ से विचलित नहीं होना है। तुम्हें निरन्तर अभ्यास में लगे रहना है। तुम अज्ञानी नहीं हो। तुम ज्ञान स्वरूप परमात्मा के पुत्र हो। इसलिए विपरीत परिस्थिति आने पर भी तुम उसका डट कर मुकाबला करो। तुम्हें अपने शान्त स्वरूप में स्थिर रहना है। तुम सतकर्म करने आये हो। तुम्हारी नियति निश्चित है। तुम्हें रंगमंच पर वही पाठ अदा करना है जो तुम्हें पूर्व में परमात्मा से मिला है। उसके विपरीत यदि तुमने पाठ किया तो तुम्हें दुख मिलेगा। तुम इस विशाल नाट्यशाला के एक पात्र हो। तुम्हारा पाठ पूर्व से ही निश्चित है। तुम्हारे स्वभाव और संस्कार के अनुरूप पवित्र, सरल, उज्ज्वल, उदार आदि जैसा भी पाठ तुम्हें मिला है वैसा ही तुम्हें करना है। यदि तुमने अपने निर्धारित पाठ के प्रतिकूल व्यवहार किया तो असफलता और निराशा ही हाथ लगेगी। तुम चिन्ता से ग्रसित हो जाओगे। तुम्हारा मन व्याकुल हो जायेगा। इसलिए तुम अपने उत्तरदायित्व का बखूबी निर्वाह करो।

हे आत्मा ! योगाभ्यास से तुम्हें हर परिस्थिति में जीना आ जायेगा। परिस्थितियाँ तुम्हारी दासी हो जायेंगी। तुम योग युक्त हो जाओगे। तुम हाय-हाय को छोड़कर हरि का

स्मरण करने लगोगे। मन परमात्मा में टिक जायेगा। जीवन रसमय हो जायेगा। तुम्हारा योग अटूट और अखंड हो जायेगा। तुम्हारा प्रेम सहज और सरल ढंग से निरन्तर निर्विघ्न प्रवाहित होने लगेगा। तुम निन्दा और स्तुति से दूर हो जाओगे। तुम्हें हानि-लाभ में कोई भेद नजर नहीं आयेगा। तुम अद्वैत की स्थिति में समाधिस्त हो जाओगे।

हे आत्मा ! तुम परमात्मा के साथ सच्चा सम्बन्ध रखो। झूठ-मूठ का ढोंग मत करो। सच्चा सम्बन्ध तभी होगा जब स्मृति में भगवान का ध्यान होगा। तुम किसी भी व्यक्ति के साथ हो, किसी भी वस्तु के साथ हो अथवा किसी भी परिस्थिति में हो, तुम्हें परमात्मा का ध्यान बना रहे। तुम्हें हर व्यक्ति, वस्तु और परिस्थिति परमात्ममय दीखता रहे। योग के दो ही तो साधन हैं - या तो तुम्हें व्यक्ति, वस्तु और परिस्थिति को भूल कर एक परमात्मा की याद आये अन्यथा तुम हर व्यक्ति, वस्तु और परिस्थिति को ईश्वर रूप ही देखने लगो। लेकिन याद रखना कि हर व्यक्ति, वस्तु और परिस्थिति में ईश्वर रूप देखना बड़ा कठिन है। क्योंकि सांसारिक भौतिक रूप साधक को बन्धन में बाँध लेते हैं। साधक सोचता है कि मैं तो ईश्वर की ओर जा रहा हूँ, पर होता कुछ और ही है। माया धीरे-धीरे अपना हाथ फैलाती है। और उसकी बुद्धि को दबोच लेती है। फेर लेती है मन को अपनी ओर। फँस जाता है आत्मा माया की जाल में। इसलिए माया से तुम सदा सावधान रहो। तुम सदा याद रखो कि इन सारे सम्बन्धियों से केवल इसी जन्म का नाता है। और केवल कर्मों का ही नाता है। इस जन्म से पूर्व मैं कहाँ था, ये कहाँ थे, कुछ पता नहीं। प्रारब्ध कर्मों के कारण ही हम इकट्ठे हुए हैं। अतः कर्मफल ही हमारे मिलन का आधार है। इसलिए हे आत्मा ! इस वर्तमान जीवन में तुम कर्मफल ही तो भुगत रहे हो। इस जन्म में कुछ भी ऐसा कर्म मत करो जिससे फिर जन्म लेना पड़े। तुम माया से सावधान रहते हुए सदा याद रखो कि जैसे मेरे भीतर आत्मा है वैसे ही प्रत्येक प्राणी में उस परमात्मा का अंश आत्मा है। अतः सभी प्राणी केवल प्राणी नहीं हैं बल्कि परमात्मा का अंश होने के कारण परमात्मा ही हैं। जैसे किसी कार्यक्रम में पिता के स्थान पर यदि पुत्र उपस्थित होता है तो उसे पिता की ही उपस्थिति मानी जाती है। वैसे ही हर प्राणी को उस परम पिता परमात्मा की ही उपस्थिति मानो। तभी तुम हर व्यक्ति, वस्तु और परिस्थिति में परमात्मा को देख सकोगे। ऐसी दृष्टि ईश्वरीय दृष्टि कहलाती है। जीवन जीने के लिए कर्म तो करना है। पर कर्म ऐसा करो कि तुम्हारा हर कर्म कर्मयोग बन गया। यह कर्मयोग ही तुम्हारी मुक्ति का कारण है। यदि हर कर्म के साथ ईश्वर की स्मृति हो जाय तो मुक्ति को पाना कठिन नहीं है।

हे आत्मा ! ये लौकिक सम्बन्ध तुम्हें क्या सुख देंगे। जो सम्बन्ध खुद में नश्वर हैं, क्षणभंगुर हैं, वह दूसरे को क्या सुख देंगे। इस लोक में तुम सुख की कल्पना मत करो। सुख इस संसार में नहीं है। यह संसार तो कर्म स्थली है। यहाँ कर्म करना है - बिना फल की चाह के। क्योंकि फल तुम्हारे हाथ में नहीं है। जैसा तुम सोचते हो क्या वैसा फल तुम्हें मिलता है; नहीं। क्यों नहीं मिलता ? क्योंकि फल फलदाता के हाथ में है। वह तुम्हारे कर्मों का परीक्षण कर फल देता है। तुम्हारा कर्म तो कार्य करना है। यही तुम्हारा एक मात्र परम पुरुषार्थ है। लौकिक सम्बन्ध तो तुम्हें विषय विकारों में ही फसायेंगे। वरना बच्चों को क्या पता कि विकार क्या होता है। लौकिक सम्बन्धों से ही तो तुम्हें विकारों का ज्ञान होता है। वरना तुम तो परम पवित्र, परम निर्मल, परम शुद्ध निर्विकारी एक बच्चे के रूप में जन्म लिए थे। जिसमें सकार या विकार या निर्विकार का नामो-निशान नहीं था। फिर कहाँ से आ गये इतने सारे विकार। सब विकार व्यक्तियों, वस्तुओं और परिस्थितयों के संयोग से आये हैं। अर्थात् सभी विकार इन लौकिक सम्बन्धों से ही आये हैं। अगर इन लौकिक सम्बन्धों से तुम दूर रहे होते तो क्या विकारों को जान पाते। तब तो तुम अपने स्वाभाविक रूप में शुद्ध और निर्मल प्रकाश ही होते। परंतु उस प्रकाश को किसने बुझाया ? तुम्हारे जीवन में अंधकार किसने किया ? तुम्हारे अपने सम्बन्धियों ने। इसलिए सम्बन्धियों से तुम सदा सावधान रहो। मत भूलो कि उन्हें छोड़कर एक दिन तुम्हें जाना है। ये सम्बन्धी भी अपना पाठ अदा कर एक न एक दिन चले जायेंगे। तुम्हारे तमाम मनाने पर भी ये नहीं रुकेंगे। एक मिनट के लिए भी वे जाने में देरी नहीं करेंगे। वे इतने मजबूर होंगे कि चाहने पर भी एक क्षण के लिए नहीं रुक सकेंगे। उन्हें इस संसार से जाना ही पड़ेगा। सब कुछ छोड़कर वे चले जायेंगे और तुम छाती पीटते रह जाओगे। यही संसार का नियम है। जो आया है सो जायेगा। इसलिए तुम इनसे मोह मत करो। जन्म लिए हो तो सतकर्म करो, सदविचार रखो; ताकि हर कर्म उस ईश्वर का होकर कर्मयोग बन जाय। हर विचार ईश्वरमयी होकर ज्ञान योग बन जाय। हर भावना उस परमात्मा पर समर्पित होकर भक्ति-योग बन जाय। और जन्म जन्मान्तर के सारे विकार और पाप धुल जाँय।

हे आत्मा ! परमात्मा से श्रेष्ठ और प्यारा तुम्हारा अपना कोई नहीं है। तुम इस भूल में मत रहना कि संसार में तुम्हारी कोई मदद करेगा। मददगार तो वही एक है - परम पिता परमेश्वर। वही माता है, वही पिता है, वही बंधु है, वही सखा है। उसके अलवा संसार में और सब कुछ धोखा है। तुम जन्म-जन्मान्तर से धोखा खा रहे हो। क्या तुम्हारी आँखें आज भी नहीं खुली हैं। तुमने कितने कष्टों को सहा है. अपने इन सम्बन्धियों के लिए।

कितनी विपत्तियाँ सही हैं इनके साथ। इनसे सुख पाने के लिए तुमने क्या-क्या नहीं किया है। लेकिन क्या तुम आज तक सुख पा सके हो। क्या तुम रेगिस्तान में चमकते रेत को पानी समझ कर उस मुसाफिर की तरह इस संसार में सुख के पीछे नहीं भाग रहे हो जो सुख रूपी पानी का प्यासा है। तुम जितना चमकते रेत के पीछे भाग रहे हो उतना ही सुख रूपी पानी तुमसे दूर होता जा रहा है। क्योंकि उस चमकते रेत में पानी है ही नहीं। अगर कुछ है तो केवल तुम्हारा भ्रम। ऐसे ही संसार में सुख नहीं है। सुख तो उस परम पिता परमात्मा के रूप में है। जिसे तुम इस भ्रम के कारण भूल गये हो। इसलिए यह मानव शरीर, जो जीव के लिए दुर्लभ है, जो तुम्हें तुम्हारे पूण्य सतकर्मो के कारण मिला है, उसे परमात्मा के प्रेम में लगा दो। परमात्मा भी तुमसे यही चाहता है। वह चाहता है कि तुम उसे कभी न भूलो। लेकिन एक तुम हो कि उसे याद भी करते हो तो स्वार्थ से। निस्वार्थी होकर तुम उस परमात्मा को कभी याद ही नहीं करते। मंदिर या मस्जिद में जब्र कभी भी तुम जाते हो तो उस परमात्मा से कुछ माँगने। हे परमात्मा मुझे करोड़पति बना दो, मुझे पुत्र दे दो, मुझे सुन्दर पति या पत्नी दे दो, मेरी पदोन्नति कर दो, और न जाने कितनी अनगिनत कामनायें। तुम माँगते जाते हो और तुम्हारी मांगने की इच्छा बढ़ती जाती है। जीवन समाप्त हो जाता है पर माँगने की इच्छा समाप्त नहीं होती ...। तुम कितने पागल हो। वह तुम्हारा पिता है। तुम उसकी संतान हो। उसका सब कुछ तुम्हारा है। और तुम हो कि उससे माँगते हो। उससे गिड़गिड़ाते हो। अरे! कोई अपनी चीज के लिए गिड़गिड़ाता है क्या ? तुम्हें अपनी चीज के लिए गिड़गिड़ाने की जरूरत नहीं है। बस, तुम अपने परम पिता को हृदय से याद करो। उससे सच्चा प्रेम करो। तुम उसे अपना पिता मान लो। वह तो बाँह फैलाये खड़ा है। तुमने कभी छोटे बच्चे को आँगन में खेलते देखा है। बाप दोनों बाँहें फैलाये कहता है - 'आ जा बेटा! आजा बेटा, आजा-आजा...।' और नन्हा बच्चा गिरते पड़ते दौड़ते बाप की गोदी में आ जाता है। उस समय पिता पुत्र गले मिलकर आत्म विभोर हो जाते हैं। उसी प्रकार परमात्मा भी तुम्हें अपने गले लगाकर आत्म विभोर होना चाहता है। बस, देरी है तो तुम्हारे आने की। वह तो प्यार से तुम्हारी ओर देख रहा है। तुम्हीं हो कि पीठ उसकी तरफ किये संसार की ओर देख रहे हो। तुम्हें परमात्मा की ओर मुख मोड़ना है। तुम्हें परमात्मा की ओर देखना है। तुम्हारी सार्थकता इसी में है कि तुम उससे प्यार करो। वह तुम्हें अपनी गोद में बिठा लेगा। फिर तो संसार के सारे सुख तुम्हारे कदमों में होंगे। उस अलौकिक सुख के समक्ष ये सांसारिक सुख कहाँ लगते हैं। कहाँ परमात्मा का सुख, कहाँ संसार का सुख। कोई तुलना ही नहीं है। परमात्मा खुद सुख है। वह सुख का सागर है। संसार दुख है, वह

दुख का पहाड़ है। परमात्मा की गोद़ी का सुख भला संसार में कहाँ मिल सकता है। वह तो बार-बार कहता है कि मैं तुम्हारा पिता हूँ। तुम मेरे पुत्र हो। इसलिए मेरी गोदी में आओ। पर तुम हो कि मानते ही नहीं। मंदिर में जाकर स्वार्थ के लिए न जाने क्या-क्या उसे संबोधन देकर पुकारते हो- सुखदाता, सर्वशक्तिमान, परमपिता, करूणा के सागर, दया सागर- और न जाने क्या क्या। पर मानते क्यों नहीं ? क्यों मंदिर से बाहर आकर सब भूल जाते हो ? क्यों हड्डी और मांस से बने नश्वर शरीर पर दीवाने हो जाते हो ? क्यों विनाशी जगत पर इठलाते हो ? क्यों तुम्हें परमात्मा की याद नहीं आती ? क्यों तुम स्वार्थ के लिए उसे याद करते हो ? क्यों तुम परार्थ के लिए उसे याद नहीं करते ? सब प्रश्नों का एक ही उत्तर है - स्वार्थ। तुम्हें इसी स्वार्थ को छोड़ना है। स्वार्थ ही लोभ है। लोभ ने तुम्हें अंधा बना दिया है। तुम लोभ का त्याग कर परमात्मा की शरण में जाओ। परमात्मा तुम्हें प्यार करने के लिए आतुर है। वह दोनों बाहें फैलाए तुम्हारी राह देख रहा है।

हे आत्मा ! परमात्मा बहुत सुन्दर है। वह कमल के समान कोमल है। रात-रानी के समान सुगन्धित है। प्रेम का सागर है। वह सत्य है, शिव है। वह मन को मोह लेता है। तुम उससे प्रेम कर लो। अभी तुम संसार की सुन्दरता पर मोहित हो। एक बार तुम परमात्मा की सुन्दरता को देखो। फिर तुम्हारी सुन्दरता भी निखर जायेगी। फिर तुम्हारे सामने संसार की सुन्दरता फीकी पड़ जायेगी। संसार की सुन्दरता तो नश्वर है। पर परमात्मा की सुन्दरता शाश्वत है। उसमें कभी कोई कमी नहीं होती। उसकी सुन्दरता सदा एक रस रहती है। जिस सांसारिक सुन्दरता में तुम खोये रहते हो वह तो दिनों -दिन क्षीण होती जाती है। उस सुन्दरता में नाना प्रकार के रोग हैं। अकाल मृत्यु है। परन्तु परमात्मा की सुन्दरता तो नित्य है, मृत्यु से परे है। संसार के विनाश के बाद भी उसका विनाश नहीं होता। वह सुन्दरता रोग को दूर करने वाला और मृत्यु के भय का नाशक है। च्रौसठ कलाओं से परिपूर्ण परमात्मा की सुन्दरता ही पूर्ण सुन्दरता है। संपूर्ण कलाओं से परिपूर्ण परमात्मा के सुन्दरता की एक झलक भी जीवन को धन्य कर देती है। मानव की दृष्टि बदल जाती है। मन स्थिर हो जाता है। चित्त में परम शान्ति छा जाती है। उस सुन्दरता से ही संसार की सुन्दरता है। उस सुन्दरता की एक झलक भर से जगत वैकुंठ के समान पवित्र हो जाता है। इसलिए हे आत्मा ! तुम मन, वचन और कर्म से परमपिता परमात्मा की सुन्दरता को निहारो। उसकी सुन्दरता में ही तुम्हारी सुन्दरता है। उसे निहार कर तुम्हारा हृदय कमल के समान खिल उठेगा। बस, तुम जी भर के एक बार उसकी सुन्दरता देख लो।

हे आत्मा ! तुम अपने कर्त्तव्यों के प्रति पूरा ध्यान दो। तुम्हारा कर्त्तव्य केवल संसार के प्रति ही नहीं है बल्कि परमात्मा के प्रति भी है। तुम सांसारिक कर्मों के प्रति तो ध्यान देते हो पर परमात्मा के प्रति उदासीन हो जाते हो। उसकी स्मृति के प्रति तुम्हारा ध्यान ही नहीं जाता। तुम अपने सच्चे कर्त्तव्य को भूल जाते हो। तुम अपने सांसरिक सम्बन्धियों में इतने उलझ गये हो किं परमात्मा की याद के लिए तुम्हारे पास समय नहीं है। यह कैसी विडम्बना है। जिस परम पिता से तुम्हारी सत्ता है, उसे ही तुम भूल गये हो। तुम्हें दफ्तर जाने की याद रहती है। तुम दुकान समय पर खोलते हो। तुम ट्रेन पकड़ने के लिए समय पर रेल्वे स्टेशन जाते हो। तुम्हें स्कूल जाने का समय याद रहता है। और तो और; यदि घर में कोई बीमार हो जाय तो सब काम छोड़ कर डॉक्टर के पास जाते हो। पर ईश्वर को याद करने के लिए तुम्हारे पास समय नहीं है। तुम अपने दैनिक कार्यों में फेर बदल करके पिकनिक के लिए समय निकाल सकते हो, पार्टी मना सकते हो, लेकिन परमात्मा को याद नहीं कर सकते। उसके लिए तुम्हारे पास समय नहीं है। कैसी मजबूरी है तुम्हारी। माया में तुम इस कदर फस चुके हो कि तुम्हे अपने ही पिता की याद नहीं आती। उसी को याद करने के लिए तुम्हारे पास समय नहीं है। तुम्हें मालूम है कि यह मानव तन बड़ी तपस्या से मिला है, तुम्हें मालूम है कि सब कुछ छोड़कर एक दिन तुम्हें यहाँ से जाना है, तुम्हें मालूम है कि हर क्षण तुम्हारे सिर पर काल खड़ा है - फिर भी तुम उस परमात्मा को भूले हुए हो। तुम्हें अपने घर - परिवार से इतना भी समय नहीं मिलता कि तुम उसका स्मरण कर सको। अगर यह जन्म हाथ से निकल गया तो फिर पछताने के अलावा और कुछ हाथ नही लगेंगा। इसलिए जैसे गोपियाँ घर-बार छोड़कर, लोक-लाज त्याग कर, मोह माया को तिलांजलि दे श्री कृष्ण की मुरली सुनते ही पागलों की तरह उनसे मिलने के लिए दौड़ पड़ती थीं वैसे ही तुम भी सब कुछ त्याग कर उसके पीछे दौड़ पड़ो। यह तभी सम्भव है जब तुम्हारे भीतर भी उस परमात्मा से मिलने की वैसी ही तल्लीनता हो, वैसा ही त्याग हो, वैसी ही व्याकुलता हो जैसे गोपियों में था। तभी तुम उस परम पिता परमात्मा का सच्चा प्यार पा सकोगे। तभी तुम उस परमेश्वर के अपने हो सकोगे।

हे आत्मा ! इस समय धर्म की हानि हो रही है। असुर प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं। व्यक्ति अभिमान में डूबा हुआ है। मानवता कराह रही है। धरती पर रीति-नीति, संस्कृति-मर्यादा का नाश हो चुका है। चारो तरफ हाहाकार है। लोग आपस में लड़ रहे हैं। खून की नदियाँ बह रही हैं। अनेक अस्त्र-शस्त्र पूरी पृथ्वी को जला कर भस्म करने के लिए तैयार हैं। अधर्म सर चढ़कर नाच रहा है। लगता है कि महाविनाश की घड़ी निकट आ चुकी है।

क्योंकि जब-जब भी धर्म की हानि हुई है और असुर प्रवृत्तियाँ संसार में बढ़ी हैं तब-तब महाविनाश हुआ है, तब-तब धर्म की स्थापना और असुरों का नाश करने के लिए ईश्वर ने अवतार लिया है। ईश्वर की कृपा से पृथ्वी पुनः असुरों से मुक्त हुई है। इसलिए हे आत्मा ! तुम संसार की चिन्ता परमात्मा पर छोड़ दो। तुम तो अपनी चिन्ता करो। अपने को पवित्र बनाओ। आत्म -पवित्रता का एक ही आधार है - हरि भजन। तुम हरि के नाम का स्मरण करो। नाम स्मरण से ही तुम्हारा उद्धार होगा। तुम्हें देखना है कि हरि नाम स्मरण में तुम्हारी कितनी आस्था है, कितना विश्वास है, कितना प्रेम है। जिसके स्मरण में पक्का विश्वास होगा, सच्ची आस्था होगी, समर्पित प्रेम होगा, निर्मल भक्ति होगी वही परमात्मा तक पहुँच सकेगा। उसे ही परमात्मा की कृपा प्राप्त हो सकेगी। ईश्वर उस पर ही अपनी करुणा का, अपनी दया का सागर उड़ेल सकेगा। इसलिए हे आत्मा ! तुम श्रद्धा से उसे सदा याद करो। उसकी कृपा के बिना संसार में कुछ भी घटित नहीं होता। तुम लाख प्रयत्न करो परन्तु जब तक उसकी कृपा नहीं होगी तब तक सब व्यर्थ है। अतः उसकी कृपा पाने के लिए तुम उसे सदा याद करो।

हे आत्मा ! परमात्मा सदा तुम्हें सम्मति देता है। वह सदा तुम्हें विपत्तियों से उबारता है। उसकी कृपा के हाथ इतने लंबे है कि सारा संसार उसकी छाँव तले निश्चिन्त रहता है। कोई भी जीव अनाथ नहीं होता। नाथों का नाथ परमात्मा मदद के लिए सदा उसके साथ रहता है। संसार में यदि कोई व्यक्ति किसी की मदद करता है तो उसे मदद पाने वाला सदा याद रखता है। जब कभी तुम्हारे ऊपर जरा सी समस्या आती है तो तुम उस मददगार व्यक्ति को याद करते हो। काश वह होता तो मेरी मदद करता। तुम्हें तुरन्त उस व्यक्ति की याद आती है। लेकिन तुम्हें परमात्मा की याद नहीं आती। परमात्मा तो तुम्हारा पिता है। वह नित्य तुम्हारी मदद करता है। हाँ, यह अवश्य है कि उसकी मदद दिखाई नहीं देती। पर उसकी मदद का एहसास तो होता ही है। फिर भी तुम उसे भूल जाते हो। उसके एहसानों को स्मरण नहीं करते। तुम्हारे ऊपर उसके एक दो एहसान नहीं हैं। तुम्हारे ऊपर उसके हजारों-हजारों एहसान हैं। तुम दबे हुए हो उसके एहसान तले। फिर भी तुम उसे भूल जाते हो। तुम्हारी यह कैसी बेहयाई है। तुम सांसारिक व्यक्तियों के थोड़े से एहसान रूपी तलैया को नहीं भूलते, पर परमात्मा के एहसान रूपी सागर को भूल जाते हो। तुमसे बड़ा मूर्ख इस संसार में और कौन होगा। इसलिए तो धर्म की हानि हो रही है। असुर शक्तियाँ बढ़ रही हैं। हे आत्मा तुम जागो। उसे याद करो। उसके एहसानों को याद करो। उसकी दया को याद करो। उसकी करुणा को कभी मत भूलो। वह ही तुम्हारा अपना है। बाकी

सभी तो पराये हैं। यह संसार तो छलावा है। तुम्हें बंधक बनाने वाला है। इसलिए इसके मोह में पड़कर तुम परमात्मा को मत भूलो। उसे सदा याद करो।

हे आत्मा ! तुम्हारा अंत हो जाय, तुम्हारा यह भौतिक शरीर छूट जाय, इसके पहले तुम अपना मन ईश्वर में लगा दो। तुम अपने सांसारिक घर परिवार के मोह को छोड़ दो। घर-परिवार का त्याग मत करो। उसके प्रति अपने सांसारिक उत्तरदायित्व को निभाओ। पर उसे एक सतकर्म समझ कर। उसका उपयोग करो, उसका उपभोग मत करो। वरना् तुम उसमें उलझ जाओगे। तुम दुनियाँ को दखते हुए भी मत देखो। नश्वरता में आसक्त मत हो। जगत क्षण भंगुर है। वह सदा विनाश की ओर जा रहा है। जो व्यक्ति या वस्तु कल नहीं थे वे भले ही आज दीख रहे हो पर कल नहीं रहेंगे। ऐसे नश्वर, बिछुड़ने वाले से कैसा मोह । तुम ज्ञान का दीपक जलाओ और सत्य को पहचानो। ज्ञान का दीपक जलते ही तुम्हें दीखेगा कि यह संसार तो सपना है। हम जिसे सत मान बैठे हैं वह तो झूठा है; सब माया का खेल है। वास्तविक सत्य तो परमात्मा ही है। उसके सिवा कुछ भी सत्य नहीं है।

हे आत्मा ! तुम जरा सोचो। हर व्यक्ति स्वप्न देखता है। स्वप्न में अनेक प्रकार की घटनायें घटती हैं। कभी दुखमयी घटनायें घटती है तो कभी सुखमयी घटनायें घटती है। इन घटनाओं का तुम्हारे ऊपर यथानुकूल प्रभाव भी पड़ता है। तुम दुखमयी घटनाओं से दुखी होते हो। डरावनी घटनाओं से डरते हो। किसी से राग करते हो तो किसी से द्वेष करते हो। यदि सुखकर घटनायें है तो तुम्हें सुख का अनुभव होता है। तुम प्रसन्न होते हो। हर्ष में खिलखिला उठते हो। रोमांचित हो जाते हो। किसी के मरने पर रोते हो तो किसी के पैदा होने पर खुशियाँ मनाते हो। चोट लग जाने पर तुम्हारे शरीर से खून भी बहता है। तुम डाक्टर के पास जाकर इलाज भी कराते हो। तुम्हें कभी मित्रो का प्यार मिलता है तो कभी दुश्मनों का दुदकार भी मिलता है। तात्पर्य यह है कि जो कुछ भी घटनायें जागृत अवस्था में होती हैं और जैसा तुम्हें जाग्रत अवस्था में अनुभव होता है; वे सारी घटनायें स्वप्नावस्था में भी होती है और वैसा ही तुम्हें अनुभव भी होता है। अर्थात् जाग्रत और स्वप्न अवस्था की घटनाओं और अनुभवों में कोई फर्क नहीं होता। परन्तु तुम एक को कहते हो जाग्रत अवस्था और दूसरे को कहते हो स्वप्नावस्था। मेरा प्रश्न है कि तुम कैसे यह निर्णय करते हो कि यह जाग्रत अवस्था है और यह स्वप्नावस्था है। अगर मैं कहूँ कि स्वप्नावस्था ही जाग्रत अवस्था है और जाग्रत अवस्था ही स्वप्नावस्था है, तो कैसे स्पष्ट कर सकोगे कि ऐसी स्थिति आने पर जाग्रत अवस्था कहेंगे और ऐसी स्थिति नहीं आने पर स्वप्नावस्था

कहेंगे। इसका उत्तर शायद तुम यह दोगे कि स्वप्नावस्था में मन, बुद्धि और अहंकार ही जाग्रत रहतें हैं। परन्तु जाग्रत अवस्था में मन, बुद्धि और अहंकार के साथ-साथ पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्म इंन्द्रियाँ भी क्रियाशील रहती हैं। अर्थात् जाग्रत अवस्था में शरीर भी क्रियाशील रहता है। माने, स्वप्नावस्था से जाग्रत अवस्था में अधिक इन्द्रियाँ क्रियाशील होती हैं। परन्तु हे आत्मा ! स्वप्नावस्था में तुम्हारा शरीर और इन्द्रियाँ कार्य नही करते, इसका अनुभव तुम्हें (स्वप्न देखने वाले को) नहीं होता। तुम्हें तो यही अनुभव होता है कि मन, बुद्धि और अहंकार के साथ-साथ तुम्हारी संपूर्ण इन्द्रियाँ भी कार्य करती हैं। तुम्हारी इन्द्रियाँ कार्य नहीं कर रही है; इस बात का ज्ञान तो उस व्यक्ति को होता है जो तुम्हारे (सोये हुए के) बगल में जागा रहता है, जो तुम्हें सोये हुए अवस्था में देखता रहता है। मान लो संसार के सभी व्यक्ति एक साथ सो जाँय; कोई भी व्यक्ति जाग्रत अवस्था में न हो। ऐसी स्थिति में कोई देवदूत कहे कि तुम सो नहीं रहे हो बल्कि जाग रहे हो। यही तुम्हारी जाग्रत अवस्था है। तो क्या तुम उसे सत्य नहीं मानोगे। तुम्हें उसे सत्य मानना पड़ेगा। तुम भ्रम में पड़ जाओगे कि कौन सी अवस्था स्वप्नावस्था है और कौन सी अवस्था जाग्रत अवस्था है। क्योंकि दोनो ही अवस्थाओं में तुम्हें एक सा ही अनुभव होता है, कोई अन्तर नहीं होता। तात्पर्य यह कि दोनों अवस्थायें स्वप्नवत हैं। तुम जिसे जाग्रत अवस्था कहते हो वह भी स्वप्नावस्था ही है। मन में ऐसा दृढ़ निश्चय होते ही तुम्हारा संसार से मोह खत्म हो जायेगा। तुम्हें संसार और संसार के साथ सारे सम्बन्ध झूठे लगने लगेंगे। मन से ममता और कामना का नाश हो जायेगा। राग और द्वेष से परे संपूर्ण पृथ्वी के प्रति तुम्हारी एक दृष्टि हो जायेगी। तुम्हें हर कण-कण में ईश्वर दीखने लगेगा। तुम काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ से मुक्त हो जाओगे। तुम ईश्वर के परम प्रेम में डूब जाओगे। तुम्हें सारा संसार प्रेममय लगेगा। तुम संसार के हर सुगन्ध में उस ईश्वर की सुगन्ध का अनुभव करोगे। तुम्हें हर आवाज में ईश्वर की आवाज सुनाई देगी। देहाभिमान से ऊपर उठ कर तुम स्व में स्थित हो जाओगे। तुम द्वन्द से मुक्त अनासक्त भाव में लीन हो जाओगे। तुम्हारा विवेक जाग्रत हो जायेगा। तुम्हारे ज्ञान का दीपक जल उठेगा।

हे आत्मा ! जिस अवस्था में विवेक जाग्रत हो जाय, ज्ञान की प्राप्ति हो जाय वही पूर्ण जाग्रत अवस्था है। ऐसी अवस्था में सत्य और असत्य स्पष्ट दीखने लगता है। केवल जागना तो स्वप्न में जागना है। लेकिन पूर्ण जागना तो आत्मज्ञान का जागना है। इसे ही योग की अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति **'नष्टो मोहा, स्मृति लब्धा'** की अवस्था में पहुँच जाता है। यही वास्तव में वह अवस्था है जिसमें मानव परम पिता परमात्मा को

जान लेता है। माया से मुक्त अपने-पराये से दूर मानव समता की स्थिति में स्थित हो जाता है। यही है जीते जी मुक्ति की अवस्था।

हे आत्मा ! वह परमात्मा परम वैरागी है। वह आसक्ति में रहता हुआ भी वैसे ही अनासक्त है जैसे कीचड़ में रहता हुआ कमल कीचड़ से अनासक्त है, विरक्त है। वह घट-घट में रहता हुआ भी असंग है। वह उपरामी है। वह प्रेम का सागर है। संपूर्ण ब्रह्मांड के जीव उसके अपने पुत्र हैं। वह परम निर्मोही है। वह संपूर्ण कर्म करते हुए भी कर्मातीत है। वह योगियों के लिए योग है। वह ज्ञानियों के लिए ज्ञान है। वह ज्योति पुंज है। उसके प्रकाश से ही संसार प्रकाशित होता है। वह दाता है। वह अपना सब कुछ देकर ही आनन्द में रहता है। वह सुख का सागर तुम्हारा पिता है। वह तुम्हें (आत्मा को) बहुत प्यार करता है। जो कोई भी शुद्ध चित्त से उससे कुछ मांगता है, उसे वह देता है। वह किसी को निराश नहीं करता। यदि तुम्हें कोई चीज नहीं मिलती तो समझो कि तुम्हारे माँगने में कहीं खोट है। तुम्हारे माँगने का ढंग गलत है। तुम्हारा चित्त शुद्ध नहीं है। तुम्हारे भीतर पूर्ण समर्पण का अभाव है। इसलिए सर्वप्रथम तुम अपने चित्त को सुधारो। उस परमात्मा को अपना परम पिता स्वीकार करो। उसे हृदय में उतारो। फिर देखो, वह तुम्हारे लिए क्या नहीं करता। लेकिन तुम्हारा माँगना भी तो स्वार्थी होता है। तुम माँगते भी हो तो अपने लिए। तुम पुत्र माँगते हो तो अपने लिए, तुम धन माँगते हो तो अपने लिए। तुम सुख भी माँगते हो तो अपने लिए, तुम स्वर्ग माँगते हो तो अपने लिए। तुम क्यों नहीं समझते कि तुम उस परमपिता परमात्मा की औलाद हो जो अपने लिए कभी भी कुछ नहीं माँगता। जो सदा औरों के लिए ही समर्पित रहता है, जो सदा देता है। जिसके हाथ दूसरों के लिए सदा खुले होते हैं। तुम अपने पिता के समान स्वभाव वाला बनो। तुम अपने पिता के रास्ते पर चलो। तुम्हें हर पग पर अपने पिता का सहारा मिलेगा। तुम धन्य हो जाओगे।

हे आत्मा ! उस परमात्मा को ज्ञात है कि तुम्हें क्या चाहिए। वह परम ज्ञानी है। उसे ज्ञान देने की जरूरत नहीं है। वह ज्ञान सिंधु है। वह ज्ञान का स्वरूप है। वह सब कुछ जानता है। वह तीनों कालों में ज्ञान पूर्ण है। वह ज्ञान का प्रकाश है। तुम्हें वह ज्ञान देने के लिए सदा लालाहित रहता है। वह अपने ज्ञान के प्रकाश से तुम्हारे राह को सदा प्रकाशित करता है। तुम अपने अभिमान को त्याग कर उसकी शरण में जाओ। तुम्हारे मन में कोई संदेह न हो। तुम संशय से रहित, निश्चय बुद्धि होकर उसकी शरण जाओ। वह तुम्हें ज्ञान से भर देगा। तुम पूर्ण हो जाओगे। जब तक ज्ञान नहीं है, तुम अपूर्ण हो। सब कुछ होते हुए भी

तुम्हारे भीतर रिक्तता है। तुम खाली हो। इसलिए तुम परमात्मा को जानो। वह सर्वज्ञाता है। वेद उसके ही हृदय के उद्गार हैं। वह ज्ञान का अविनाशी श्रोत है। वह श्रृष्टि के आदि से लेकर अंत तक ज्ञान का प्रवाह निरन्तर प्रवाहित करता है। उसके ज्ञान का भंडार कभी खाली नहीं होता। भंडार तो तुम्हारा खाली है। उसे ज्ञान से भरो और कृत-कृत्य हो जाओ। ज्ञान द्वारा ही नर नारायण बनता है तथा नारी नारायणी बनती है। मानव उसी के द्वारा महात्मा होता है, उसी के द्वारा देवात्मा होता है।

हे आत्मा! तुम भेद भाव से परे समता की स्थिति में आसीन हो जा। भेद-भाव से मन कलुषित होता है। राग और द्वेष बेचैन करते हैं। तुम्हारी असफलता का एक कारण भेद-भाव भी है। अपने और पराये का भेद, ऊँच-नीच का भेद, काले-गोरे का भेद जाति-पाति का भेद और न जाने कितने भेद तुम्हारे सामने पहाड़ की तरह आ कर खड़े हो जाते हैं। तुम भेद भाव के द्वन्द में जलते रहते हो। लेकिन यह संसार अभेद है। क्योंकि परमात्मा अभेद है। अभेद परमात्मा द्वारा इस संसार का श्रृजन हुआ है। वह दो नहीं; एक है। यह तो तुम्हारी दुर्बुद्धि का परिणाम है कि तुम हर व्यक्ति और घटना तथा परिस्थिति में भेद देखते हो। लेकिन वास्तव में कहीं कोई भेद नहीं है। सब का मूल एक है। उदाहरण के लिए, किसी सुनार द्वारा अनेक गहने बनाये गये हैं। कोई चन्द्रहार है तो कोई लवँग, कोई कर्णफल है तो कोई कंगन। ये सब गहने छोटे-बड़े होने से आकार में अलग-अलग दीखते हैं। परन्तु इनके मूल में कोई भेद नहीं है। इनमें भेद केवल रूप का है स्वरूप का नहीं; गुण का नहीं। तत्व से तो चन्द्रहार, लवँग, कर्णफूल और कंगन सभी एक हैं। अर्थात सभी स्वर्ण के बने हैं। सभी में सोना ही तत्व रूप में विद्यमान है। परन्तु अलग-अलग आकार के कारण उसे हम अलग अलग नाम देते हैं। यदि हम आकार और नाम को हटा दें अर्थात उसे गला दें तो सभी सोना ही है। फिर यह कहना असम्भव है कि यह चन्द्रहार वाला सोना है या लवँग वाला, कर्णफूल वाला सोना है या कंगन वाला। फिर एक सोना ही शेष रहता है। ऐसे ही सभी आत्मायें उसी एक परमात्मा की संतान हैं। सब में ईश्वरीय तत्व एक है। सिर्फ शारीरिक आकार से एवं नाम भिन्न-भिन्न होने से सभी भिन्न-भिन्न भाषित होते हैं। वास्तव में सबके मूल में तत्व तो उस परमात्मा का एक ही है।

हे आत्मा! तुम अनादि और अनन्त हो। तुम अविनाशी हो। जैसे तुम अविनाशी हो

वैसे ही तुम्हारे गुण भी अविनाशी हैं। इसलिए तुम्हारे द्वारा किये गये कर्मों का कभी नाश नहीं होता। वे सदा तुम्हारे साथ विद्यमान रहते हैं। मरणोपरान्त उसके ही कर्म भोग के रूप में तुम्हारा पुनर्जन्म होता है। कर्म सदा संचित रहते हैं। उसे नष्ट नहीं किया जा सकता। इसलिए हे आत्मा! तुम सद्बुद्धि पूर्वक कर्म करो। दुर्बुद्धि से किये गये कर्म तुम्हें नरक में ले जायेंगे। तुम्हें नाना प्रकार से दुख भोगना पड़ेगा। सद्बुद्धि से किये गये कर्म तुम्हें स्वर्ग दिलायेंगे। तुम सुख के भागी बनोगे। इसलिए तुम कर्मों की शुद्धता को पहचानों। परमात्मा तुमसे दूर रहते हुए भी दूर नहीं है। तुम्हारे स्मरण मात्र से वह तत्क्षण उपस्थित होता है। इसलिए परमात्मा को सदा हाजिर जान कर कर्म करो। तुम अपने कर्म को मानव जगत से छिपा सकते हो, परन्तु परमात्मा से नहीं छिपा सकते। वह तो सदा सब कुछ देखता है। इसलिए तुम उसे सदा सब जगह उपस्थित जानो। उसे सदा उपस्थित जानने से तुम्हारा मन कभी विकारी नहीं होगा। तुम कुकर्म नहीं करोगे। तुम सदा सतकर्म करोगे। तुमसे सदा सेवा और भलाई के कार्य ही होंगे। इसलिए हे आत्मा! तुम ईश्वर को सदा प्रत्यक्ष देखो। तुम कण-कण में उसे विद्यमान जानो। तुम यह मानो कि हर वस्तु परमात्मा स्वरूप है। तुम उससे सदा प्रेम करो। फिर तुम्हारे सभी कर्म कर्मयोग बन जायेंगे। तुम्हारा प्रेम आध्यात्म हो जायेगा। और तुम शान्ति और आनन्द को प्राप्त हो जाओगे। हे आत्मा! तुम ही जब सतकर्म करते हो तो महात्मा कहलाते हो और जब कुकर्म करते हो तो पापात्मा हो जाते हो। तुम्हारे आचरण में भिन्नता आते ही तुम नीचे गिर जाते हो। यदि आचरण शुद्ध हो तो तुम शुद्धात्मा हो और यदि आचरण बुरा है तो तुम दुरात्मा हो। परम आत्मा ही परमात्मा है। जो सर्वदा शुद्ध-बुद्ध है। जो प्रकाश पुंज है। जो कल्याणकारी है। जो सदा उपास्य है। जो परम पावन और निर्लेप है। जिसकी कृपा के बिना तुम अधूरे हो। इसलिए हे आत्मा! यदि तुम पूर्ण होना चाहते हो तो परमात्मा की शरण जाओ। भ्रम जाल में मत फंसो। तुम आत्मा हो। तुम्हारा अपना परमात्मा है। फिर तुम माया के साथ क्यों रहते हो? माया ही अविद्या है। और अविद्या ही माया है। इसलिये विद्या ग्रहण करो। विद्या ही तुम्हारा स्वभाव है। विद्या ही ज्ञान है। तुम ज्ञान को प्राप्त करो। ज्ञान होने से ही तुम परमात्मा को जान सकोगे। अविद्या ज्ञान के विपरीत है। वह भटकाने वाली है। भेद कराने वाली है। राग-द्वेष से मन को दूषित करने वाली है। यह नाम और रूप के भेद को दिखाने वाली तथा समता की सच्चाई को झुठलाने वाली है। विद्या जिसे देखती है अविद्या उसे देख

ही नहीं पाती। विद्या सत को देखती है परन्तु अविद्या असत को देखती है। विद्या से स्पष्ट दिखाई देता है कि नाम और रूप एक न एक दिन अवश्य नष्ट होंगे, परन्तु अविद्या को वे अविनाशी दीखते हैं। इसलिए हे आत्मा ! तू अविद्या का त्याग कर परमात्मा को याद करो। क्योंकि परमात्म दृष्टि से जब तुम संसार को देखोगे तो संसार अभेद दिखाई देगा। सभी के अन्दर एक ही सत तत्व विराजमान दीखेगा। हे आत्मा ! जब तुम्हें वह दृष्टि प्राप्त हो जायेगी तब तुम समता की स्थिति को प्राप्त हो जाओगे। यही तो समत्व योग है।

आत्मोद्गार

(एक चिन्तन)

|| भाग दो ||

।। भाग - दो ।।

हे आत्मा ! वह एक ही तत्व है जो सब रूपों में विद्यमान है। उसी को कोई सत - तत्व कहते हैं तो कोई परमात्म-तत्व कहते हैं। प्राणी मात्र में विराजमान इस तत्व में कोई भिन्नता नहीं है। यही एक ऐसा तत्व है जो सब जीवों का आधार है। यही आधार मूल है। बिना आधार के रूप कैसे बन सकता है। रूप और नाम के लिए कोई आधार तो होगा ही। तुम इसी आधार को पकड़ो। जिसने भी इस आधार को पकड़ा है उसका कल्याण हुआ है। इसी आधार के बारे में तो कबीरदाजी कहते हैं - 'लगा रहे तू कील से बाल न बाँका होय।' जो कोई भी इस संसार रूपी चक्की में फसेगा, वह पिस जायेगा। वह साबूत नहीं बचेगा। लेकिन जो आधार को पकड़ लेगा उसका बेड़ा पार हो जायेगा। जैसे चक्की के मूल से जो दाना सटा रहता है वह नहीं पिसाता। वह बच जाता है। इसलिए तुम आधार को मत छोड़ो। अज्ञानी मत बनो। आधार तुमसे दूर या अलग नहीं है। यदि वह आधार पूज्य है तो तुम पुजारी हो, वह उपास्य है तो तुम उपासक हो। पुजारी ही एक न एक दिन पूज्य होता है। उपासक ही समय आने पर उपास्य बनता है। साधक ही एक दिन सिद्ध होता है। इसलिये तुम अपने अस्तित्व (आधार) को पहचानों। तुम साधक बनो तभी सिद्ध बन सकोगे। भेद इतना ही है कि एक रास्ते में है और एक मंजिल तक पहुँच गया है। अर्थात एक मंजिल ही हो गया है। भरोसा रखो ! तुम भी एक न एक दिन पहुँचोगे। तुम्हारा भी उस परमात्मा से एकाकार होगा। तुम भी आधार बनोगे। तुम भी उस अभेद की स्थिति को प्राप्त करोगे। तुम उस स्थिति को पहुँच जाओगे जहाँ से संपूर्ण संसार परमात्मय दीखेगा। हे आत्मा ! तुम संसार की भिन्नता को मत देखो। तुम उसके अन्दर छिपे सत्यता को पहचानो। संसार में तो कोई सामान्य है तो कोई महान है, कोई भाग्यहीन है तो कोई भाग्यवान है, कोई सदाचारी है तो कोई दुराचारी है, कोई गोरा है तो कोई काला है, कोई रोगी है तो कोई निरोगी है, कोई छोटा है तो कोई बड़ा है, कोई बच्चा है तो कोई बूढा है, कोई स्त्री है तो कोई पुरूष है - उसमें अनगिनत भेद हैं। पर ये सारे भेद ऊपरी हैं, नाम और रूप के हैं। मूल तत्व (आधार) तो सबमें एक ही है, जो सब में समान रूप से विराजमान है।

हे आत्मा ! संसार में सब खेल विद्या और अविद्या का है, प्रकाश और अंधकार का है, ज्ञान और अज्ञान का है। जैसे अँधेरे में रस्सी साँप दिखाई देती है वैसे ही अविद्या में फसा मनुष्य सत्य को पहचान नहीं पाता। वह शरीर को सत्य और आत्मा को असत्य मानता है, संसार को सत्य और परमात्मा को असत्य मानता हैं। यदि बाहर प्रकाश हो तो

रस्सी में साँप का भ्रम न हो। ऐसे ही यदि अन्दर प्रकाश हो, विद्या हो, ज्ञान हो तो असत्य में सत्य का भ्रम न हो। मानव काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ में न फसे। उसे आत्मा परमात्मा एक ही नजर आये। अर्थात् यदि प्रकाश है तो ही सत्य और असत्य का भेद स्पष्ट होगा। इसलिए हे आत्मा! सब जंजाल अविद्या या अज्ञान या अंधकार का ही है। तुम इस सत्यंता को जानो, इस वास्तविकता को पहचानो। यह तुम्हारे चिन्तन का विषय है। अंधकार दूर कैसे हो? अज्ञान का नाश कैसे हो? अविद्या से छुटकारा कैसे मिले? तुम्हारे समक्ष ये तमाम जटिल प्रश्न हैं। लेकिन हे आत्मा! ये प्रश्न जितने जटिल है उतने ही आसान भी हैं। इनका हल बहुत सरल है। तुम्हारे लिए मैं कुछ उदाहरण देता हूँ - मनुष्य का स्वभाव है अहिंसा। परन्तु वह बाहर से हिंसा अपने ऊपर ओढ़ लेता है। वह हिंसक बन जाता है। बात-बात में वह क्रोधी हो जाता है। कामना और ममता में फसकर वह ऐसा कर्म कर जाता है जिसे देखकर जानवरों को भी शर्म आती होगी। वह नीच से नीच हरकत करने पर उतारू हो जाता है। ऐसी स्थिति में क्या किया जाय। कैसे उस व्यक्ति के हिंसक स्वभाव को दूर किया जाय। तो इसका सरल उपाय यह है कि चूँकि हिंसा मानव का मूल स्वभाव नहीं है। इसे वह मानव ऊपर से ओढ़ा है। ऊपर से ओढ़ा है, इसका प्रमाण यह है कि यदि वह ऊपर से नहीं ओढ़ता तो हर क्षण सदैव हिंसा में ही रहता। लेकिन हिंसक से हिंसक व्यक्ति में भी अहिंसा प्रगट होता रहता है। बीच-बीच में उसके अंदर दया, प्रेम, उदारता आदि गुण प्रकट होते रहते हैं। अर्थात भीतर अहिंसा स्वभाव रूप में विद्यमान रहता है। हिंसा ऊपर से ओढ़ी हुई वृत्ति है। अब अगर इस ओढ़ी हुई हिंसा को उतार कर फेक दें तो जो शेष बचेगा वह अहिंसा होगा। क्योंकि बाहर की वस्तु तो फेकी जा सकती है परन्तु अपने को नहीं फेका जा सकता। अर्थात मानव का मूल स्वभाव् अहिंसा बच जायेगा। और हिंसा से छुटकारा मिल जायेगा। ऐसे ही मनुष्य का स्वभाव है अक्रोध। परन्तु मानव क्रोध को ऊपर से ओढ़ लेता है। अगर क्रोध मनुष्य का स्वभाव होता तो वह सदा क्रोध में रहता। परन्तु क्रोध में व्यक्ति बहुत देर तक नहीं रह सकता। क्रोध आता है और शीघ्र ही चला जाता है। अर्थात् क्रोध बाहर से आता है। अन्दर तो अक्रोध ही है। अब यदि मानव बाहर से क्रोध को न ले तो जो अक्रोध की स्थिति भीतर है वही सदा बनी रहेगी। अर्थात मानव सदा अक्रोध में ही रहेगा। ऐसे ही माया अर्थात् अविद्या को तुम बाहर से ओढ़े हो। अगर तुम इस खोल को उतार कर फेक दो तो तुम्हें अपने अन्दर विद्या ही बैठी नजर आयेगी। ऐसे ही प्रकाश अथवा ज्ञान तुम्हारा स्वभाव है। परन्तु इस ज्ञान पर माया का पर्दा चढ़ा हुआ है। जिस कारण तुम्हारे चारो तरफ़ अँधेरा है। यदि तुम माया के इस पर्दे को

उतारकर फेक दो तो अन्दर तुम्हें प्रकाश ही प्रकाश दीखेगा, अन्दर ज्ञान ही ज्ञान दीखेगा। परन्तु हे आत्मा ! इस माया के पर्दे को हटायें कैसे, इसे दूर कैसे भगाये। इसके उपचार के लिए तुम्हें सतगुरु की शरण में जाना होगा। सतगुरु ही तुम्हें सच्चा रास्ता बतायेगा। वही तुम्हें वह प्रकाश देगा जिसमें सत्य और असत्य स्पष्ट दीखते हैं। परन्तु तुम इतना याद रखना कि सद्गुरु से बिना श्रद्धा के वह प्रकाशं तुम्हें नहीं मिल पायेगा। तुम्हें सतगुरु के प्रति आत्म विश्वास रखनां होगा। बिना श्रद्धा और विश्वास के तुम उस राह पर नहीं चल सकते। तुम उसकी कृपा नहीं पा सकते। चलना तुमको है। गुरु तो केवल रास्ता बतायेगा। तुम्हें प्रकाश पाने का तरीका सिखायेगा। परन्तु आगे तो तुम्हें ही बढ़ना है। उस लक्ष्य को तुम्हें ही प्राप्त करना है। इसलिए हे आत्मा ! तुम सतगुरु की शरण में जाओ। उससे प्रकाश पाने का तरीका सीखो। तभी तुम्हारा अज्ञान दूर होगा। तभी तुम ज्ञानी बन सकोगे। तभी तुम्हें परमात्मा का सानिध्य प्राप्त हो सकेगा। और तभी तुम्हारी अविद्या और अंधकार दूर हो सकेंगे।

हे आत्मा ! संसार में संपूर्ण भिन्नता केवल अज्ञान के कारण है। यदि अज्ञान दूर हो जाय तो वह परमात्मा तुम्हें संपूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त दिखाई देगा। चूँकि परमात्मा आनन्द स्वरूप है इसलिए यह संसार तुमको आनन्दमयी दिखाई देगा। परमात्मा ज्ञान स्वरूप है अतः संपूर्ण संसार तुमको ज्ञान स्वरूप दीखेगा। तुम्हारी अविद्या मिट जायेगी। अंधकार दूर हो जायेगा। चारो तरफ प्रकाश फैल जायेगा। उस प्रकाश में तुम्हें स्पष्ट दिखाई देगा कि तुम और परमात्मा एक हो। जीव-जीव में कोई भेद नहीं है, क्योंकि हर जीव में परमात्मा विराजमान है।

हे आत्मा ! अविद्या के अनेक रूप हैं। कभी वह काम के रूप में आकर कामांध बना देती है तो कभी क्रोध के रूप में आकर पागल बना देती है। कभी अंहकार के रूप में सामने आती है तो कभी मोह में जकड़ लेती है। कभी लोभी बना कर नर्क में पहुँचाती है तो कभी ममता में फसा कर गला दबा देती है। वह नाना प्रकार से तुम्हें तुम्हारे स्वभाव से दूर ले जाने की चेष्टा करती है। परन्तु हे आत्मा ! तुम ज्ञान स्वरूप हो, अविनाशी हो, शाश्वत हो। तुम्हें उसके भुलावे में नहीं आना है। वह तुम्हें विषय विकारों में घसीटेगी। परन्तु तुम्हें उससे असंग रहना है। वह कभी तुम्हें देहाभिमान में बाँधने की कोशिश करेगी तो कभी स्वर्ग का लोभ देगी। परन्तु तुम उसके भुलावे में मत आना। तुम ज्ञान रूप हो। तुम ज्ञान सागर के पुत्र हो। तुम्हें सत्य और असत्य का ज्ञान है। अतः तुम अपने विवेक शक्ति

को जाग्रत करो। तुम पाओगे कि आत्मा की विस्मृति ही अविद्या का मूल कारण है। तुम देहाभिमान में भूल जाते हो कि मैं आत्मा हूँ। तुम अपने को देह मान बैठे हो। परन्तु तुम देह नहीं हो; तुम आत्मा हो; वही आत्मा जो परमपिता परमात्मा का अंश है। जो सर्वशक्तिमान है। जो प्रेम का सागर है। जो आनन्द का सिंधु है। जो ज्ञानस्वरूप और शान्ति रूप है। जो अविद्या से दूर कराने वाला परम कल्याणी है। तुम्हें उसी परमात्मा के धाम जाना है। वहाँ आनन्द ही आनन्द है। उसी परमानन्द को प्राप्त करने के लिए योगी योग रमाते हैं। भक्त सदा उसके चरणों में समर्पित होते हैं। ज्ञानी ज्ञान योग में लीन होते हैं और ध्यानी समस्त संकल्प-विकल्प से रहित ध्यान मग्न रहते हैं। तुम इस सत्य को पहचानो। तुम अपने स्वरूप में स्थित होओ। व्यर्थ में मत भटको। तुम्हारा भटकना तुम्हें नर्क में ले जायेगा। अनगिनत आत्मायें भटक चुके हैं, परन्तु उनके हाथ कुछ नहीं लगा है। वे आज भी अँधेरे में पड़े हैं। नरक में भोग रहें है। यदि तुम समय रहते नहीं जागे तो तुम्हें नर्क का भोग भोगना पड़ेगा। समय चूक जाने पर पछताओगे। इसलिए तुम माया का बंधन तोड़ो। पर सेवा में लग जाओ। तुम अपने कर्म को कर्मयोग बनाओ। घर परिवार को ईश्वर का वरदान जानकर उनकी सेवा करो। इस प्रकार तुम अपने इस जन्म को सुधारो। तुम्हारे सारे प्रारब्ध और संचित कर्म फल मिट जायेंगे। तुम्हारा मानव जीवन धन्य हो जायेगा।

हे आत्मा ! तुम समत्व योग में ऐसा लीन हो जाओ कि दूसरे का सुख-दुख तुम्हारा अपना सुख दुख हो जाय। तुम्हें ऐसा महसूस हो कि वह सुख-दुख तुम्हारा अपना है। जैसे अपने शरीर के किसी अंग में पीड़ा होने पर तुम दुखी होते हो, तुम उसे ठीक करने की भरपूर चेष्टा करते हो, वैसे ही दूसरों के पीड़ा और दुख को देखकर तुम्हें दुख और पीड़ा का अनुभव हो और तुम वैसे ही उसे ठीक करने में लग जाओ, यही सच्ची समता है। जब तक अपनों के प्रति राग और गैरों के प्रति द्वेष होगा तब तक चाहे जितना भी प्रयत्न करो, समता नहीं आयेगी। परन्तु जब मन में दूसरों के दुख को देखकर पीड़ा होने लगे और उसे ठीक करने की बेचैनी होने लगे, हृदय के भीतर अकुलाहट पैदा हो जाय, उसके कल्याण के लिए मन व्याकुल हो जाय तो समझो कि चित्त में समता का प्रादुर्भाव हो रहा है। ममता रहित समता जब मन में आ जाय तो वह योग बन जाता है। सबके हित के प्रति सदा हृदय में प्रीति हो जाय तो समझो ईश्वर मिलन हो गया। तुम्हारे कर्म सदा ऐसे ही होने चाहिए। तुम्हें पानी की तरह शीतल और हवा की तरह निर्मल होना है। पानी कभी नहीं सोचता कि उसे पीने वाला बड़ा है या छोटा, नास्तिक है या आस्तिक, गोरा है या काला, हिन्दू है या मुसलमान। वह सबको समान शीतलता देता है , वह सबकी समान प्यास बुझाता है। ऐसे

ही हवा भी सबको समान भाव से प्राण वायु देता है। किंचित मात्र भी भेद नहीं करता। ऐसे ही सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी समान रूप से सबके साथ बर्ताव करते हैं। ऐसी समान शीतलता, निर्मलता, पवित्रता और उदारता रखने से चित्त भी वैसे ही शीतल, निर्मल, पावन और उदार हो जाता है। जब मानव मन के भीतर और व्यवहार में बाहर दोनों तरफ समता हो तो उसे समता की पराकाष्टा मानो। जो भी सद्गुण तुम्हारे पास है उसे प्राणी मात्र की सेवा में लगा दो। अन्दर बाहर कोई भेद न हो। व्यवहार में भेद होते हुए भी आत्मीयता में भेद न हो। जैसे हाथ और पैर के व्यवहार में भले ही अन्तर है पर कष्ट होने पर दोनों के प्रति समान आत्मीयता होती है, वैसे ही प्राणियों में खान-पान आदि गुण अलग होने पर भी आत्मिक तत्व एक है, ऐसा भाव तुम्हारे हृदय में निरन्तर बना रहे। शारीरिक गुणों में भेद होते हुए भी कभी मन में प्रेम की, दया की या आत्मीयता की कमी न हो। कभी तुम्हारे मन में विषमता या पक्षपात का जन्म न हो, इसे ही समता की स्थिति कहते हैं।

हे आत्मा! न जाने कब यह शरीर छूट जाय, किसको पता है। इसलिए तुम अपनी भावना और व्यवहार से सारे संसार को स्वर्ग बना दो। इसके लिए तुम अपने घर से ही शुरुआत करो। घर में कोई छोटा हो या बड़ा, सबके प्रति समान भाव और व्यवहार रखो। किसी को तुमसे कोई कष्ट न हो। तुम ऐसा एकाकार हो जाओ कि सबका कष्ट तुम्हें अपना लगने लगे। सबके सुख में सुखी और दुख में दुखी हो जाओ। पर इतना याद रखना कि यह भावना कहीं मोह न बन जाय। यह मोह ही तुम्हारे पतन का कारण है। अतः मोह का त्याग करना। संपूर्ण परिजनों को भगवान का उपहार समझकर समान भाव से उनकी सेवा करना। तुम अपने को मालिक नहीं सेवक समझना। तुम ऐसा मानो कि भगवान ने तुम्हें उस घर में सबकी सेवा के लिए ही भेजा है। तुम्हारी उत्पत्ति ही सेवा करने के लिए हुई है। तुम्हारा सारा पुरुषार्थ पर-सेवा में ही लगना चाहिए। मोह तब होता है जब ऐसा लगने लगे कि जो कुछ मेरा है वह मेरा ही सदा बना रहे। जो लोग मेरे हैं वे मेरे ही सदा बने रहें। हे आत्मा! तुम ऐसे मोह में मत पड़ना क्योंकि संसार में जो कुछ भी है, चाहे वह अपना हो या पराया; सभी एक न एक दिन नष्ट होने वाले हैं। अतः यदि तुमने उनसे मोह किया तो बिछुड़ने पर तुम्हें कष्ट होगा। लेकिन ईश्वर तुम्हें कष्ट देना नहीं चाहता। वह तो कहता है कि तुम्हारा मेरे सिवा और कोई नहीं है। जो कुछ तुम्हें मिला है सबको मेरा प्रसाद जानकर ग्रहण करो। सबसे प्रेम करो। परन्तु उससे मोह मत करो। उसे अपना मत मानों, नहीं तो उसके बिछुड़ने पर तुम्हें कष्ट होगा। बिछुड़ना निश्चित है, फिर तुम मोह में क्यों फसते हो ? अनजान क्यों बनते हो ? यही तो माया है जो तुम्हें बाँध कर रखती है। इसी माया को तो तुम्हें काटना है। यदि

तुम इस माया को नहीं कटोगे तो दलदल में फँस जाओगे। तुम्हें निकालने वाला कोई नहीं मिलेगा। स्वयं ईश्वर भी तुम्हारी मदद नहीं करेगा। क्योंकि कर्म की गति महान होती है। उसे तो ईश्वर भी नहीं बदल सकता। इसलिए हे आत्मा ! तुम अपने कर्मों को सुधारो। अपनी भावना को शुद्ध करो। सबके प्रति निर्लेप प्रेम करो। सबकी सेवा करो। तुम्हारी मुक्ति का यही एक रास्ता है।

हे आत्मा ! तुम धीरे-धीरे अपनी सेवा को विस्तार दो। तुम घर से गाँव की ओर बढ़ो। गाँव के प्रति अपने प्रेम को व्यापक बनाओ। शनै-शनै क्षेत्र, फिर राज्य, फिर देश, फिर सारी पृथ्वी तुम्हारे प्रेम के सागर में डुबकी लेने लगेगी। तुम्हारे प्रेम का राज्य चारो तरफ छा जायेगा। तुम बँध कर भी मुक्त होगे। जैसे श्रीकृष्ण गोपियों के प्रेम में बध कर भी मुक्त थे। सारी दुनियाँ तुम्हें प्रेम करेगी और तुम सारी दुनियाँ को ईश्वर जान कर प्रेम करोगे। तुम प्रेममय हो जाओगे। यही तो जीवन की सार्थकता है। वरना तुम यहाँ पच-पच कर मरने के लिए नहीं आये हो। तुम कुछ उद्देश्य लेकर इस संसार में जन्म लिए हो। इस संसार में आने का तुम्हारा सच्चा उद्देश्य यही है कि परमात्मा से तुम्हारी सच्ची प्रीति हो जाय। तुम्हारे लिए सारा संसार ईश्वरमय हो जाय। तुम्हारी दृष्टि इतनी महान हो जाय कि जिसमें सारी पृथ्वी समा जाय। तुम्हारी दृष्टि में ऐसा प्रेम झलके कि मानवता देख कर झूम उठे। वाणी से ऐसा शब्द निकले कि लोग बार-बार सुनने को तुम्हारी ओर दौड़ने लगे। तुम्हारी अमृतवाणी सुनकर लोग भाव-विभोर हो जाँय। तुम इतने पावन और निर्मल हो जाओ कि लोग तुम्हारे दर्शन के लिए झूम उठें, तुम्हारी कसमें खाने लगें, और तुम आत्मा से महात्मा हो जाओ।

हे आत्मा ! यह नश्वर शरीर त्यागने से पूर्व तुम अपना उद्धार कर लो। अभी समय है, वरना फिर पछताओगे। 'समय चूक फिर क्या पछताने।' समय चूक जाने पर फिर पछताने से कोई लाभ नहीं होता। इसलिए समय रहते जागो। तुम अपनी अवस्था को, अपनी धारणा को ठीक कर लो। तुम सुव्यवस्थित जीवन जीना सीखो। चिन्ता मत करो। चिन्ता तुम्हारी कमजोरी है। तुम्हारे भीतर निश्चय की कमी से चिन्ता तुम्हें सताती है। अपने निश्चय में गहराई लाओ। बिना निश्चयात्मक गहराई के जीवन टिकेगा नहीं; गिर जायेगा। जैसे खिल्ला जितना गहरा गड़ा होगा उतना ही अधिक बोझ सभालेगा। कम गहराई वाले खिल्ले (खूँटी) पर अधिक बोझ नहीं टाँग सकते। अधिक सामान टाँगने के लिए अधिक गहराई तक खिल्ला को गाड़ना होगा। उसी प्रकार जीवन को चिन्ता से मुक्त

करने के लिए निश्चय को अधिक गहराई तक गाड़ना होगा। वरना् जरा सी परेशानी आने पर तुम चिन्ता से हिल जाओगे। चिन्ता तुम्हें ग्रसित कर लेगी। हे आत्मा ! ज्ञान होने से क्या होगा, तमाम पोथी पढ़ने से क्या होगा, जब भीतर दृढ़ निश्चय ही नहीं होगा। ज्ञान तो है कि सुबह जल्दी उठना चाहिए, ज्ञान तो है कि बड़ों का आदर करना चाहिए, ज्ञान तो है कि सदा पर-सेवा करनी चाहिए, परन्तु निश्चय नहीं है। इसलिए तुम ज्ञान होते हुए भी सुबह नहीं उठते हो, बड़ों का आदर नहीं करते हो, पर सेवा नहीं करते हो। तुम ममता और कामना में फसे कीड़े की तरह जीवन गुजार रहे हो। तुम जानते हुए भी ममता और कामना से मुक्त नहीं होते। क्यों नहीं होते ? क्योंकि दृढ़ निश्चय नहीं है। इसलिए चिन्ता तुम्हें सताती है। अवस्था बिगड़ी हुई है। तुम्हें परमात्मा पर विश्वास नहीं करने देती। तुम्हें निश्चय नहीं करने देती कि तुम एक नाटक खेलने आये हो। वह भुलवा देती है कि तुम इस नाटक के एक पात्र हो, डोर किसी और के हाथ में है। वह जैसा नाच नचायेगा वैसा तुम्हें नाचना पड़ेगा। तुम्हें निश्चय नहीं होता कि परमपिता ही सब कुछ कराता है। तुम्हें निश्चय नहीं होता है कि तुम्हारा यह देह एक दिन मृत्यु को प्राप्त होगा। तुम्हें निश्चय नहीं होता कि तुम्हारी यह सारी सम्पत्ति यही धरी रह जायेगी और तुम्हें उसे छोड़ कर जाना पड़ेगा। तुम्हें सब कुछ पता है पर निश्चय नहीं है। तुम्हें ज्ञान है पर विश्वास नहीं है। तो तुम्हारे चिन्ता का कारण है निश्चय की कमी। इसलिए तुम चिन्ता मत करो। तुम उस परमात्मा के प्रति निश्चय बने रहो। तुम सदा याद रखो कि इस संसार रूपी मंच पर खेले जाने वाले इस विशाल नाटक में तुम एक अदना सा पात्र हो। तुम्हें अपने क़िरदार को बखूबी निभाना है। फिर किस बात की चिन्ता। निश्चय की खूँटी जहाँ तुम्हारे भीतर गहरी गड़ी कि तुम सारा बोझ उठा लोगे। तुम्हारा जीवन सुधर जायेगा। तुम्हारे जीने की अवस्था बदल जायेगी। चिन्ता मुक्त जीवन ही वास्तविक मानवीय जीवन है। तुम उस अवस्था को प्राप्त हो जाओगे।

हे आत्मा ! तुम दुनियाँ के आकर्षण से दूर रहो। आकर्षण ही तुम्हारे पतन का कारण है। किसी भी सुन्दर वस्तु, व्यक्ति पा परस्थिति से तुम आकर्षित हो जाते हो। माया अनेक प्रकार का रूप धारण कर आकर्षित करती है। कभी देह के रूप में तो कभी स्त्री के रूप में, कभी धन के रूप में तो कभी पुत्र के रूप में, कभी सुन्दर बाग के रूप में तो कभी सुन्दर पहाड़ के रूप में। यह आकर्षण तुम्हें परमात्मा से दूर खीचती है। तुम आकर्षण की ओर खीचते ही चले जाते हो और परमात्मा तुमसे दूर होता जाता है। ये आकर्षण तुम्हारी अच्छी अवस्था को बुरा बना देते हैं। ये बहुत दुख देते हैं। मिले तो फिर बिछुड़ न जाँय इसका दुख; और न मिले तो कब मिले, कैसे मिले - इसका दुख। कब जा कर हिमालय

की सुन्दरता देख लें, कब समुद्र की लहरों का आनन्द उठा ले- पगलाते रहते हो तुम दिन राह। सीता माता के दुख का कारण भी हो स्वर्ण मृग के प्रति आकर्षण ही था। कैकेई के दुख का कारण भी तो पुत्र के प्रति आकर्षण ही था। संपूर्ण महाभारत पुत्र मोह में डूबा हुआ है। अंधे धृतराष्ट्र को दुष्ट दुर्योधन के दुर्गुणों में भी अच्छाई दीखती है। न उसे द्रोपदी का चीर हरण दीखता है और न ही लाक्षागृह का कुकृत्य दीखता है। वह पुत्र मोह के आकर्षण से इतना आकर्षित है कि बुद्धि से भी अंधा हो गया है। उसका विवेक लुप्त हो गया है। श्री कृष्ण के उपदेश भी उसे शूल की भाँति चुभ रहे हैं। मोह रूपी आकर्षण उसके ज्ञान को ढक लिया है। हे आत्मा ! तुम्हारी भी स्थिति कुछ ऐसी ही है। आकर्षण तुम्हारे विवेक को ढक लिया है। वह तुम्हें स्वार्थी बना दिया है। तुम परमात्मा का चिन्तन न कर संसार की चिन्ता में डूब गये हो। तुम्हारी अवस्था जो आनन्दमयी है वह दुखमयी बन गई है। तुम अहंकारी हो गये हो। देह का आकर्षण तुम्हें अहंकारी बना दिया है। तुम उससे छूट नहीं पाते। तुम बँध जाते हो और बँधते ही चले जाते हो। तुम्हारा स्वभाव मुक्ति का है, स्वतंत्रता का है। लेकिन आकर्षण के मोह में तुम परतंत्र हो जाते हो। हे आत्मा ! तुम ऐसी परतंत्रता में मत फसो वरना जीवन का उद्धार नहीं होगा। जीवन का आनन्द तो मुक्ति में है; बन्धन में नहीं। तुम अपने को इन बंधनों से मुक्त करो। सांसारिक आकर्षणों से अपने को ऊपर उठाओ। सांसारिक आकर्षण दलदल के समान हैं। उसमें फसने के बाद भला कौन निकल सका है।

हे आत्मा ! तुम निश-दिन दलदल में फसते जा रहे हो। तुम अपने मुक्ति का चिन्तन छोड़कर व्यर्थ के चिन्तन में डूब रहे हो। इससे जहाँ एक ओर तुम्हारा मन दूषित हो रहा है वही दूसरी ओर तुम स्व से दूर होते जा रहे हो। तुम्हारी खुशी छिनती जा रही है। तुम अन्दर से खोखले होते जा रहे हो। हे आत्मा ! यदि तुम अन्दर से भरे होते तो ऐसी व्यर्थ की बातें क्यों करते ? दूसरों के विषय में व्यर्थ चिन्तन क्यों करते ? तुम अन्दर से खाली हो। अगर अपना पेट भरा रहे तो दूसरों की थाली कोई क्यों देखेगा ? इसलिए अन्दर के अपने खालीपन को तुम भरो। बाहर का खालीपन तो सांसारिक वस्तुओं से भर जायेगा परन्तु अन्दर का खालीपन तो आत्म चिन्तन से ही भरेगा। इसलिए पर चिन्तन छोड़ कर तुम आत्म चिन्तन में लग जाओ। पर चिन्तन में जहाँ समय बर्बाद होता है वहीं आयु भी क्षीण होती है। पर चिन्तन एक खौफनाक रोग है जो मानव जीवन के लिए बहुत घातक है। यदि यह रोग एक बार मानव को लग जाय तो फिर कभी नहीं छूटता। लाख उपाय करो पर वह व्यक्ति पर-निन्दा से बाज नहीं आता। पर-निन्दा करना एक ऐसी प्राण घातक बीमारी है जिसमें निन्दा करने वाला और सुनने वाला दोनों मरते हैं। क्योंकि इस कुकृत्य में दोनो दोषी

होते हैं। पर-निन्दा सुनने वाला न हो तो निन्दा करने वाला किससे करेगा। अपने स्वयं से वह निन्दा कर नहीं सकता। क्योंकि यदि वह अपने स्व से कहेगा तो आत्म चिन्तन हो जायेगा। पर-निन्दक सदा दूसरों से ही पर-निन्दा करता है। इसलिए सुनने वाला भी उतना ही दोषी है जितना कहने वाला। दोनो के सहयोग से ही पर-निन्दा का कुकृत्य पूर्ण होता है। इसलिए हे आत्मा ! तुम पर-निन्दा या व्यर्थ चिन्तन से बचो। तुम सदा परमात्मा का ध्यान करो। तुम अन्तर्मुखी बनो, आत्म चिन्तन करो, सतसंग करो। तुम सद्गुरु के सानिध्य में जाओ। योग और ध्यान का अभ्यास करो। उनके प्रवचनों को दत्त-चित्त होकर सुनो। बिना एकाग्र चित्त हुए प्रवचन का मन पर कोई असर नहीं होता। हजारों, लाखों लोग रोज सतसंग सुनते हैं पर उनकी अवस्था ज्यों कि त्यों बनी रहती है। उनके जीवन में कोई बदलाव नहीं आता। वे प्रवचन को केवल एक कान से सुनते हैं और दूसरे कान से निकाल देते हैं। वे व्यवहार में उसका कोई उपयोग नहीं करते। ऐसे लोग खुद प्रवचन नहीं सुनते बल्कि मात्र उनके कान प्रवंचन सुनते हैं। इसलिए हे आत्मा ! तुम पूरे मनोयोग से प्रवचन सुनो, चिन्तन करो। इस प्रकार तुम्हारा चिन्तन आत्म चिन्तन हो जायेगा। तुम परमात्म चिन्तन में डूब जाओगे। वहीं होगा संतोष और शान्ति, वहीं होगे तुम और परमात्मा, वहीं होगा सच-चित और आनन्द।

हे आत्मा ! तुम ईश्वर के प्यारे बनो। तुम सबके मन के दुलारे बनो। तुम माला का दाना बनो। माला का दाना बनने के लिए तुम्हें अपने सब कुछ का त्याग करना होगा। मन, वचन और कर्म से तुम्हें सन्यासी बनना होगा। बिना त्याग के प्रेम भरोगे कहाँ। तुम्हारे अन्दर तो अनन्त युगों से विकारों का कचरा भरा हुआ है। जो कि रोज दिन दूना और रात चौगुना बढ़ रहा है। फिर ईश्वरीय हीरा कहाँ रखोगे। इसके लिए अन्दर तो खाली करना ही होगा ! कुछ रखने के लिए जगह तो करनी होगी। तो पहले तुम अपने अन्तर को खाली करो। अन्दर काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और न जाने कौन-कौन से विकार भरे हुए हैं। राग और द्वेष के न जाने कितने दलदल हैं। पहले उसे साफ करो फिर त्याग, तपस्या, योग और ध्यान द्वारा उसे तपाओ। और देखो कि वह साफ हो गया है या नहीं, स्वर्ण की तरह चमक उठा है या नहीं। फिर देखो कि ईश्वरीय प्रेम अन्दर में कैसे भरता है। प्रेम का धार लग जायेगा। चारो तरफ प्रेम की नदी छलछलाने लगेगी। तुम अलौकिक आनन्द से भर जाओगे। इसलिए हे आत्मा ! तुम दीया की तरह त्याग करो। तुम जलो और दे दो अपना प्रकाश संसार को। तुम खुद को जला कर औरो को प्रकाश दो। तुम यह याद रखो कि जिसने भी त्याग किया है वही दीया कहलाया है। उसी के समर्पण से प्रकाश हुआ है। कुछ

दबाकर रख लेने से तो तुम दीया नहीं बन सकते/दबाकर रखने से तो तुम कपटी कहलाओगे। क्योंकि सब कुछ तो उस ईश्वर का है। वही तुमसे माँग रहा है कि तुम सब कुछ मुझे दे दो। कर्म करते हुए भी फल का त्यागी बनो। धन, बल जो भी कुछ तुम्हारे पास है उसका त्याग कर दो। भूल जाओ कि ये सब मेरे हैं। तुम्हारे पास जो कुछ भी है वह सब परमात्मा का धरोधर है। उससे ममत्व मंत रखो। क्योंकि ममत्व ही बंधन है।

हे आत्मा ! तुम बहते हुए पानी की तरह निर्मल, शीतल और आत्मरामी बनो। जिस कारण तुम पर कोई विकार ठहर न सके। अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों की कैसी भी मार पड़े पर लकीर न बन पाये। यदि तुम अपने चित्त को लोहे की तरह कठोर करोगे तो विकारी लकीरें कभी मिट नहीं पायेंगी। चित्त सदा कोमल रखो, कमल के पत्ते की तरह। जिस पर कितना भी पानी पड़े पर सब बह कर नीचे गिर जाय, टिके नहीं। कमल दल सदा स्वच्छ ही रहता है। तुम्हारा चित्त यदि पावन नहीं होगा तो परस्थितियों का एक ही झकोरा उसे गन्दा कर देगा, उसे नीचे गिरा देगा। तुम खड़े न रह पाओगे। इसलिए कर्मयोगी बन कर अड़िग रहो। तुम पावन होकर भी इन्द्रियों के बसीभूत होकर भटक जाते हो। इन्द्रियाँ तुम्हारे अधीन होते हुए भी तुम पर राज करती हैं। तुम उनके दास हो जाते हो। यही तो तुम्हारे दुख का कारण है। तुम शरीर, मन और इन्द्रियों से एकाकार कर लेते हो। तुम सोचते हो कि ये ही मेरे हैं और मैं इनका हूँ। परिणाम स्वरूप तुम अपने को भूल जाते हो। तुम्हें यह ज्ञान ही नहीं रहता कि यह शरीर तुम्हें इस संसार में नाटक करने के लिए मिला है। इसका मूल्य किसी नाटक कम्पनी के पहनावे से ज्यादा नहीं है। नाटक पूरा हुआ कि पहनावा उतार कर फेके। अर्थात् नाटक खत्म होते ही तुम्हारा मालिक इस शरीर रूपी पोषाक को तुमसे छीन लेगा। क्योंकि समस्त साजो श्रृंगार केवल नाटक करने के लिए ही मिले हैं। नाटक समाप्ति के बाद इस साजो श्रृंगार का कोई मूल्य नहीं है। जहाँ तुम्हारा पाठ पूरा हुआ कि शरीर रूपी वस्त्राभूषण तुमसे ले लिया जायेगा। अर्थात् यह शरीर रूपी श्रृंगार तुमसे अलग है तभी तो तुमसे ले लिया जाता है। जैसे समस्त साजो-श्रृंगार ले लिये जाने के बाद भी वह पात्र रहता है; वैसे ही यह शरीर ले लिए जाने के बाद भी तुम रहते हो। तुम्हारा नाश नहीं होता। शरीर का नाश होता है। क्योंकि शरीर नश्वर है। वह एक न एक दिन नष्ट हो जाने वाला है। परन्तु शरीर के नष्ट हो जाने के बाद भी तुम रहोगे। क्योंकि तुम शाश्वत हो। यह तो तुम्हारी भूल है कि तुम शाश्वत होते हुए भी नश्वर संसार से अपना सम्बन्ध बना रखे हो। नहीं तो जड़ और चेतन का कैसा सम्बन्ध ! तुम्हारा सम्बन्ध तो एक मात्र भगवान से ही है। क्योंकि वही तुम्हारा परम

आत्मीय है। तुम माया में फसकर अपने को सिंह होते हुए भी भेड़िया मान लिए हो। वास्तव में तुम सिंह हो। जैसे सिंह का बच्चा भेड़ों के साथ रहते-रहते अपने को भेड़ ही मानने लगता है। परन्तु जब कोई सिंह उसे याद दिलाता है कि तुम भेड़ नहीं, सिंह हो तो वह अपनी वास्तविकता को पहचान लेता है और वह अपने को सिंह ही अनुभव करने लगता है। वैसे ही तुम मन, शरीर और इन्द्रियाँ रूपी भेड़ों के साथ रहते-रहते अपने को शरीर ही मान लिये हो। यदि कोई सदगुरु रूपी सिंह तुम्हारे जीवन में आ जाय और वह तुम्हें बताये कि तुम भेड़ नही, सिंह हो, अर्थात् तुम शरीर नहीं आत्मा हो तो तुम्हें अपनी सच्ची पहचान होगी। तुम वास्तविकता को समझ सकोगे कि मै शरीर नहीं आत्मा हूँ। इसलिए हे आत्मा ! तुम्हें एक सद्गुरु की आवश्यकता है। उसके द्वारा ही तुम्हारा भ्रम दूर होगा। तभी तुम जान सकोगे कि मै शरीर नहीं आत्मा हूँ। मैं मन, बुद्धि और इन्द्रियों से अलग परमात्मा का अंश हूँ। इस प्रकृति जगत से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।

हे आत्मा ! तुम्हारी अहंता और ममता की दिशा बदल गई है। तुम्हारी अहंता यह होनी चाहिए कि मैं भगवान का ही हूँ और ममता सदा भगवान के प्रति होनी चाहिए। अर्थात् भगवान ही एक मात्र मेरे हैं और दूसरा कोई नहीं है। जैसे मीरा कहती है - 'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।' परन्तु तुम दुर्बुद्धि के कारण अपने को शरीर मानते हो और ममता संसार से रखते हो। तुम भूल जाते हो कि यह जो संसार है या जो संसार के साथ सम्बन्ध है, वह सदा रहने वाला नहीं है। यहाँ तो तुम्हें तुम्हारे द्वारा पूर्व में किये गये कर्मो के फल स्वरूप जो कर्त्तव्य-कर्म मिला है, उसका ही पालन करना है। परन्तु तुम इसे ही सत्य मान बैठे हो। तुम यह क्यों नहीं मानते कि फल समाप्त हो जाने के बाद ये कर्म और संसार दोनों तुमसे छूट जायेंगे। तुम्हें इस शरीर का भी एक दिन त्याग करना होगा। तुम क्यों इस शरीर, संसार और कर्म के मोह में पड़े हो। ये तो कभी नहीं कहते कि तुम मेरे हो। तुम ही लालची की तरह इनके पीछे-पीछे दौड़ते रहते थे। तुम मुर्ख भी हो; क्योंकि भगवान सदा कहते हैं कि तुम मेरे हो परन्तु तुम इस सत्य को एक मुर्ख की तरह ठुकरा देते हो। इसलिए हे आत्मा ! तुम सत्य और झूठ के अन्तर को पहचानों और अपने को शरीर नहीं आत्मा जानो।

हे आत्मा ! जिस शरीर पर तुम्हें इतना अभिमान है, जिसे तुम अपना कहते हो, क्या तुम्हारे साथ सदा रहेगा। क्या वह तुम्हारे साथ जायेगा ? यदि नहीं तो फिर क्यों उसे अपना कहते हो ? कितनी बड़ी भूल है तुम्हारी। जो तुम्हारा नहीं है उसे तुम अपना

कहते हो और जो तुम्हारा अपना है उसे भूल बैठे हो। यही तो तुम्हारा अज्ञान है, जिसे तुम्हें दूर करना है। तुम मंदिर में जाते हो। वहाँ फल, फूल के साथ अपना मन भी अर्पित करते हो। क्यों करते हो ? क्या ये फल-फूल, मन- बुद्धि अथवा इन्द्रियाँ तुम्हारी हैं। तुम दूसरे की चीज कैसे अर्पित करते हो ? तुम अपने को क्यों नहीं अर्पित करते ? तुम अपने को तो अपने पास एक कंजूस की तरह रख लेते हो और उसी के द्वारा भगवान से मागते हो। हे भगवान ! मुझे पुत्र दे दो, मुझे धन दे दो- आदि आदि। तुम फल, फूल, मन, बुद्धि, इन्द्रियां जो तुम्हारी अपनी नहीं हैं उस पर अर्पित करते रहते हो। जो चीज तुम्हारी नही हैं उसे अर्पित करने का तुम्हारा क्या अधिकार है, उसे समर्पित करने से क्या फायदा है। तुम्हें भगवान को प्राप्त करने के लिए अपने खुद को अर्पित करना होगा। लेकिन तुम भगवान को नहीं अपनी कामना की पूर्ति चाहते हो। इसलिए तुम्हारे भीतर पूर्ण आस्था और विश्वास का अभाव रहता है। हे आत्मा ! तुम भगवान से प्रीति करो, अपनी कामना से नहीं। तुम पूर्ण आस्था और विश्वास से अपने आप को परमात्मा पर अर्पित करो। फिर मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ तो अपने आप अर्पित हो जायेंगे। मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ तो तुम्हारी चेरी हैं। वे तो वही जायेंगे जहाँ तुम जाओगे। आत्म समर्पण ही पूर्ण समर्पण है। तुम कंजूस मत बनो। बिना आत्म समर्पण के मन और बुद्धि भगवान में नहीं लग सकते। इसलिए पहले तुम खुद को समर्पित करो। तुम मन और इन्द्रियों को अर्पित कर समझते हो कि तुम महान बन गये हो। परन्तु मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ तो कभी भी धोखा दे सकते हैं। उस पर विश्वास मत करो। अपने पर विश्वास करो। आत्म समर्पण पर विश्वास करो। तुम मन आदि के छलावे में मत रहो। यदि मन परमात्मा में लग सकता है तो बिछुड़ भी सकता है। क्योंकि मन चन्चल होता है। लेकिन यदि तुम खुद अपने को ही परमात्मा को समर्पित कर दो तो फिर अलग कौन होगा। आत्मा, तो चंचल है नहीं, वह तो शाश्वत है, नित्य है। उसका तो परमात्मा ही अपना है। वह अपने को क्यों छोड़ेगा। कोई अपने परम पिता को छोड़ता है ? इसलिए यदि तुम्हें समर्पित करना है तो अपने आप कों समर्पित करो। फल, फूल, मन, बुद्धि या इन्द्रियाँ समर्पित करने से कुछ नहीं होगा।

हे आत्मा ! तुम सदा परमात्मा के हो। परमात्मा तुम्हें कभी छोड़ नहीं सकता। तुम भी परमात्मा को नहीं छोड़ सकते। क्योंकि तत्व रूप से तुम वही हो जो परमात्मा है। परन्तु अज्ञानता के कारण तुम उसे भूल गये हो। मनुष्य बुद्धिमान होते हुए भी अज्ञानी है, वरना इतने उदार, करूणालय, वरुणालय परमात्मा को कैसे भूल जाता। कैसे उसे सत्य का झूठ और झूठ का सत्य नजर आता। कैसे उसके द्वारा तमाम दिये गये इशारों को नहीं समझ

पाता। वह तुम्हें अनेक प्रकार से कष्ट देता है तो क्या उसे दुख नहीं होता। कौन ऐसा बाप है जो अपने पुत्र को दुखी देखकर खुद दुखी नहीं होता। कौन बाप अपने चहेते पुत्र को दुख देना चाहता है। लौकिक पिता भी अपने पुत्र को दुख नहीं देता। फिर पारलौकिक पिता की उदारता और दयालुता का तो कहना ही क्या! वह दया का सागर, प्रेम का सिंधु और करुणा का समुद्र है। वह कैसे अपने पुत्र को कष्ट दे सकता है। ये सारे सांसारिक दुख तो तुम्हारे अपने भूल के परिणाम हैं। वह तो तुम्हें दुख दे कर जगाना चाहता है। वह चाहता है कि तुम जागो। अज्ञानता में कुकर्मी मत बनो। सतकर्म करो। तुम मनुष्य हो कर भूल मत करो। तुम्हें दुख देकर परमात्मा को भी दुख होता है। परन्तु वह तुम्हें सत्य का ज्ञान कराने के लिए कभी-कभी कष्ट भी देता है। जैसे एक लौकिक पिता अपने बच्चे को ठीक रास्ते पर लाने के लिए कभी मारता है, कभी भोजन देना बन्द कर देता है, कभी रस्सी में बाँध देता है। पर उसके हृदय में पुत्र को दुख देने का भाव नहीं होता। उसके हृदय में तो सदा उसे सुधारने का भाव होता है। वैसे ही परमात्मा भी तुम्हें सुधारने के लिए कष्ट देता है। वह तुम्हें कष्ट देकर जगाता है कि मानव जीवन बार-बार नहीं मिलता। इसका सदुपयोग कर तुम मुक्त हो जाओ।

हे आत्मा! तुम्हारी भूल यह है कि व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति अथवा जो भी नश्वर है उसे प्राप्त करने में तुम पूरा जीवन लगा देते हो। जिसके मिलने पर इच्छाओं का अन्त नहीं होता, जिसका मिलना भी निश्चित नहीं है, जिसके मिलने पर सुख होगा ही; ऐसा पक्का नहीं है, जो मिलकर फिर नही बिछुड़ेगा, ऐसा असम्भव है - ऐसे नश्वर व्यक्तियों, वस्तुओं और परिस्थितियों की ओर तुम पागलों की तरह भागते हो। और अपने परम पिता परमेश्वर को भूल जाते हो। तुम अपना सारा पुरुषार्थ नश्वरता की प्राप्ति में लगा देते हो और शाश्वत को भूल जाते हो। वास्तव में तो उस शाश्वत को प्राप्त करना ही तुम्हारा परम पुरुषार्थ है। तुम कितने ही नश्वर चीजों का अम्बार इकट्ठा कर लो पर वे तुम्हें सुख नहीं दे सकते। एक न एक दिन वे तुम्हें छोड़ कर चले जायेंगे या उसे छोड़ कर तुम चले जाओगे। तुम जितना नाशवान पदार्थों की चाह में भटकोगे उतना ही तुम दुख पाओगे। क्योंकि जितना तुम संसार के पास होते जाओगे उतना परमात्मा से दूर होते जाओगे। जितना परमात्मा से तुम दूर होते जाओगे उतना ही दुख में फसते जाओगे। फिर तुम दुख से बच नहीं सकते। इसलिए हे आत्मा! तुम परमात्मा को पुकारो। उसकी कृपा ही तुम्हारे दुखों को दूर कर सकती है, तुम्हें सुख दे सकती है; क्योंकि तुम उसके अंश हो।

हे आत्मा ! सच्चा सुख तो परमात्मा की प्राप्ति में ही है। सांसारिक चीजें दुख का कारण होती हैं। सुख का कारण तो परमात्मा ही है। परमात्मा को प्राप्त कर ही तुम महान बन सकते हो। हे आत्मा ! जो जिसका है, उसकी ओर ही झुकता है। घुटना सदा पेट की ओर ही झुकता है। मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ प्रकृति के हैं। इसलिए प्रकृति की ओर झुकते हैं। तुम परमात्मा के हो। इसलिए तुम परमात्मा की ओर झुको। तुम्हारा परमात्मा की ओर झुकना ही स्वाभाविक है। अगर तुम स्वभाव और मूल के प्रतिकूल चलोगे तो दुख होगा, चलने में बाधा होगी और तुम्हें गैर से मिलने में आत्मिक प्रेम नहीं मिलेगा। सदा दूरी बनी रहेगी। उसके लिए तुम सदा पराये रहोगे। क्योंकि प्रकृति मन, बुद्धि और इन्द्रियों का उत्पत्ति स्थान है। लेकिन तुम परमात्मा के अंश हो। परमात्मा तुम्हारा परमपिता है। अत: पिता का घर ही तुम्हारा अपना सच्चा घर है। इसलिए हे आत्मा ! तुम अपने घर जाओ। वहीं तुम्हें सच्चा प्यार मिलेगा, वहीं सच्ची आत्मीयता मिलेगी। गैर के घर में तो दुदकार ही मिलेगा, परायेपन का ही अनुभव होगा। इसलिए जैसे मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ प्रकृति में स्थित हैं, वैसे ही तुम भी सदा परमात्मा में स्थित रहो।

हे आत्मा ! तुम प्रकृति के अनुकूल तन, मन को तो ढाल लेते हो पर परमात्मा के अनुकूल अपने को क्यों नहीं ढालते ? तुम्हें परमात्मा के अनुकूल चलने में क्या कठिनाई है। परमात्मा तुम्हारा पिता है। जब से तुम्हारा श्रृजन हुआ है तब से आज तक तुम परमात्मा की छत्र-छाया में जी रहे हो। हर क्षण का तुम्हारा उसका साथ है। हर स्थिति में वह तुम्हारी मदद करता है। तुम्हारे गिरने पर वह तुम्हें उठाता है। तुम्हें भरा-पूरा परिवार देता है। तुम्हारी भूख प्यास मिटाने के लिए भोजन पानी देता है। तुम्हें जीवित रखने के लिए हवा देता है। शक्ति स्वरूप वह खुद उष्मा बनकर तुम्हारे भीतर बैठा हुआ है। फिर उसके साथ चलने में तुम्हें क्या कठिनाई है। तुम भूल गये हो कि उसके अनुरूप चलने में ही तुम्हारा कल्याण है। जैसे तन, मन को प्रकृति के साथ चलने में आनन्द आता है वैसे ही तुम्हें परमात्मा के साथ चलने में आनन्द आयेगा। तुम परमात्मा के अनुकूल चलो। तुम परमात्मा पर अपने को अर्पित कर दो। यही सच्चा मार्ग है। जिस पर चलकर मानव मुक्ति को पा सकता है। इसके विपरीत चलने वाला मानव भव सागर में डूब जाता है। वह अपना लोक और परलोक दोनों बिगाड़ता है। ऐसा ही आदमी राग और द्वेष से भरा होता है। ऐसा आदमी एक अपने को छोड़ और सब कुछ पाना चाहंता है। उसे ज्ञान नहीं होता कि एक स्व ही अपना सब कुछ है। अपने के अलावा बाकी सभी व्यर्थ हैं, नश्वर हैं, एक दिन बिछुड़ जाने वाले हैं। इनके चक्कर में पड़ कर मानव अपना जीवन व्यर्थ गवा देता है।

हे आत्मा ! तुम संसार का ढेर सारा कचरा इकट्ठा कर क्यों कष्ट सहते हो ? क्यों नहीं तुम अपने को परमात्मा पर छोड़कर निश्चित हो जाते ? क्यों कामनाओं के पीछे पगलाये रहते हो ? कामनायें क्या कभी पूरी होती है ? कामनायें आज तक किसकी पूरी हुई हैं, कब पूरी हुई है; क्या तुम जानते हो। जब से संसार बना है तब से आज तक कामना किसी की पूरी नहीं हुई है। कामनायें अनन्त हैं। वे आती-जाती रहती हैं। उनका आना-जाना कभी खत्म नहीं होता। इसलिए उन्हें परमात्मा को अर्पित कर दो। उसको पूरा करने की कोशिश में तुम अपना जीवन मत गवाओ। उसका त्याग करो। तुम कामना के समक्ष परमात्मा को तुच्छ मानते हो। तुम अपनी कामना को पूर्ण करने के लिए भगवान को अपने अधीन करना चाहते हो। तुम कितने बड़े मुर्ख हो। जिसके आधीन सारा संसार है उसे तुम अपने आधीन करना चाहते हो। तुम जागो और अपने को परमात्मा के आधीन करो। फिर कामनाओं को पूर्ण करने के लिए चिन्ता नहीं करनी होगी। फिर कामनायें या तो स्वयं पूर्ण होगी या तो कामनाओं का अन्त हो जायेगा। तुम छोड़ दो अपने को परमात्मा के ऊपर। वह तुम्हें चाहे जिस हाल में रखे उसे सहर्ष स्वीकार करो। वैसे भी तुम्हारी मरजी कहाँ चलती है। तुम सदा सुखी रहना चाहते हो, पर तुम्हारे ऊपर दुख का पहाड़ टूट पड़ता है। तुम गाना चाहते हो, पर रोना पड़ता है। तुम पूरब जाना चाहते हो, पर पश्चिम जाना पड़ता है। तुम मजबूर हो। तुम्हारे बस में कुछ नहीं है। तुम बेकार की हरकत करते हो। इसलिए तुम अपने को उस परमात्मा के ऊपर छोड़ दो। उसकी मरजी जो चाहे सो करे। तुम केवल कर्म करो। फल मिले या न मिले। फल की चिन्ता भगवान को करने दो। फिर देखो, तुम्हारे जीवन में सुख ही सुख है, आनन्द ही आनन्द है। क्योंकि पिता तो पुत्र को सदा प्रसन्न ही देखना चहता है। पिता अपने पुत्र की इच्छा की पूर्ति के लिए अपना सब कुछ अर्पण कर देता है। फिर परम पिता तो सर्वशक्तिमान है। उसकी सामर्थ के बाहर कुछ भी नहीं है। फिर भला बताओ तुम्हें किस चीज की कमी होगी। बस तुम एक बार अपने आप को उसकी गोद में समर्पित कर दो।

हे आत्मा ! तुम्हारा अभिमान मिथ्या है। इतने बड़े संसार में तुम्हारी क्या औकात है ? तुम्हारे पास है क्या? इतनी बड़ी दुनियाँ की तुलना में तुम एक बूँद के बराबर भी नहीं हो। फिर भी तुम इतना अभिमान किये बैठो हो। तुम्हारे पास कितना भी कुछ हो पर वह संसार के दसमलव से भी अनन्त गुना कम है। तुम्हारी हस्ती एक चीटी के बराबर है। फिर क्यों इसके बंधन में रहते हो। क्यों एक सीमित घेरे में बध जाते हो ? क्यों अपना-अपना कह कर स्व को दुख देते हो ? क्यों नहीं संसार को अपना बना लेते। तुम छोटे से घर को,

छोटे से कुटुम्ब को, थोड़े से धन को अपना कहते हो। क्यों नही संसार भर के घर को, संसार भर के परिवार को, संसार भर के प्राणी को अपना बना लेते। प्रेम से बड़ा संसार में कुछ नहीं है। तुम क्यों नहीं प्रेम की गंगा बहाकर संपूर्ण विश्व को उसमें समाहित कर लेते। हे आत्मा ! तुम संतोष की गहराई इतनी गहरी करो कि उसमें छोटे-बड़े,अपने-पराये सभी समा जाँय। मुर्ख बन कर क्यों जीते हो ? जीना ही है तो बुद्धिमान बन कर, ज्ञानवान बनकर जीओ। ज्ञानी कभी दुखी नहीं होता। क्योंकि ज्ञानी संपूर्ण विश्व को अपना घर मानता है। सारे संसार के संपूर्ण ऐश्वर्य को अपना ऐश्वर्य मानता है। संपूर्ण संसार के प्राणी को अपने हृदय के समान समझता है, उस पर प्रेम की वर्षा करता है। तुम भी अपने हृदय को इतना विशाल बनाओ कि सारा संसार तुम्हारे प्रेम की झोली में भर जाय। तुम अपने आप को संसार की सेवा में अर्पित कर दो। अपने आप को निस्वार्थ परोपकार में निछावर करना ही तो कर्मयोग है। भगवान के भी चरणों में अपने को पूर्ण रूप से समर्पित कर देना ही तो भक्ति योग है। संसार के समस्त प्राणी ईश्वर के पुत्र हैं। उन सभी में ईश्वरीय अंश विद्यमान है। इसलिए तुम संसार की सेवा कर कर्मयोगी बनो, भक्तियोगी बनो। तुम केवल जीने का ढंग बदल दो। अभी तुम सीमित दायरे को अपना कहते हो। उस दायरे को बढ़ाओ और संपूर्ण संसारको अपना बना लो। फिर जीवन में आनन्द ही आनन्द है, शान्ति ही शान्ति है।

हे आत्मा ! अपना उद्धार तुम्हें स्वयं करना है। अपना पतन तो तुम बहुत कर चुके। तुम आप ही अपने मित्र हो, आप ही अपने शत्रु हो। गीता में भगवान श्री कृष्ण स्वयं कहते है-
'उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानम वसा दयते, आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन : ।'
इसलिए हे आत्मा ! तुम अपना उद्धार करने में पूर्ण समर्थ हो। क्योंकि तुम परमात्मा के हो और परमात्मा तुम्हारा है। इस सत्य भाव से तुम दूर मत जाओ। इससे नीचे मत गिरो। नीचे मन है, इन्द्रियाँ हैं, अहंकार है जो तुम्हें संसार में प्रकृति के बन्धन में बाँध देंगे। तुम संयोग-वियोग, राग-द्वेष, मोह-लोभ, हानि-लाभ, काम-क्रोध और अनगिनत द्वन्दों में फसकर नीचे गिर जाओगे। तुम्हारा पतन हो जायेगा। इसलिए अपने ज्ञान का प्रयोग करो। विवेक शक्ति के द्वारा चिन्तन करो कि मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ तुम्हें जड़ जगत की ओर खीचेंगे, तुम्हें पतन की ओर ले जायेंगे, फिर तुम अपना उद्धार कैसे कर सकोगे। इसलिए तुम परमात्मा का चिन्तन करो। वही तुम्हारा अपना है, वही सदा तुम्हारे भीतर है। वही सर्वदा संपूर्ण जगत में हैं। ऐसे परम हितकारी परमात्मा को छोड़कर संसार की मदद लेना क्या तुम्हारे लिए ठीक है। संसार नश्वर है। यहाँ जो कुछ भी है उसका एक न एक दिन नाश होना है। ऐसा नाशवान संसार तुम्हारा वैशाखी नहीं बन सकता। तुम खुद शुद्ध बुद्ध हो, पवित्र

आत्मा हो, ईश्वर के पुत्र हो। अत: संसार से निर्लिप्त होकर अपना खुद उद्धार करो। तुम शरीर नहीं हो। शरीर नाशवान है, पर तुम शाश्वत हो। शरीर के न रहने पर भी तुम रहते हो। शरीर प्रकृति का है और उस पर प्रकृति का ही अधिकार है। तुम लाख कोशिश करो पर शरीर वैसा ही होगा जैसा प्रकृति चाहेगी। तुम नहीं चाहते हो कि शरीर छूट जाय पर प्रकृति के एक इशारे पर शरीर छूट जाता है, नष्ट हो जाता है। शरीर परिवर्तनशील है और तुम अपरिवर्तनशील हो। परिवर्तनशील से अपरिवर्तनशील का काम कैसे चलेगा। नश्वर से शाश्वत का व्यवहार कैसे होगा। इसलिए शरीर को प्रकृति के हाथों में छोड़ दो और स्वयं को परमात्मा के हाथों में अर्पित कर दो। अगर तुम ऐसा नहीं किये, शरीर को ही अपना मानते रहे तो तुम स्वयं को कभी नहीं जान सकोगे। क्योंकि शरीर तुम्हारे बंधन का कारण है। वह काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि विकारों से तुम्हें बाँधता है। तुम्हारे स्वयं की पवित्रता को अपवित्र करता है। तुम्हारे लक्ष्य में बाधक बनता है। तुम्हें तुम्हारे घर नहीं जाने देता। इसलिए शरीर पर अभिमान मत करो। शरीर के मोह को छोड़ो। उसका उपभोग मत करो; उसका उपयोग करो। प्रकृति ने कृपा कर तुम्हें यह शरीर दिया है। उसका उपयोग संसार की सेवा में, परमात्मा की प्राप्ति में करो। उसे अपना समझ कर उसका दोहन मत करो। वह एक न एक दिन तुम्हारा साथ छोड़कर चला जायेगा। अत: तुम शरीर का मोह छोड़ो और अपने को पहचानो। तुम शाश्वत हो, अपरिवर्तनशील हो, नित्य हो, अनादि हो, सत-चित्त और आनन्द स्वरूप हो। तुम अपने को भूल गये हो। अत: अपने को पहचानो। तुम्हारे उद्धार का एक ही रास्ता है कि तुम अपने आप को जानो।

हे आत्मा! संसार से तुमने ही नाता जोड़ा है। संसार कभी भी तुमसे नाता नहीं जोड़ता। जरा सोच कर देखो- तुम जब बालक थे तब अपने बालकपन में मस्त थे। उस मस्ती से तुम बाहर नहीं आना चाहते थे। लेकिन प्रकृति ने अपना कमाल दिखाया। बाल्यावस्था से तुम्हारा साथ छूटा, ममत्व टूटा और देखते ही देखते तुम जवान हो गये। तुम्हारे लाख चाहने पर भी तुम्हारा बालकपन तुमसे छीन लिया गया। प्रकृति ने तुम्हें जवानी दे डाली। बाध्य होकर तुमने जवानी को स्वीकार किया। तुम जवानी से मुहब्बत करने लगे। उसकी मस्ती में मस्त हो गये। तुम जवानी से बध गये। तुम नहीं चाहते थे कि जवानी तुम्हारा साथ छोड़े अथवा जवानी से तुम्हारा नाता टूटे। तुम जवानी के बिना जीवन ही व्यर्थ मानने लगे। जवानी के बिना जीवन हो ही नहीं सकता, तुम ऐसी धारणा दृढ़ कर लिए। जवानी को तुम अपनी जान समझ बैठे। तुम उसके मद में अभिमानी हो गये। जवानी के मोह में तुम पागल हो गये। तुम्हें विश्वास हो गया कि मैं सदा जवान रहूँगा।

कभी बूढ़ा नहीं होऊगाँ। तुमने अपने को जवान शरीर ही मान लिया। लेकिन जवानी क्या तुम्हारी है, वह क्या तुम्हारे साथ सदा रहेगी, नहीं। तुमने तो बहुत कोशिश की कि जवानी सदा मेरे साथ रहे। खूब दंड-बैठकी की। खूब कसरत किया। सुबह शाम दोनो समय अखाड़े गये। खूब घी, दूध पीया। खूब मांस-मछली खाये। खूब मौज उड़ाया। पर जवानी ने क्या तुम्हारी बात मानी। वह भी तुम्हें छोड़ कर चली गई। तुम बूढ़े हो गये। तब भी तुम्हारा मोह नहीं गया। तब भी तुम सत्य को नहीं पहचान सके। तब भी तुम अपने को न जान सके। तुमने सोचा कि मैं कभी नहीं मरूँगा। भले ही देह बूढा है, पर मैं मरूँगा नहीं। लेकिन एक दिन तुम्हारा शरीर भी छूट गया। तुम मर गये। अब तुम अकेले रह गये। तुम्हारा अपना शरीर भी साथ छोड़ गया। जिसके प्रति तुम इतने मोही बन गये थे वह भी तुम्हें त्याग गया। सब छूट गया। रह गये केवल तुम अकेले। अब ! अब पछताने से क्या फायदा। समय तो गुजर गया। एक ही नहीं , न जाने कितने जन्म बीत गये। तुम बार-बार जन्म लिए और भ्रम में पड़े रहे। अब बताओ कि संसार से मोह तुमने किया कि संसार ने तुमसे किया। संसार (प्रकृति) अपने क्रम से चलता रहा। तुम अपने क्रम से नहीं चल सके। तुम अपने स्वरूप को नहीं जान सके। तुमने ही अपने स्वभाव के विपरीत परमात्मा को छोड़कर प्रकृति (देह) से नाता जोड़ा। अर्थात् तुम्हारे द्वारा गलत रास्ता अपनाया गया। सत्य राह को तुम ही भूले न कि प्रकृति भूली। इसलिए हे आत्मा ! तुम जागो। इस जन्म में तुम सत्य को पहचानो। तुम्हें जो मानव शरीर, बुद्धि और विवेक मिला है उसका तुम सही उपयोग करो। इस जन्म में तुम अपनी बिगड़ी को बनाओ। सत और असत को जानो, शाश्वत और नश्वर को पहचानो। कौन अपना है, कौन पराया है, कौन साथ जायेगा, कौन साथ नहीं जायेगा- इसका ज्ञान प्राप्त करो। सत्य तत्व का ज्ञान होते ही तुम्हारे सारे भ्रम दूर हो जायेंगे और तुम्हें सच्ची शान्ति और आनन्द की प्राप्ति हो जायेगी।

इसलिए हे आत्मा ! तुम प्रकृति के फेरे में मत पड़ो। प्रकृति तुम्हें बाँध लेगी। वह तुम्हारी स्वतंत्रता छीन लेगी। तुम्हें अपने स्वभाव से अलग कर देगी। तुम अपने को भी पहचान नहीं सकोगे। तुम्हारे ऊपर माया का पर्दा पड़ जायेगा। तुम अपनी शक्ल दिखाने लायक भी न रहोगे। इसलिए तुम प्रकृति से कभी भी नाजायज सम्बन्ध मत रखो। उसका दास मत बनो। तुम्हारी कमजोरी यह है कि जब तुम्हें धन, बल या अधिकार मिलता है तो तुम अपने को धनवान, बलवान या अधिकारी मान लेते हो। अर्थात् तुम शुद्ध-बुद्ध आत्मा न होकर धनवान, बलवान या अधिकारी हो जाते हो। और उसके मद में तुम अपने को श्रेष्ठ समझते हो। परन्तु जरा सोचो कि इन नश्वर वस्तुओं के कारण तुम श्रेष्ठ कैसे हो

सकते हो। ये सभी तो नश्वर हैं। ये बाहर से तुम्हारे ऊपर थोपे गये हैं। तुम तो इनसे अलग सत्य तत्व हो। ये सब तो तुम्हारे लिए ऊपरी आवरण हैं। जड़ तो तुम हो। ये आवरण तो आज हैं कल नहीं रहेंगे। क्योंकि नश्वर प्रकृति का यही गुण है कि जो आज है वह कल नष्ट हो जाएगा। उदाहरण के लिए धन आज तुम्हारे पास है तो कल नहीं रहेगा। कल या तो किसी दूसरे के पास चला जायेगा अथवा तुम्हारे ही बच्चे उस पर अपना अधिकार कर लेंगे। तुम बूढ़े होकर चारपाई पर पड़े असहाय आँखों से ताकते रहोगे। फिर; अधिकार किसके पास सदा रहा है। कितना ही बड़ा अधिकारी, मंत्री या संत्री क्यों न हो, एक न एक दिन वह उस अधिकार से वंचित हो जाता है। फिर वे ही व्यक्ति जो तुम्हें उसअधिकार के कारण श्रेष्ट मानते थे, तुम्हें देखकर मुख फेर लेगे। तुम्हारी सारी श्रेष्टता खत्म हो जयेगी। और रहा बल, तो इस नश्वर बल का क्या ठिकाना। भरी जवानी में तुम बीमार पड़ गये तो बल समाप्त। बुढ़ापे में तो बल रहेगा नहीं। इसका क्या भरोसा। फिर भी मुर्खता बस तुम अपने को इसके कारण श्रेष्ठ समझते हो। अर्थात् नश्वरता के आगे तुम शाश्वत आत्मा होकर भी गुलाम हो गये हो। जो तुम्हारा गुलाम था उसके तुम गुलाम हो गये हो। धन मिला और बिछुड़ गया। बल आया और चला गया। अधिकार मिला और छूट गया। पर जिससे ये सब छूट गये वह शाश्वत आत्मा तुम तब भी थे, आज भी हो और आगे भी रहोगे। तुम्हीं इनके मोह और लोभ में फसे हो। तुम गुलामी को ही बादशाही मान लिए हो। तुम्हें पता ही नहीं है कि जिस धन को कमाने में तुमने अपना पूरा जीवन लगा दिया था वह पलक बन्द होते ही दूसरे का हो जायेगा। फिर उस धन को कोई हमसे छीन न ले, चोर चुरा न ले जाय; इसकी चिन्ता में तुम दिन रात अपनी नींद को हराम किये बैठे हो। तुम निश-दिन बेचैन हो कर उसकी पहरेदारी करते हो। यह पहरेदारी गुलामी नहीं तो और क्या है। जिसे तुम खा नहीं सकते, जिससे तुम्हारी तृष्णा तृप्त नहीं हो सकती, जो तुम्हारे बेचैनी का कारण बना हुआ है, उसकी तुम पहरेदारी कर रहे हो, यह तुम्हारी गुलामी ही तो है। उसके तुम गुलाम ही हो, मालिक नहीं हो। मालिक तो निश्चिन्त होता है, आनन्दित होता है, स्वतंत्र होता है। पर तुम इस धन, बल और अधिकार के फेरे में न निश्चिन्त रह सके, न आनन्दित रह सके, न ही स्वतंत्र रह सके। कैसी विडम्बना है कि जो खुद में निश्चिन्त, आनन्दित और स्वतंत्र है वह प्रकृति के मोह में ऐसा बँध गया है, ऐसा अंधा हो गया है कि उसे अपने तक का ध्यान नहीं है।

हे आत्मा ! आवश्यकता से अधिक धन का होना तुम्हारे लिए नागिन के सामन है। यह एक ऐसी नागिन है जिसकी रात दिन रखवाली करो फिर भी यह डर बना रहता है कि

न जाने कब डँस ले। घर के अन्दर घुसी है, न जाने कहाँ छिपी है, कहीं पाँव के नीचे न आ जाय, कहीं काट न ले - सदा डर बना रहता है। नींद हराम हो जाती है। ऐसे ही धन आते ही तुम्हारी नींद हराम हो जाती है। कहीं कोई उस धन को चुरा न ले, कहीं उसके लिए डाकू जान से न मार डाले, कहीं कोई बेइमानी न कर ले , कहीं छापा न पड़ जाय आदि अनेक प्रकार के डर मन में समाये रहते हैं। इस डर के कारण तुम्हारी नींद हराम हो जाती है। क्या इस प्रकार की अशान्ति और परेशानी को ही सुख कहते हैं ? क्या इसे ही बड़ा आदमी कहते है ? क्या इसी का नाम शान्ति है ? नहीं-नहीं ! इसका नाम शान्ति नहीं है। शान्ति जब आती है तो भले ही पास में फूटी कौड़ी न हो, शरीर से सर्प लिपटा रहे, सिर से छत गायब हो जाय फिर भी मानव आनन्द में मस्त रहता है। वह संपूर्ण द्वन्दों से मुक्त होकर समत्व को धारण कर लेता है। सारा संसार उसका अपना हो जाता है। वह जीते जी मुक्त आत्मा बन जाता है।

इसलिए हे आत्मा ! तुम ऐसा बड़ा मत बनो जिसके दलदल में तुम्हारी सब सुख और शान्ति ही विलीन हो जाय, जिसमें तुम्हारा अपनापन ही खो जाय, जिसमें तुम्हारी पवित्रता ही नष्ट हो जाय। तुम जैसे भी हो उसमें संतुष्ट रहो। तुम अपने आप में संतुष्ट रहो। आत्म संतुष्टि में ही आनन्द है। जहाँ संतुष्टि है वहाँ सर्व प्राप्ति है। जहाँ सर्व प्राप्ति है वहीं प्रसन्नता है, सुख है। संतुष्टि से ही महानता की प्राप्ति होती है। संतुष्टि बिना प्रसन्नता असम्भव है। संतुष्टि से ही मानव में मानवीय गुणों का प्रादुर्भाव होता है। जितनी आत्म संतुष्टि होगी उतना ही व्यक्ति ज्ञानवान होगा। संतुष्टि में बादशाहियत है। अभी तो तुम न जाने किसके-किसके पीछे पागल होते हो। जब तुम में संतुष्टि आ जायेगी तब तुम महान हो जाओगे। तब तुम्हें किसी चीज की आवश्यकता नहीं होगी। तब जो कुछ तुम्हारे पास है उसी में तुम्हें सारे संसार का वैभव दीखेगा। बस, तुम संतुष्टि के खजाने को भर लो फिर 'ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर' की स्थिति आ जायेगी। तेरे-मेरे का चक्कर समाप्त हो जायेगा। तुम आनन्द रस में डूब जाओगे। तुम शान्ति के सुख को पा लोगे।

हे आत्मा ! तुम अपना उद्धार करने में स्वयं समर्थ हो। तुम स्वयं अपने मित्र हो। तुम्हें किसी और से सहायता माँगने की आवश्यकता नहीं है। प्राकृतिक जगत तुम्हारी क्या सहायता करेगा। वह तो खुद असहाय है, वह तो खुद नश्वर है। उसे खड़ा होने के लिए किसी अन्य का सहारा लेना होता है। वरना वह तो खड़ा भी नहीं हो सकता। कभी किसी मृतक शरीर को तुम देखे हो ! उसके सभी अंग ठीक रहते हैं। परन्तु वह खड़ा नहीं हो

सकता। क्यों ? क्योंकि उसके अन्दर स्व (आत्मा) नहीं है। क्योंकि उसके भीतर आत्मरूप चेतना नहीं है। आँख, कान, नाक, मुख, जीभ, हाथ और धड़ सब रहते हुए भी वह असहाय है। एक स्व बिना इन सभी का कोई मूल्य नहीं है। ऐसे शरीर, मन, इन्द्रियाँ आदि पर क्या अभिमान करना। ये तो स्वयं असहाय हैं। जिसके पास खुद इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह कुछ देख सके, कुछ चल सके, कुछ सुन सके, कुछ सूँघ सके, किसी का स्पर्श कर सके - ऐसे असहाय प्रकृति का कैसा आश्रय, कैसा सहारा। तुम तो अपने पर भरोसा करो। अपने को दृढ़ बनाओ। तुम्हारे अन्दर इतनी सामर्थ्य है कि तुम सब कुछ कर सकते हो। तुम अपने स्व को पा सकते हो। तुम अपने लक्ष्य को पा सकते हो। तुम परमात्मा को पा सकते हो। तुम प्रकृति या प्राकृतिक वस्तुओं पर भरोसा मत करो। ये तुम्हारे साधक नहीं बाधक हैं। ये तुम्हें तुम्हारे लक्ष्य तक पहुँचने से रोकेंगे। कभी मन भटकेगा तो कभी देह अपना अहंकार दिखायेगा। कभी कर्म इन्द्रियाँ फुसलायेंगी तो कभी ज्ञान इन्द्रियाँ छलेगी। इसलिए इन्हें स्वच्छंद मत छोड़ो। इन्हें गुलाम बना कर रखो। तुम केवल स्व का सहारा लेकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ो। तुम मंजिल तक पहुँच जाओगे। सफलता तुम्हारा कदम चूमेगी।

हे आत्मा ! तुम अपने शत्रु खुद हो। तुम ही अपनी मुक्ति नहीं चाहते। तुम ही परमात्मा की शरण नहीं जाते। अन्यथा तुम्हारे अधीन रहने वाली ये इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार तुम्हारा क्या हानि कर सकते हैं। ये सब स्थूल हैं। स्थूल की दौड़ सूक्ष्म तक हो ही नहीं सकती। हाँ तुम्हारी दौड़ स्थूल तक अवश्य हो सकती है। तुम ही दौड़ कर अज्ञानता में इस स्थूल को अपनी गोद में भर लेते हो। मन, इन्द्रियाँ आदि तुम्हारे पास कभी नहीं आती। ये कभी आ भी नहीं सकतीं। तुम्हारे पास आने को इनकी सामर्थ्य भी नहीं है। ये जड़ हैं। इनकी शक्ति तो तुम हो। तुम न रहो तो ये सड़ जाँय। ये तो प्राण- शक्ति हवा को भी नहीं देख सकतीं। ये आग में जलने और जल में डूबने वाली हैं। परन्तु तुम तो महान हो। यह तो तुम्हारी अपनी ही भूल है कि तुम इनके जाल में फस जाते हो। ये तुम्हें फसाती नहीं है। इनमें तुम्हें फसाने की भी सामर्थ नहीं है। ये तो सब यंत्र हैं। जैसा तुम इनसे चाहते हो वैसा ये करती हैं। ये न तो पाप करती है और न ही पुण्य करती हैं। ये वही करती हैं जो तुम इनसे करवाते हो। तो दोष तो तुम्हारा ही है, इनका नहीं है। तुम्हीं लालच में आकर न जाने क्या-क्या इनसे करवाते हो और अपने को शरीरवान, बलवान, बुद्धिमान, अधिकारी और न जाने क्या-क्या मानकर इनके द्वारा बुने हुए अभिमान के जाल में फस जाते हो। इसलिए हे आत्मा ! तुम अपने को सुधारो। अपने इस मोह रूपी बंधन को काटो। तुम इस भ्रम के जाल से अपने को निकालो। तुम वास्तविकता को पहचानो। आत्मा और परमात्मा के

न जाने कब डँस ले। घर के अन्दर घुसी है, न जाने कहाँ छिपी है, कहीं पाँव के नीचे न आ जाय, कहीं काट न ले - सदा डर बना रहता है। नींद हराम हो जाती है। ऐसे ही धन आते ही तुम्हारी नींद हराम हो जाती है। कहीं कोई उस धन को चुरा न ले, कहीं उसके लिए डाकू जान से न मार डाले, कहीं कोई बेइमानी न कर ले , कहीं छापा न पड़ जाय आदि अनेक प्रकार के डर मन में समाये रहते हैं। इस डर के कारण तुम्हारी नींद हराम हो जाती है। क्या इस प्रकार की अशान्ति और परेशानी को ही सुख कहते हैं ? क्या इसे ही बड़ा आदमी कहते है ? क्या इसी का नाम शान्ति है ? नहीं-नहीं ! इसका नाम शान्ति नहीं है। शान्ति जब आती है तो भले ही पास में फूटी कौड़ी न हो, शरीर से सर्प लिपटा रहे, सिर से छत गायब हो जाय फिर भी मानव आनन्द में मस्त रहता है। वह संपूर्ण द्वन्दों से मुक्त होकर समत्व को धारण कर लेता है। सारा संसार उसका अपना हो जाता है। वह जीते जी मुक्त आत्मा बन जाता है।

इसलिए हे आत्मा ! तुम ऐसा बड़ा मत बनो जिसके दलदल में तुम्हारी सब सुख और शान्ति ही विलीन हो जाय, जिसमें तुम्हारा अपनापन ही खो जाय, जिसमें तुम्हारी पवित्रता ही नष्ट हो जाय। तुम जैसे भी हो उसमें संतुष्ट रहो। तुम अपने आप में संतुष्ट रहो। आत्म संतुष्टि में ही आनन्द है। जहाँ संतुष्टि है वहाँ सर्व प्राप्ति है। जहाँ सर्व प्राप्ति है वहीं प्रसन्नता है, सुख है। संतुष्टि से ही महानता की प्राप्ति होती है। संतुष्टि बिना प्रसन्नता असम्भव है। संतुष्टि से ही मानव में मानवीय गुणों का प्रादुर्भाव होता है। जितनी आत्म संतुष्टि होगी उतना ही व्यक्ति ज्ञानवान होगा। संतुष्टि में बादशाहियत है। अभी तो तुम न जाने किसके-किसके पीछे पागल होते हो। जब तुम में संतुष्टि आ जायेगी तब तुम महान हो जाओगे। तब तुम्हें किसी चीज की आवश्यकता नहीं होगी। तब जो कुछ तुम्हारे पास है उसी में तुम्हें सारे संसार का वैभव दीखेगा। बस, तुम संतुष्टि के खजाने को भर लो फिर 'ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर' की स्थिति आ जायेगी। तेरे-मेरे का चक्कर समाप्त हो जायेगा। तुम आनन्द रस में डूब जाओगे। तुम शान्ति के सुख को पा लोगे।

हे आत्मा ! तुम अपना उद्धार करने में स्वयं समर्थ हो। तुम स्वयं अपने मित्र हो। तुम्हें किसी और से सहायता माँगने की आवश्यकता नहीं है। प्राकृतिक जगत तुम्हारी क्या सहायता करेगा। वह तो खुद असहाय है, वह तो खुद नश्वर है। उसे खड़ा होने के लिए किसी अन्य का सहारा लेना होता है। वरना वह तो खड़ा भी नहीं हो सकता। कभी किसी मृतक शरीर को तुम देखे हो ! उसके सभी अंग ठीक रहते हैं। परन्तु वह खड़ा नहीं हो

सकता। क्यों ? क्योंकि उसके अन्दर स्व (आत्मा) नहीं है। क्योंकि उसके भीतर आत्मरूप चेतना नहीं है। आँख, कान, नाक, मुख, जीभ, हाथ और धड़ सब रहते हुए भी वह असहाय है। एक स्व बिना इन सभी का कोई मूल्य नहीं है। ऐसे शरीर, मन, इन्द्रियाँ आदि पर क्या अभिमान करना। ये तो स्वयं असहाय हैं। जिसके पास खुद इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह कुछ देख सके, कुछ चल सके, कुछ सुन सके, कुछ सूँघ सके, किसी का स्पर्श कर सके - ऐसे असहाय प्रकृति का कैसा आश्रय, कैसा सहारा। तुम तो अपने पर भरोसा करो। अपने को दृढ़ बनाओ। तुम्हारे अन्दर इतनी सामर्थ्य है कि तुम सब कुछ कर सकते हो। तुम अपने स्व को पा सकते हो। तुम अपने लक्ष्य को पा सकते हो। तुम परमात्मा को पा सकते हो। तुम प्रकृति या प्राकृतिक वस्तुओं पर भरोसा मत करो। ये तुम्हारे साधक नहीं बाधक हैं। ये तुम्हें तुम्हारे लक्ष्य तक पहुँचने से रोकेंगे। कभी मन भटकेगा तो कभी देह अपना अहंकार दिखायेगा। कभी कर्म इन्द्रियाँ फुसलायेंगी तो कभी ज्ञान इन्द्रियाँ छलेगी। इसलिए इन्हें स्वच्छंद मत छोड़ो। इन्हें गुलाम बना कर रखो। तुम केवल स्व का सहारा लेकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ो। तुम मंजिल तक पहुँच जाओगे। सफलता तुम्हारा कदम चूमेगी।

हे आत्मा ! तुम अपने शत्रु खुद हो। तुम ही अपनी मुक्ति नहीं चाहते। तुम ही परमात्मा की शरण नहीं जाते। अन्यथा तुम्हारे अधीन रहने वाली ये इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार तुम्हारा क्या हानि कर सकते हैं। ये सब स्थूल हैं। स्थूल की दौड़ सूक्ष्म तक हो ही नहीं सकती। हाँ तुम्हारी दौड़ स्थूल तक अवश्य हो सकती है। तुम ही दौड़ कर अज्ञानता में इस स्थूल को अपनी गोद में भर लेते हो। मन, इन्द्रियाँ आदि तुम्हारे पास कभी नहीं आती। ये कभी आ भी नहीं सकतीं। तुम्हारे पास आने को इनकी सामर्थ्य भी नहीं है। ये जड़ हैं। इनकी शक्ति तो तुम हो। तुम न रहो तो ये सड़ जाँय। ये तो प्राण- शक्ति हवा को भी नहीं देख सकतीं। ये आग-में जलने और जल में डूबने वाली हैं। परन्तु तुम तो महान हो। यह तो तुम्हारी अपनी ही भूल है कि तुम इनके जाल में फस जाते हो। ये तुम्हें फसाती नहीं है। इनमें तुम्हें फसाने की भी सामर्थ नहीं है। ये तो सब यंत्र हैं। जैसा तुम इनसे चाहते हो वैसा ये करती हैं। ये न तो पाप करती है और न ही पुण्य करती हैं। ये वही करती हैं जो तुम इनसे करवाते हो। तो दोष तो तुम्हारा ही है, इनका नहीं है। तुम्हीं लालच में आकर न जाने क्या-क्या इनसे करवाते हो और अपने को शरीरवान, बलवान, बुद्धिमान, अधिकारी और न जाने क्या-क्या मानकर इनके द्वारा बुने हुए अभिमान के जाल में फस जाते हो। इसलिए हे आत्मा ! तुम अपने को सुधारो। अपने इस मोह रूपी बंधन को काटो। तुम इस भ्रम के जाल से अपने को निकालो। तुम वास्तविकता को पहचानो। आत्मा और परमात्मा के

न जाने कब डँस ले। घर के अन्दर घुसी है, न जाने कहाँ छिपी है, कहीं पाँव के नीचे न आ जाय, कहीं काट न ले - सदा डर बना रहता है। नींद हराम हो जाती है। ऐसे ही धन आते ही तुम्हारी नींद हराम हो जाती है। कहीं कोई उस धन को चुरा न ले, कहीं उसके लिए डाकू जान से न मार डाले, कहीं कोई बेइमानी न कर ले , कहीं छापा न पड़ जाय आदि अनेक प्रकार के डर मन में समाये रहते हैं। इस डर के कारण तुम्हारी नींद हराम हो जाती है। क्या इस प्रकार की अशान्ति और परेशानी को ही सुख कहते हैं ? क्या इसे ही बड़ा आदमी कहते है ? क्या इसी का नाम शान्ति है ? नहीं-नहीं ! इसका नाम शान्ति नहीं है। शान्ति जब आती है तो भले ही पास में फूटी कौड़ी न हो, शरीर से सर्प लिपटा रहे, सिर से छत गायब हो जाय फिर भी मानव आनन्द में मस्त रहता है। वह संपूर्ण द्वन्दों से मुक्त होकर समत्व को धारण कर लेता है। सारा संसार उसका अपना हो जाता है। वह जीते जी मुक्त आत्मा बन जाता है।

इसलिए हे आत्मा ! तुम ऐसा बड़ा मत बनो जिसके दलदल में तुम्हारी सब सुख और शान्ति ही विलीन हो जाय, जिसमें तुम्हारा अपनापन ही खो जाय, जिसमें तुम्हारी पवित्रता ही नष्ट हो जाय। तुम जैसे भी हो उसमें संतुष्ट रहो। तुम अपने आप में संतुष्ट रहो। आत्म संतुष्टि में ही आनन्द है। जहाँ संतुष्टि है वहाँ सर्व प्राप्ति है। जहाँ सर्व प्राप्ति है वहीं प्रसन्नता है, सुख है। संतुष्टि से ही महानता की प्राप्ति होती है। संतुष्टि बिना प्रसन्नता असम्भव है। संतुष्टि से ही मानव में मानवीय गुणों का प्रादुर्भाव होता है। जितनी आत्म संतुष्टि होगी उतना ही व्यक्ति ज्ञानवान होगा। संतुष्टि में बादशाहियत है। अभी तो तुम न जाने किसके-किसके पीछे पागल होते हो। जब तुम में संतुष्टि आ जायेगी तब तुम महान हो जाओगे। तब तुम्हें किसी चीज की आवश्यकता नहीं होगी। तब जो कुछ तुम्हारे पास है उसी में तुम्हें सारे संसार का वैभव दीखेगा। बस, तुम संतुष्टि के खजाने को भर लो फिर 'ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर' की स्थिति आ जायेगी। तेरे-मेरे का चक्कर समाप्त हो जायेगा। तुम आनन्द रस में डूब जाओगे। तुम शान्ति के सुख को पा लोगे।

हे आत्मा ! तुम अपना उद्धार करने में स्वयं समर्थ हो। तुम स्वयं अपने मित्र हो। तुम्हें किसी और से सहायता माँगने की आवश्यकता नहीं है। प्राकृतिक जगत तुम्हारी क्या सहायता करेगा। वह तो खुद असहाय है, वह तो खुद नश्वर है। उसे खड़ा होने के लिए किसी अन्य का सहारा लेना होता है। वरना वह तो खड़ा भी नहीं हो सकता। कभी किसी मृतक शरीर को तुम देखे हो ! उसके सभी अंग ठीक रहते हैं। परन्तु वह खड़ा नहीं हो

सकता। क्यों ? क्योंकि उसके अन्दर स्व (आत्मा) नहीं है। क्योंकि उसके भीतर आत्मरूप चेतना नहीं है। आँख, कान, नाक, मुख, जीभ, हाथ और धड़ सब रहते हुए भी वह असहाय है। एक स्व बिना इन सभी का कोई मूल्य नहीं है। ऐसे शरीर, मन, इन्द्रियाँ आदि पर क्या अभिमान करना। ये तो स्वयं असहाय हैं। जिसके पास खुद इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह कुछ देख सके, कुछ चल सके, कुछ सुन सके, कुछ सूँघ सके, किसी का स्पर्श कर सके - ऐसे असहाय प्रकृति का कैसा आश्रय, कैसा सहारा। तुम तो अपने पर भरोसा करो। अपने को दृढ़ बनाओ। तुम्हारे अन्दर इतनी सामर्थ्य है कि तुम सब कुछ कर सकते हो। तुम अपने स्व को पा सकते हो। तुम अपने लक्ष्य को पा सकते हो। तुम परमात्मा को पा सकते हो। तुम प्रकृति या प्राकृतिक वस्तुओं पर भरोसा मत करो। ये तुम्हारे साधक नहीं बाधक हैं। ये तुम्हें तुम्हारे लक्ष्य तक पहुँचने से रोकेंगे। कभी मन भटकेगा तो कभी देह अपना अहंकार दिखायेगा। कभी कर्म इन्द्रियाँ फुसलायेंगी तो कभी ज्ञान इन्द्रियाँ छलेगी। इसलिए इन्हें स्वच्छंद मत छोड़ो। इन्हें गुलाम बना कर रखो। तुम केवल स्व का सहारा लेकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ो। तुम मंजिल तक पहुँच जाओगे। सफ़लता तुम्हारा कदम चूमेगी।

हे आत्मा! तुम अपने शत्रु खुद हो। तुम ही अपनी मुक्ति नहीं चाहते। तुम ही परमात्मा की शरण नहीं जाते। अन्यथा तुम्हारे अधीन रहने वाली ये इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार तुम्हारा क्या हानि कर सकते हैं। ये सब स्थूल हैं। स्थूल की दौड़ सूक्ष्म तक हो ही नहीं सकती। हाँ तुम्हारी दौड़ स्थूल तक अवश्य हो सकती है। तुम ही दौड़ कर अज्ञानता में इस स्थूल को अपनी गोद में भर लेते हो। मन, इन्द्रियाँ आदि तुम्हारे पास कभी नहीं आती। ये कभी आ भी नहीं सकतीं। तुम्हारे पास आने को इनकी सामर्थ्य भी नहीं है। ये जड़ हैं। इनकी शक्ति तो तुम हो। तुम न रहो तो ये सड़ जाँय। ये तो प्राण- शक्ति हवा को भी नहीं देख सकतीं। ये आग में जलने और जल में डूबने वाली हैं। परन्तु तुम तो महान हो। यह तो तुम्हारी अपनी ही भूल है कि तुम इनके जाल में फस जाते हो। ये तुम्हें फ़साती नहीं है। इनमें तुम्हें फसाने की भी सामर्थ नहीं है। ये तो सब यंत्र हैं। जैसा तुम इनसे चाहते हो वैसा ये करती हैं। ये न तो पाप करती है और न ही पुण्य करती हैं। ये वही करती हैं जो तुम इनसे करवाते हो। तो दोष तो तुम्हारा ही है, इनका नहीं है। तुम्हीं लालच में आकर न जाने क्या-क्या इनसे करवाते हो और अपने को शरीरवान, बलवान, बुद्धिमान, अधिकारी और न जाने क्या-क्या मानकर इनके द्वारा बुने हुए अभिमान के जाल में फ़स जाते हो। इसलिए हे आत्मा! तुम अपने को सुधारो। अपने इस मोह रूपी बंधन को काटो। तुम इस भ्रम के जाल से अपने को निकालो। तुम वास्तविकता को पहचानो। आत्मा और परमात्मा के

वास्तविक सम्बन्ध को जानो। प्रकृति और आत्मा के भेद को जानो। तभी तुम्हारा कल्याण होगा। तभी तुम ज्ञानी हो सकोगे। वरना जन्म-जन्म तक यूँ ही भटकते रहोगे और तुम्हें मुक्ति नहीं मिलेगी।

हे आत्मा ! तुम स्थूल नहीं सूक्ष्म हो। तुम्हारा परम पिता परमात्मा सूक्ष्माति-सूक्ष्म है। यही कारण है कि तुमसे परमात्मा की ओर यात्रा करने के लिए निवेदन करता हूँ। तुम्हारी सारी कोशिश परमात्मा की ओर होनी चाहिए। तुम्हारा वास्तविक धाम वहीं है। क्योंकि तुम परमात्मा के पुत्र हो। लौकिक जीवन में भी हर व्यक्ति या वस्तु अपने उद्गम स्थान की ओर ही जाते हैं। नदी को देखो; वह सागर से मिलने के लिए कल-कल छल-छल करती हुई दिन-रात बहती रहती है। चिड़िया हर सुबह भोजन की तलाश में अपने घोसले से निकल जाती हैं। परन्तु शाम होने पर वापस अपने घोसले में चली आती हैं। तुम भी अपने उद्गम स्थान को मत भूलो। तुम्हारा उद्गम स्थान परमधाम है, ब्रह्मलोक है। तुम कहाँ इस संसार में भटक रहे हो। तुम्हारी हर कोशिश यही होनी चाहिए कि तुम अपने परम धाम पहुँच सको। वही तुम्हारा परम पिता परमात्मा विराजमान है। जो तुम्हें अपने अंक में भरने के लिए व्याकुल है। वह देख रहा है कि तुम संसार की जाल में फँस गये हो। वह देख रहा है कि तुम उस जाल को ही स्वर्ग मान बैठे हो। वह देख रहा है कि ज्ञानी सत्य को पहचान कर उस जाल से छूट रहे हैं और अज्ञानी असत्य को सत्य मान कर उसमें ही फँस रहे हैं। वह संसार-जाल से निकलने वालों पर जहाँ प्रसन्न होता है वहीं जगत-जाल में फसने वालों पर दुखी भी होता है। वह कहता है कि मैने तुम्हें बुद्धि दी है, विवेक दी है उसका उपयोग करो। बुद्धि, विवेक होते हुए भी तुम क्यों अज्ञानी बने रहते हो। तुम अपने ज्ञान को जाग्रत करो। मैं कुछ नहीं कर सकता। जो कुछ करना है वह तुम्हें ही करना है। तुम ही सत्य असत्य की पहचान करो। जगत, आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को तुम ही जानो। जो जान लेगा उसका कल्याण हो जायेगा। जो नहीं जानेगा वह माया से मुक्त नहीं हो सकता। तुम जानते हो कि परमात्मा ऐसा क्यों कहता है ? क्योंकि वह अपने द्वारा बनाये गये नियमों और नियति से बधा हुआ है। वह नियम तोड़ नहीं सकता। जगत का कल्याण और दुष्टों के संहार के लिए जब कभी भी उसे इस संसार में आना पड़ता है तो वह अपने लिए भी इन नियमों को नहीं तोड़ता। वह द्वन्द रहित होकर प्रकृति के नियमों का पालन करता है। सुख-दुख जैसी भी स्थिति हो उसमे वह सुखीं-दुखी होता है। वह पक्षपात कभी नहीं करता। क्योकि सारा संसार उसका अपना है। वह सबको समान अधिकार देकर इस संसार में भेजता है। जो मानव उस अधिकार का सदुपयोग करते हैं वे

महान बन जाते हैं। वे ही संसार में महात्मा और देवात्मा होकर पूजे जाते हैं। परन्तु जो मानव उस ज्ञान रूपी अधिकार का दुरुपयोग करते हैं वे नर्क में गिर जाते हैं। वे जीते जी मर जाते हैं। इसलिए हे आत्मा ! तुम अपने विवेक का उपयोग करो। इस संसार की मोह माया को छोड़ो। तुम परमात्मा की शरण में जाओ और कर दो समर्पित अपनी माया-ममता उसके श्री चरणों में। निछावर कर दो उस पर अपने आप को। लुटा दो अपनी सारी खुशियों को उसके ऊपर। यही तो त्याग है। तुम सदा याद रखना कि त्याग ही ज्ञान का प्रथम सोपान है। बिना त्याग के सच्चे ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। बिना ज्ञान के प्रकाश नहीं हो सकता और बिना प्रकाश के तुम्हारा अंधकार दूर नहीं हो सकता। यदि तुम्हारे चारो ओर अँधेरा होगा तो किनारा कैसे ढूँढ सकोगे ? क्या तुम्हें मिल सकेगा किनारा ? किनारा ढूँढना है तो ज्ञान का दीपक जलाओ। ज्ञान के प्रकाश में तुम्हारा सारा रास्ता साफ हो जायेगा। तुम अपने रास्ते को पा लोगे। फिर तुम भटकोगे नहीं। फिर तुम्हारा हर कदम सही रास्ते पर पड़ेगा। तुम्हें सत्य और झूठ की पहचान हो जायेगी। तुम्हें ज्ञान हो जायेगा कि यह संसार एक दलदल है; जिसमें सिवा फसने के और कुछ नहीं है। मुक्ति तो इससे निर्लिप्त रहने में है - कमल के समान कीचड़ में रहकर भी कीचड़ से निर्लिप्त, संसार में हरकर भी माया से मुक्त, परिवार में रहकर भी परिवार के बंधन से स्वच्छन्द, समाज में रहकर भी समाज से स्वतंत्र और शरीर के साथ रहकर भी शरीर से असंग।

हे आत्मा ! तुम्हें आश्चर्य हो रहा होगा कि परिवार में रहकर परिवार से असंग कैसे रह सकते हैं। मैं कहता हूँ कि क्यों नहीं कर सकते ? तुम परिवार के प्रति अपने कर्त्तव्य को पूरा करो। पूरी श्रद्धा और भक्ति के साथ उन्हें अपना मानो। परिवार की सेवा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। जिस माता-पिता ने तुम्हें जन्म दिया है, पाला-पोशा है, पढ़ाया-लिखाया है, तुम्हें अपना हार्दिक प्रेम दिया है; उसके प्रति सेवा करना तुम्हारा परम कर्त्तव्य है। पत्नि, पुत्र, पुत्री, बहन, भाई, नातेदार, रिस्तेदार आदि सबके प्रति प्रेम का बर्ताव करना, उसके सुख दुख मे एक सेवक की भाँति लगे रहना, उनकी आवश्यकता की यथाशक्ति पूर्ति करना, उनके साथ सांसारिक व्यवहार निभाना, रीति-नीति के अनुसार उनके प्रति आचार -विचार रखना, परिवार के साथ सभ्यता और सांस्कृति का पालन करना तुम्हारा परम धर्म है। परिवार के प्रति अपने उत्तरदायित्व को सेवा भाव से पूर्ण करना ही तुम्हारी मानवता है। तुम अपने इन कर्मो को नित्य प्रति करते हो। परन्तु तुम्हारे दुख का कारण कर्त्तव्य करने या न करने में नीहित नहीं है। तुम्हारे दुख का कारण है तुम्हारे अन्दर बैठी हुई अपने परिवार के प्रति काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, राग और द्वेष। परिवार में तुम जिसके प्रति कुछ

व्यवहार करते हो; उससे बदले में कुछ चाहते हो। यह तुम्हारा चाहना ही तुम्हारे दुख का कारण है। यह चाहना तुम्हारे भीतर अनेक प्रकार से प्रकट होता है। जैसे, जो मेरा है वह सदा मेरा ही बना रहे। वह कभी भी बिछड़े नहीं। वह कभी दुखी न हो। उसे कभी रोग और व्याधि न सताये। चूँकि मैं उसकी सेवा करता हूँ इसलिए वह सदा मुझसे प्रेम करे, मुझे सम्मान दे। हम गलत सही जो कुछ भी करें परन्तु वह हमें कुछ न बोले, एक आज्ञाकारी सेवक की तरह मेरी हर बात को मानता रहे। जैसा मैं कर रहा हूँ वैसा ही अन्य लोग भी करें। कोई हमारा विरोध न करे। हमारी सभी आज्ञा को लोग शिरोधार्म करें -आदि आदि। ऐसे न जाने कितने अहंकार तुम्हारे मन में प्रगट हो जाते है जिसके कारण तुम्हें दुख होता है। तुम्हारे अहंकार को जहाँ ठेस लगा कि तुम तिलमिलाये। तुम्हारे स्वार्थ की पूर्ति नहीं हुई कि तुम्हें क्रोध आया। तो तुम्हारा जीवन केवल कामना पर निर्भर है। आज तुम परिवार के साथ केवल कामना के कारण ही बँधे हो। तुम्हारी यही कामना तुम्हें परिवार के दलदल में फसा देती है। यदि तुम्हारे व्यवहार के साथ तुम्हारी यह कामना न हो तो तुम्हारा व्यवहार उस परिवार के प्रति सेवा बन जाय। तुम्हें काम वही करना है सिर्फ परिवार के प्रति अपनी भावना को बदलना है। इस प्रकार यदि तुम अपने कर्त्तव्य को ही सर्वोपरि मानो और दूसरों से किसी प्रकार की मोह ममता न रखो तो तुम्हें दुख नहीं होगा। इस प्रकार तुम माया रूपी परिवार में रह कर भी माया से मुक्त रहोगे। परन्तु तुम्हारी कमजोरी यह है कि तुम अपने को भगवान समझते हो। तुम सोचते हो कि तुम्हारा परिवार तुम्हें भगवान की तरह पूजे। तुम्हारे परिवार में कोई कष्ट न हो। लेकिन तुम्हारे चाहने से क्या होता है। प्राकृतिक परिवर्तन के साथ शरीर में परिवर्तन होगा ही। उसे तुम रोक नहीं सकते। वास्तव में तुम प्रकृति पर विजय पाना चाहते हो, जिसमें तुम असमर्थ हो जाते हो और तुम्हें दुख होता है। परिणाम स्वरूप तुम्हारी सामर्थ प्रकृति से टकराने में उसकी ओर बह जाती है, जिससे तुम्हारी आत्मिक दौड़ रुक जाती हैं। जिस कारण तुम अपने आप को भूल जाते हो और अपने को देह मान कर सुख-दुख के भागी बनते हो। अर्थात् तुम शरीर के सुख-दुख को ही अपना सुख-दुख मान लेते हो। संसार को सत्य मानकर परमात्मा को भूल जाते हो। इसलिए हे आत्मा! परिवार तुम्हारे दुख का कारण नहीं है। तुम खुद अपने दुख का कारण हो। परिवार में जरा सा टकराव हुआ कि तुम दुखी हो गये। जब कभी उसी परिवार से तुम्हें सुख मिलता था तो तुम भगवान को धन्यवाद देते थे। भगवान की बड़ी मेहरबानी है कि हमें ऐसा परिवार मिला। परन्तु जब उसी परिवार से किंसी कारणवस कुछ कष्ट मिलता है तो उसे भगवान की मेहरबानी क्यों नहीं मानते ? जब भगवान की मेहरबानी से तुम्हें सुख मिल सकता है तो

भगवान की मेहरबानी से तुम्हें दुख क्यों नहीं मिल सकता। सुख-दुख दोनों ही भगवान की मेहरबानी से ही मिलते हैं। उसके बिना मेहरबानी के तो एक पत्ता भी नहीं हिलता। इस सत्यता को सहर्ष स्वीकार करो। दुख को भी भगवान का ही वरदान मानों। फिर देखो कि दुख भी कितना आनन्ददायक हो जाता है। फिर सुख-दुख में कोई अन्तर नहीं रहेगा। फिर परिवार ही एक आश्रम बन जायेगा।

हे आत्मा ! तुम कहीं भी रहो परन्तु तुम्हारा उद्देश्य सदा आध्यात्मिक होना चाहिए, लौकिक नहीं। तुम्हारी सारी आन्तरिक आवश्यकता आध्यात्मिक है, नित्य-तत्व की है परन्तु तुम कामना लौकिकता का, अनित्यता का करते हो। यही तुम्हारी सबसे बड़ी भूल है। तुम नश्वरता की तरफ दौड़ते हो। तुम नश्वर व्यक्तियों, वस्तुओं से कामना रखते हो। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि तुम्हें एक परमात्मा से सम्बन्ध रखना है। ये नश्वर वस्तुएँ तुम्हारे अपने नहीं हैं। इनके लिए तुम व्यर्थ में पागल हो रहे हो। ये तो आज हैं, कल नहीं रहेंगे। ये वस्तुएँ आज मिली हैं कल बिछुड़ जायेंगी। यह भी हो सकता है कि तुम्हारी कोशिश के बाद भी तुम्हारी कामना के अनुकूल वस्तुएँ तुम्हें मिलें ही नहीं। और मिल भी गई तो क्या तुम्हारा मन आगे और वस्तुओं के लिए कामना नहीं करेगा। मन तो एक कामना की पूर्ति होते ही दूसरी कामना की ओर दौड़ पड़ता है। क्योंकि मन का यही गुण है। वह सदा आगे भागता रहता है। एक वस्तु मिली कि मन की इच्छा उस वस्तु के लिए समाप्त हुई। फिर तत्काल नई इच्छा जाग्रत हो जाती है। तो क्या तुम वस्तुओं, व्यक्तियों एवं परिस्थितयों को प्राप्त करने में ही सारा जीवन नष्ट करोगे ? क्या इसीलिए तुम्हें मानव जीवन मिला है ? नहीं, इस नश्वरता को प्राप्त करने के लिए तुम्हें शाश्वत तत्व की प्राप्ति नहीं हुई है। शाश्वत तत्व से तो शाश्वत को ही प्राप्त करना होगा। इसीलिए यह शाश्वत जीवन तुम्हें मिला है। जरा सोचो ! अन्दर से इतने महान होते हुए भी तुम बाहर से कितने घिनौने हो। तुम अन्दर से शाश्वत होते हुए भी बाहर तन, धन और बल जैसी छोटी, नश्वर चीजों के लिए कामना करते हो और इसकी पूर्ति में ही अपना बड़प्पन मानते हो। जो चीज कल नष्ट हो जाने वाली है वह बड़ी कैसे हो सकती है। बड़े तो तुम हो। बड़ा तो परमात्मा है। जिस दिन तुम्हें अपने बड़प्पन का ज्ञान हो जायेगा उस दिन ये सारी वस्तुएँ तुम्हें तुच्छ लगने लगेंगी। फिर इनके पीछे तुम नहीं भागोगे। फिर इनके प्रति तुम्हें घृणा होगी। चूँकि तुम अपनी सत्यता को भूल चुके हो, इसलिए तुम अन्दर से खोखले हो चुके हो। इसलिए उस खोखलेपन को तुम इन नश्वर वस्तुओं से भरना चाहते हो। यदि ये वस्तुएँ तुम्हारे पास होती हैं तो तुम अपने को बड़ा समझते हो और नहीं होती है तो अपने को छोटा समझते

हो, अपने अन्दर हीन भावना रखते हो। इसलिए हे आत्मा ! तुम अपने अन्दर के खोखलेपन को भरो। अन्दर का खोखलापन भरते ही तुम्हारी सारी कामनायें भस्म हो जायेंगी। फिर नश्वर वस्तुएँ हो या न हो, तुम्हें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। इनके न रहने पर न तो तुम्हें हीनता का अनुभव होगा और न ही रहने पर बड़प्पन का अनुभव होगा। इसलिए तुम जागो। कहीं तुम्हारे जागने में देरी न हो जाय। यदि स्टेशन से गाड़ी छूट जायेगी तो पछताने के सिवा और कुछ हाथ नहीं लगेगा। न जाने कब शरीर रूपी तुम्हारी गाड़ी छूट जाय, कोई ठिकाना नहीं है। कोई जानता है कि कब देह छूटेगा। इसलिए जो कुछ भी तुम्हारे पास है उसका सदुपयोग करो, उसमें ही संतुष्ट रहो। 'संतुष्टम् परमं सुखम्' संतुष्टि में ही परम सुख है। अगर संतुष्टि नहीं है तो तुम इच्छाओं के गुलाम हो। लेकिन तुम्हें इच्छाओं का गुलाम नहीं, उसका मालिक बनना है। तुम परमात्मा के पुत्र हो। तुम आत्मा हो। आत्म जगत में मन की इच्छाओं का राज नहीं चलता। वहाँ तो इच्छाओं का नाश होता है। तुम इच्छाओं की पूर्ति के लिए संसार को नहीं आत्म-जगत की यात्रा करो। उसके खोखलेपन को भरो। अन्दर का खोल भरते ही बाहर के सारे विकार- काम, क्रोध, मंद, मोह, लोभ, अपने आप समाप्त हो जायेंगे।

हे आत्मा ! कबीरदास जी ने कहा है -'ज्यों की त्यों धर दीन चदरिया।' तुम इसका मतलब अपने देह से मत लेना। देह को तो तुम ज्यों का त्यों रख ही नहीं सकते। देह सदा परिवर्तनशील है। देह में शिशु, बालकपन, जवानी और बुढ़ापा ये चारो अवस्थायें आयेगी ही। बुढ़ापे में शरीर जर्जर भी होगा। फिर शरीर को ज्यों का त्यों रखने का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर कबीरदास किस चादर को ज्यों का त्यों रखने की बात करते हैं। वे मन, बुद्धि और अहंकार की बात करते हैं, वे तुम्हारी बात करते हैं। खुद तुम, तुम्हारा मन, तुम्हारी बुद्धि और तुम्हारा अहंकार जिस शुद्धता, पवित्रता और सुन्दरता से तुम्हें प्राप्त हुआ है; उसे उसी रूप में ज्यों का त्यों परमात्मा को वापस करना है। कबीरदासजी इन्हीं चादरों को साफ-सुथरा रखने को तुमसे कहते हैं। जीवन में जो भी सतगुण तुम्हें मिले हैं उन्हें सदा वैसा ही बनाये रखने की बात करते हैं। वे परमात्म प्राप्ति की बात करते हैं। वे कहते हैं कि परमात्मा से जितने भी ऐश्वर्य तुम्हें मिले हैं उन्हें सदा बनाये रखो। ये तुम्हारे ऐश्वर्य कभी मैले न हो। यदि तुम्हारे ये ऐश्वर्य मैले हुए अर्थात् कमजोर पड़े तो तुम्हारे ऊपर अनेक विकार हावी हो जायेंगे। तुम पावन होते हुए भी पतित हो जाओगे। तुम्हारे लक्ष्य में अन्तर पड़ जायेगा। तुम्हारा मन उस लक्ष्य से कभी बेमन न हो, इस ओर कबीरदासजी इंगित करते हैं। परमात्म प्राप्ति के लिए जितने भी ईश्वरीय साधन-सामग्री हैं, और जैसी

भी स्थिति में तुम्हें मिले हैं उसे वैसे का वैसा ही भगवान को अर्पित कर दो। उसमें किसी प्रकार की कोई कंजूसी मत करो।

हे आत्मा! भगवान ने तुम्हें निर्मन मन दिया है और तुम हो कि उसे दूषित कर देते हो। छल, कपट, बेइमानी और न जाने किन-किन विकारों में तुम मन को फँसा देते हो। जिस मन को तुम्हें परमात्मा में लगाना था उसे तुम संसार में लगा देते हो। इसे ही तो चदरिया का मैला होना कहते हैं। तुम संसार को परमात्मा की अपेक्षा अधिक महत्व देते हो। तुम शाश्वत से नश्वर को अधिक मानते हो। तुम परमार्थ से पदार्थ को अधिक जानते हो। यही तो तुम्हारी भूल है। तुमने ज्यों ही संसार को महत्व दिया, तुमने ज्यों ही नश्वरता को माना, तुमने जैसे ही पदार्थों की इच्छा की; त्यों ही तुम ईश्वरीय ऐश्वर्य से वंचित हो जाते हो, त्यों ही तुम्हारे अन्तर के सतगुण दुर्गुण का रूप ले लेते हैं। तुम्हारे मन पर जैसे-जैसे दुगुर्णो का प्रभाव पड़ता है, तुम्हारा मन वैसे ही वैसे नश्वरता का सहारा लेता है; तुम्हारे मन में नई-नई कामनायें जन्म लेने लगती हैं। जितनी कामनायें तुम्हारे भीतर उठेंगी उतना ही तुम माया में फसोगे। तुम उसी अनुपात में पाप करोगे। क्योंकि कामनाओं की पूर्ति हेतु किए गये तुम्हारे सभी कार्य तुम्हें नरक में ले जाने वाले होते हैं।'अर्थात् तुम्हारा जीवन नरकीय हो जाता है। इसलिए हे आत्मा! तुम दुर्गुणों को पहचानों। उसे अपने पास फटकने मत दो। दुर्गुण तुम्हारे चादर को मैला कर देंगे।

इसलिए हे आत्मा! तुम निर्मल बनो। कामनायें तुम्हें मैला कर देती हैं। अतः तुम कामनाओं का त्याग करो। कामना की उत्पत्ति का कारण ममता है। तुम अनेक प्रकार की ममता से घिरे हुए हो। देह के प्रति ममता, परिवार के प्रति ममता, नौकरी, दुकान और मकान के प्रति ममता, यहाँ तक की पूजा पाठ के प्रति ममता। ममता से तुम इस कदर घिर जाते हो कि उससे बाहर निकलना तुम्हारे लिए असम्भव हो जाता है। तुम्हारी ममता निरन्तर बनी रहे इसलिए तुम्हारे भीतर कामना जागती है। देह स्वस्थ्य रहे, परिवार खुशहाल रहे, नौकरी, दुकान, मकान बरकरार रहे, धन-दौलत भरपूर रहे, मेरा धर्म सबसे ऊँचा हो, मेरे पूजा-पाठ की चारो दिशाओं में ढंका बजे आदि-आदि न जाने कितनी कामनायें ममता को जीवित रखने के लिए उत्पन्न होती रहती हैं। मानव इसी कामना और ममता में फँस कर सारा जीवन गवा देता है। वह अपने उद्देश्य को भूल जाता है। उसे याद नहीं रहता कि एक दिन मौत आयेगी। सब यही का यही धरा रह जायेगा। कोई काम नहीं आयेगा।

हे आत्मा ! पर-सेवा से कामना का नाश होता है। ममता विलुप्त होती हैं और लोभ, मोह दूर होते है। पाप घटता है और पूण्य का उदय होता है। पर-हित में की गई सेवा निस्वार्थ होती हैं। जो काम निस्वार्थ भाव से किया जाता है उसमें कामना नहीं होती। जहाँ कामना नहीं होती वहाँ ममता भी नहीं होती। इस प्रकार कामना और ममता से मुक्त तुम्हारा जीवन शुद्ध होगा, तुम्हारा आँचल मैला नहीं होगा। तुम सोचते होगे कि पर-सेवा से पेट कैसे भरेगा। इसका उत्तर यह है कि तुम पेट नहीं हो। तुम देह भी नहीं हो। यह पेट या देह तुम्हें किसी ने दिया है, जो तुम्हारे पास धरोवर के रूप में है। तुम उसका केवल उपयोग कर सकते हो। उसका उपभोग नहीं कर सकते, उसको नष्ट नहीं कर सकते। अतः पेट पालने के लिए तुम्हें मानना होगा कि तुम पर-सेवा कर रहे हो। ऐसा मानने से तुम्हारा विचार अशुद्ध नहीं होगा। तुम्हारे कर्म सतकर्म हो जायेंगे। तुम्हारा दोष यह है कि तुम अपने पेट या देह के लिए जो भी कर्म करते हो उसे अपने लिए मान लेते हो। अपना मानने से ही ममता जाग्रत होती है। और ममता ही सारी बुराइयों की जड़ है। यदि तुम यह मानों कि मैं तो भगवान द्वारा प्रसाद के रूप में प्राप्त पेट अथवा शरीर की सेवा कर रहा हूँ तो ममता नहीं जागेगी। फिर तुम्हारे द्वारा पेट पालने के लिए अनैतिक कार्य नहीं होंगे। मन मलीन नहीं होगा। मन ममता से मुक्त रहेगा। यदि मन में ममता नहीं होगी तो मन शुद्ध होगा। क्योंकि ममता जाग्रत होते ही मन चंचल हो जाता है। वह सोचने लगता है कि क्या करूँ कि मैं सुखी रहूँ। भले ही औरों को दुख हो पर अपना पेट, अपना शरीर आबाद रहे। फिर लोभ और मोह दोनों सताने लगते हैं। जो पास में नहीं है या कम है, उसे प्राप्त करने के लिए कर्म कुकर्म सब कुछ करने तो तैयार हो जाते हो। परिणाम स्वरूप पाप बढ़ता है। बुद्धि भ्रष्ट होती है। तुम भगवान को भूल कर संसार की याद करने लगते हो। माया जकड़ लेती है। आत्मा-परमात्मा का ज्ञान अंधकार में डूब जाता है। चारो ओर अँधेरा छा जाता है। देखंते हुए भी तुम कुछ नहीं देख पाते। अपना-अपना रटते समय बीत जाता है। और एक दिन तुम्हारी अंतिम घड़ी आ जाती है। तुम मर जाते.हो और फिर तुम्हें बार-बार जन्म लेना पड़ता है।

हे आत्मा ! यह सब पक्का न मानने का ही खेल है। जानते तो तुम सब हो; क्या अच्छा है- क्या बुरा है, पर मानते नहीं हो। बुद्धि जानती है कि जप, तप, ध्यान आदि अच्छी बात है उसका पालन करना चाहिए। परन्तु तुम मानते नहीं हो। ऐसा क्यों होता है ? क्योंकिं तुम बुद्धि नहीं हो। बुद्धि तुम्हारे उपयोग के लिए है। तुम आत्मा हो। बुद्धि के मानने या जानने से कुछ नहीं होता, जब तक कि आत्मा न जाने, जब तक कि

आत्मा न माने। तो आत्मा कैसे जानेगी कि क्या अच्छा है क्या बुरा है, क्या करना चाहिए, क्या नही करना चाहिए, कौन अपना है कौन पराया है, क्या सत है क्या असत है, क्या नश्वर है क्या शाश्वत है, कौन आप हो कौन आप नहीं हो, क्या संसार है क्या ब्रम्हलोक है, क्या परमात्मा है क्या आत्मा है ? इन सभी प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए तुम्हें अपने शरीर से अलग हो कर देखना होगा। तुम अपने देह के द्रष्टा हो। शरीर की आँख से देखने वाले, शरीर के कान से सुनने वाले, शरीर के नाक से सूघने वाले, शरीर के जीभ से स्वाद लेने वाले, शरीर की त्वचा से स्पर्श का अनुभव करने वाले, शरीर के गुदा से मल त्याग करने वाले तथा शरीर के उपस्थ से संतानोत्पत्ति करने वाले इस शरीर के तुम द्रष्टा हो। परमात्मा के अंश तुम आत्मा हो। जिस दिन तुम इस सत्य हो पहचान लोगे, जिस दिन तुम इस सत्य को जान लोगे, जिस दिन तुम्हें पक्का विश्वास हो जायेगा, उस दिन तुम्हारा सारा भ्रम दूर हो जायेगा। क्योंकि अभी तुम बुद्धि से जानते हो जो खुद प्रकृति से उत्पन्न है, जो खुद में नश्वर है। अतः तुम मान नहीं पाते हो। तुम अपने मूल पथ से अलग हो जाते हो। क्योंकि तुम अपने को बुद्धि मानते हो। तुम्हारा सारा कार्य-व्यवहार बुद्धि से चलता है। चूँकि बुद्धि स्थिर नहीं रहती, बुद्धि स्वयं में पूर्ण नहीं रहती इसलिए तुम्हारे सारे संकल्प-विकल्प भी स्थिर नहीं रहते, सदा अपूर्ण रहते हैं। तुम्हारा सारा जानना एक ढोंग हो जाता है। तुम्हारा जानना नश्वरता पर निर्भर है। नश्वर से शाश्वत कैसे जाना जा सकता है। इसलिए जब तुम्हें आत्मज्ञान हो जायेगा- तुम एक आत्मा हो, ऐसा पक्का विश्वास हो जायेगा- तब तुम जो भी जानोगे, तब तुम जो भी मानोगे वह स्थिर होगा। तब पर-सेवा तुम्हें अपना सच्चा कार्य लगने लगेगा। तब परिवार का सदस्य ही ईश्वर रूप दीखने लगेगा। तब जप, तप और ध्यान के रहस्य को तुम जान पाओगे। इसलिए तुम केवल बुद्धि से ही नही आत्मा से भी जानो, आत्मा से भी मानो। तुम परसेवा को आत्म साथ करो। जिस दिन तुम आत्मा से जानोगे, आत्मा से मानोगे उस दिन तुम्हारी सारी उलझनें नष्ट हो जायेंगी, उस दिन पर-सेवा ही तुम्हारा कार्य हो जायेगा। तुम्हें पर -सेवा में ही सारा सुख मिलने लगेगा। फिर तो सत्य तुम्हारे सामने प्रगट हो जायेगा।

हे आत्मा ! तुम्हारा सारा सुख-दुख बुद्धि पर निर्भर है। तुम आत्मा को अपने सुख-दुख का कारण मानते ही नहीं। तुम किसी काम की सफलता और असफलता का अनुभव बुद्धि से करते हो। चूँकि बुद्धिं नश्वर है अतः कार्य में सफलता मिलने पर तुम सुखी होते हो और असफलता मिलने पर दुखी होते हो। यदि तुम अपने को आत्मा जानो और संपूर्ण कार्य प्रकृति के द्वारा ही होने वाला जानो तो सफलता और असफलता का प्रश्न ही

न उठे। क्योंकि सफलता और असफलता दोनों ही कार्य के परिणाम हैं। इनसे सुख-दुख या कार्य का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। कोई भी कार्य अपने में खुद पूर्ण है। उसे सफलता या असफलता से कोई लेना-देना नहीं है। आत्मा दोनों ही स्थितियों से दूर सदा सम रहता है। इसलिए वह सुख और दुख से परे रहता है। परन्तु बुद्धि सफलता और असफलता को सम नहीं मानती। उसे सफलता और असफलता में अलग-अलग दो परिणाम नजर आते हैं। इसलिए असफल होने पर बुद्धि दुखी होती है और सफल होने पर सुखी होती है। लेकिन आत्मा के लिए सब कुछ बराबर है। वह अनुकूलता और प्रतिकूलता में कोई भेद नहीं करता। उसे शीत और उष्ण में सदा सम अनुभूति होती है। उसे अनुकुलता और प्रतिकूलता परमात्मा द्वारा दिये गये आशीर्वाद प्रतीत होते हैं। वह हर हाल में खुश रहता हैं। क्योंकि सभी हाल उसके अपने हैं। सभी परिस्थितियाँ, सभी वस्तुएँ सभी व्यक्ति उसके अपने ही हैं। सारा संसार उसका अपना है। फिर किसी के द्वारा दुख देने पर उसे दुख का अनुभव नहीं होता। कहीं अपनों से भी दुख होता है। जैसे नन्हें बालक की हर हरकत माता-पिता को आनन्द देती है वैसे ही आत्मा को संसार के हर कार्य आनन्ददायक प्रतीत होते हैं और आत्मा परमानन्द में डूबा रहता है।

इसलिए हे आत्मा! तुम अपने स्वधर्म को पहचानो। तुम उस का ही आश्रय लो। तुम्हारे सारे भय और भ्रम दूर हो जायेंगे। तुम निश्चिन्त और निर्भय हो जाओगे। तुम्हें किसी भी परिस्थिति से परहेज नहीं होगा। तुम द्वन्द रहित जीवन जी सकोगे। भय तो अज्ञानता में है, अधर्म में है, अन्याय में है। इसलिए पहले अज्ञानता दूर करो। तुम अपने को पहचानो। अपने को पहचानना ही धर्म है। जिसने स्वयं को पहचान लिया; जानो उसने परमात्मा को पहचान लिया। तुम अपने स्व की स्थिति में जाओ। स्व में ही स्वभाव है और स्वभाव से ही संसार है। संसार से स्वभाव नहीं है। इसलिए तुम अपने स्वभाव (स्व-भाव) के अनुकूल कार्य करो। ऐसा होने से तुम्हारा सारा कार्य कर्मयोग बन जायेगा। भय मिट जायेगा। सुख-दुख दूर हो जायेंगे। अनूकूल और प्रतिकूल परिस्थितियाँ तुम्हारी अपनी हो जायेंगी। क्योंकि स्वभाव में बहुत गहराई है। उसमें सारा संसार समाहित हो जाता है। जैसे माता के आँचल में ममता की इतनी गहराई होती है कि उसका पार नहीं पाया जा सकता वैसे ही स्वभाव में इतनी गहराई होती है कि कहीं भेद ही नजर नहीं आता। दूसरे का दुख अपना हो जाता है। दूसरे के सुख में अपना सुख दीखता है। दूसरे का आनन्द अपना आनन्द हो जाता है। यही परमानन्द है। इसे ही पाने के लिए योगी जन निरन्तर योग करते रहते हैं।

हे आत्मा ! जब तुमने शरीर धारण किया था तब तुम्हारे पास कुछ नहीं था; और जब तुम शरीर छोड़ोगे तब भी तुम्हारे पास कुछ नहीं होगा। इस बीच की अवधि में जो कुछ तुम्हारे पास है; जिसे तुम अज्ञानवश अपना कहते हो; वह भी नष्ट हो रहा है, वह भी तुमसे बिछुड़ रहा है। यह स्थिति इतनी स्पष्ट है कि कोई अंधा भी इसे देख सकता है, कोई बहरा भी इसका अनुभव कर सकता है। पर तुम इतने अंधे हो, इतने बहरे हो , इतने अज्ञानी हो कि इस प्रत्यक्ष सत्य को भी नहीं देख पा रहे हो। और तुम इन्हीं के मोह में पड़ कर दूर्षित हो रहे हो। लोभ ने तुम्हें दूषित कर दिया हैं। लोभ ने तुम्हें वस्तुओं से संयोग कराया है। लोभ ने तुम्हें ममता में फसाया है और लोभ ने ही तुम्हें वस्तुओं के संग्रह का चसका लगाया है। कहने का तात्पर्य यह है ।क तुम अनेक प्रकार के दोषों से दूषित हो गये हो। संसार के सारे सुख तुम्हें किसी न किसी दोष से मिले हैं। सांसारिक सुख के लालच में तुम धीरे-धीरे दोषों को ग्रहण करते गये हो और देखते ही देखते तुम दोषों के पुतले हो गये हो। अगर तुम सांसारिक सुख न चाहते तो दोष तुम्हें छू भी न पाता। तुम जीवन भर दोष दूँढते रहते हो क्योंकि तुम्हारी दृष्टि में किसी भी दोष के पीछे कोई न कोई एक सांसारिक सुख छिपा है। तुम उस सुख की लालच में दोष ग्रहण कर दुख भोगते हो। क्योंकि कोई भी दोष कभी सुख दे ही नहीं सकता। दुख भोग कर जिन वस्तुओं को तुमने ग्रहण किया है वे वस्तएँ जब तुम्हारें पास नहीं थी तब भी जीवन चल रहा था। और हो सकता है कि वे वस्तुएँ किसी कारण वस तुमसे बिछुड़ जाय, तुम्हारे पास न रहें - जैसे कि चोरी चला जाय, या नष्ट हो जाय या कोई माँग ले - तो भी जीवन चलेगा। अर्थात् उस वस्तु के तुम्हारे पास रहने या न रहने से तुम्हारे जीवन लीला पर कोई असर नहीं पड़ता। इससे सिद्ध हुआ कि जीवन चलाने के लिए बाहरी तमाम वस्तुओं की आवश्यकता नहीं है। एक बात और; यदि वस्तुएँ तुम्हारे पास नहीं हैं तो उसका दुख नहीं होता या कम होता है। परन्तु यदि वस्तुएँ तुम्हारे पास हैं और होने के बाद तुमसे बिछुड़ जाँय तो उसके बिछुड़ जाने का दुख बहुत अधिक होता है। तात्पर्य है कि वस्तुओं का न होना उन वस्तुओं के होने के बाद बिछुड़ जाने से ज्यादा हितकर है। इस प्रकार तमाम वस्तुओं को इकट्ठा करके तुमने अपने आत्मा को सुख से बंचित किया है। तुमने उन वंस्तुओं के लोभ में अपने स्वयं को दफना दिया है। तुमने संसार के अंधकार में अपने को डूबा दिया है। तुम्हें माया ने घेर लिया है। अतः तुम अपने को व्यक्तियों, वस्तुओं और परिस्थितयों के मोह से दूर करो। ये तुम्हें सुख नहीं दे सकते। तुम अपने आत्म-ज्योति को जलाओ; वहीं तुम्हें आत्म-सुख मिलेगा।

हे आत्मा ! यदि संसार में तुम्हें दुख भी मिले तो उसे भगवान का आशीर्वाद

जानकर ग्रहण करो। उसके प्रति बैर मत रखो। क्योंकि बैर-भाव से किये गये कर्म सदा दूषित होते हैं। जो कालान्तर में तुम्हारे दुख के कारण होते हैं। तुम्हें पता है कि भाव और कर्म के अनुसार ही व्यक्ति का पुनर्जन्म होता है। कुकर्मी आत्माएँ जन्म-जन्मान्तर तक प्रायश्चित स्वरूप नीच योनियों में जन्म लेते हैं। उन्हें अनेक प्रकार से दुख भोगना पड़ता है। इसलिए तुम मन को मैला मत करो। भावना शुद्ध रखो। सदा सतकर्म करो। वरना आज नहीं तो कल जरूर पछताओगे। दूषित मन, दूषित बुद्धि और दूषित भाव कभी दूसरे का भला नहीं कर सकते। ये हमेशा दूसरों के अनभल में ही लगे रहते हैं। ये सदा अपने को अच्छा और दूसरों को बुरा मानते हैं। इन्हें अपना दोष नहीं दिखता। ये संसार का दोष देखने में ही अपना सारा समय गवा देते हैं। इनके अन्दर अभिमान और पर-दोष गुण साथ-साथ रहते हैं। इसलिए हे आत्मा ! तुम इनसे सदा सजग रहो। क्षणंभर के लिए भी अपनी आँखें बन्द मत करो। वरना ये मन, बुद्धि और भाव तुम्हें अज्ञान की खाँई में गिरा देंगे। अज्ञान की खाँई बहुत गहरी होती है। उसमें यदि तुम गिर गये तो निकल नहीं सकते। क्योंकि उसमें तुम्हें अपना दोष नहीं दिखेगा। तुम पाप पर पाप करते जाओगे और अन्त में अधम गति को प्राप्त होगे।

हे आत्मा ! तुम ज्ञान रूप परमात्मा के स्वरूप हो। अज्ञान तुम्हारा स्वरूप नहीं है। तुम अज्ञानी मत बनो। यदि अज्ञान का पर्दा तम्हारे ज्ञान पर पड़ गया तो अधर्म धर्म का रूप धारण कर तुम्हारे समक्ष उपस्थित हो जायेगा। बुराई अच्छाई का रूप लिए तुम्हें निरन्तर छलती रहेगी। दुष्कर्म सतकर्म रूप दीखेंगे। तुम्हें अच्छाई और बुराई में; कर्म और अकर्म में, धर्म और अधर्म में भेद करना कठिन हो जायेगा। तुम कुकर्म के रास्ते चलते जाओगे परन्तु सोचते रहोगे कि मैं अच्छा कर रहा हूँ। मुझसे अच्छा और श्रेष्ट कार्य कोई कर ही नहीं सकता। दुनियाँ गलत हो सकती है परन्तु मैं कभी गलत नहीं हो सकता। सारा संसार मूर्ख है। मुझसे बड़ा संसार में कोई ज्ञानी नहीं है। मैं जो कुछ भी कर रहा हूँ वही पुण्य है ; बाकी सारा संसार पापी है। मुझे छोड़ कर एक दिन सभी नर्क में जायेंगे ...। इस प्रकार कई रूप धारण कर अभिमान तुम्हें फसाता है। इस अभिमान में फसे तुम पागल हो जाते हो। बड़ा कठिन होता है इस अभिमान रूपी दोष से निकलना। अधर्म यदि धर्म का रूप धारण कर सामने आ जाय तो कैसे पहचान सकोगे ? अभिमान यदि आत्माभिमान का रूप ले ले तो कैसे जानोगे ? इसलिए तुम्हें अपने ज्ञान चक्षुओं को खोलना होगा। तुम्हें वास्तविक कर्म को पहचानना होगा। तुम धर्म के जिस अभिमान में डूबे हो कहीं वह अधर्म का रास्ता तो नहीं है, कहीं असत ही सत का रूप तो नहीं ले लिया हैं, कहीं बुराई ही अच्छाई बनकर

सामने तो नहीं खड़ी है, कहीं तुम सौन्दर्य के बहाने मोहित तो नहीं हो रहे हो, कहीं तुम धर्म के बहाने छल कपट तो नहीं कर रहे हो, कहीं धर्म के प्रति तुम्हारी कट्टरता तुम्हारा अपना बाधक तो नहीं हो रही है, कहीं तुम्हारा अपनों के प्रति मोह ही तुम्हारे लिए खाँई तो नहीं बन रहा है - इन सब को पहचानना बड़ा कठिन है। परन्तु हे आत्मा ! इन सब को पहचानना होगा। वरना तुम जीवन भर अधर्म, असत और बुराई के रास्ते पर ही चलते रहोगे और इन्हें अभिमान में तुम पहचान भी नहीं सकोगे। यदि अभिमान में चूर तुम अपनी बुराइयों को नहीं पहचान सके तो उलटे अपनी बुराई ही तुम्हें अच्छाई नजर आयेगी। इसलिए तुम्हें सदा सजग रहना है। तुम्हें अपने स्वयं को ठगना नहीं है । तुम्हें असत को असत ही मानना है। कभी असत को सत समझने की कोशिश नहीं करनी है। तुम्हें अपने आत्म प्रकाश को जलाना है, सत असत को पहचानना है, धर्म अधर्म को जानना है और अच्छाई तथा बुराई के भेद को मानना है।

हे आत्मा ! संसार परिवर्तनशील है। उसमें निरंतर परिवर्तन होता रहता है। जिस व्यक्ति या वस्तु को तुमने एक क्षण पहले देखा है उसे दूसरे क्षण में तुम वैसा ही नहीं देख सकते। फिर भी हम अनुकूलता और प्रतिकूलता में फसते हैं। तुम अनुकूलता को भोग में गवां देते हो और प्रतिकूलता में रोने लगते हो। तुम्हारा जन्म भोग भोगने के लिए नहीं हुआ है। मनुष्य योनि तुम्हें भोग भोगने के लिए नहीं मिली है। यह तो कर्म योनि है। यहाँ सतकर्म करके ही तुम परम गति को प्राप्त कर सकते हो। सतकर्म करते हुए भी तुम्हारे जीवन में अनुकूलता और प्रतिकूलता दोनों आते हैं। जैसे अच्छा कर्म करते हुए यदि कभी तुम्हें अच्छा व्यक्ति, सहयोगी व्यक्ति मिल सकता है तो कभी बुरा व्यक्ति या असहयोगी व्यक्ति भी मिल सकता है। हे आत्मा, तुम्हारे जीवन में चाहे अनुकूलता का प्रादुर्भाव हो या प्रतिकूलता का, तुम्हें हर हालत में उसका सदुपयोग करना है। परन्तु तुम स्वार्थी मानव अनुकूल व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति के मिलने पर उसका उपभोग करने लगते हो। तुम्हें जो मिला है उससे कुछ चाहते हो तथा और मिल जाय इसकी कामना करते हो। परिस्थिति का उपभोग ही नहीं करते उसका दुरुपयोग भी करते हो। ऐसी स्थिति में तुम अनकूलता का सुख नहीं ले पाते क्योंकि तुम्हारी शक्ति अनुकूलता की माँग में खर्च हो जाती है। इसी प्रकार प्रतिकूलता की प्राप्ति में तुम दुखी रहते हो। प्रतिकूल व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति के मिलने पर तुम उसका उपयोग नहीं करते और दुखी होतें हो। यदि तुम सही माने में उसका सदुपयोग करो तो तुम्हें दुखी न होना पड़े। जैसे, न चाहते हुए भी कभी-कभी अन-चाहा व्यक्ति तुमसे मिल जाता है, तुम उसे देख कर उसके प्रति क्रोध, घृणा या बैर का

भाव प्रगट करते हो। और उस व्यक्ति के साथ-साथ तुम खुद भी दुखी होते हो। सच तो यह है कि ऐसे व्यक्ति से मिल कर भी तुम्हारे मन में उसके प्रति बुरी भावना नहीं उठनी चाहिए। ऐसी परिस्थिति में तुम्हें भगवान को धन्यवाद देना चाहिए कि ऐसे प्रतिकूल (अनचाहा) व्यक्ति से मुलाकात हुई। आज मैं इससे मिलकर इसकी सारी गलतफहमी दूर करूँगा और इसके प्रति हर हालत में मानवता का व्यवहार करूँगा। चाहे भले ही यह मुझे गाली दे पर मैं इससे प्रेम करूँगा। इस प्रकार व्यवहार करके तुम विपरीत परिस्थिति में भी आनन्दित रह सकते हो।

हे आत्मा ! यदि प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती हैं या प्रतिकूल वस्तु या व्यक्ति तुमसे मिलते हैं तो उससे तुम मत घबराओ। उसे तुम धैर्य पूर्वक सहो। तुम मानो कि यह हमारे द्वारा ही किये गये कर्मों का फल है। इस फल का मुझे हृदय से स्वागत करना है। यह भगवान का वरदान है। यदि आज यह आया है तो कल चला जायेगा। संसार में कोई व्यक्ति या वस्तु अथवा परिस्थिति सदा तो नहीं रहते। उसे एक न एक दिन अवश्य जाना पड़ता है। इसलिए यह भी एक दिन नहीं रहेगा। ऐसा सोचने से उस व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति के प्रति तुम्हारे मन में घृणा, क्रोध या बैर उत्पन्न नहीं होगा। बल्कि तुम उससे समझौता करने लगोगे। और उस विपरीत परिस्थिति में भी तुम्हें जीने का आनन्द आने लगेगा। तुम्हारे मन में अनुकूलता के प्रति न ही मोह होगा और नहीं प्रतिकूलता के प्रति घृणा होगी। हर स्थिति में तुम सम रहोगे। तुम्हारे मन में न राग होगा न द्वेष होगा। दोनों ही परिस्थितियाँ तुम्हें ईश्वर का वरदान प्रतीत होंगी।

हे आत्मा ! प्रारब्ध कर्मों का फल तो तुम्हें भोगना ही है। उसे तुम बदल नहीं सकते। चूँकि ये फल पक चुके हैं अतः ये तो तुम्हारे सर पर गिरेंगे ही। संचित कर्म फलों को तुम भले ही अपने सतकर्मों द्वारा परिवर्तित कर लो परन्तु प्रारब्ध फल तो तुम्हारे सामने आयेंगे ही। ऐसी स्थिति में तुम भगवान से प्रार्थना करो कि हे भगवान ! तुम मुझे ऐसे फलों को सहने की शक्ति देना। तुम मुझे इतनी हिम्मत देना कि प्रारब्ध फलों को मैं हँसते-हँसते सह सकूँ। आपके चरणों में निरन्तर मेरा प्रेम बना रहे। मैं कभी विपरीत परिस्थिति में भी अपने पथ से विचलित न होऊँ। हे भगवान ! आपके द्वारा ऐसा फल पाकर मैं धन्य हो गया हूँ। मैं जाग गया हूँ। अब भविष्य में फिर कभी बुरे कर्म हमारे द्वारा नहीं होंगे। अब हमारी बिगड़ी बन जायेगी। हमारा कल सुधर जायेगा। तुम सर्वशक्तिमान हो। तुम मुझे वह शक्ति दो जिससे मैं आने वाली किसी भी कठिनाई को सह सकूँ। कोई भी परिस्थिति मेरे मन को तुम

विचलित न कर सके। चाहे परिस्थिति अनुकूल हो या प्रतिकूल, चाहे फल सुखकर हो या दुखकर, हर स्थिति में तुम मुझे सदा प्रसन्न रखना। किसी भी स्थिति में मैं तुमसे विमुख न होऊँ, ऐसी कृपा मुझ पर सदा करना। मेरे सर से कभी भी अपनी करुणा तथा दया का हाथ मत हटाना। आपके श्री चरणों में सदा मेरी प्रीति बनी रहे- ऐसी कृपा सदा बनाये रखना। इस प्रकार ईश्वर के प्रति सच्ची भक्ति से तुम्हारे भीतर उस परिस्थिति के झंझावात से लड़ने की शक्ति आ जायेगी। तुम प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थिति में भी आनन्द से जी सकोगे।

हे आत्मा ! तुम भगवान के अस्तित्व को, उनके गुणों को जानने के साथ-साथ मानने का भी प्रयत्न करो। उसे अपने जीवन में अमल करो। परमात्म गुणों से तुम दूर मत हो। तुम्हारे दुख का कारण परमात्मा के गुणों से दूर होना ही है। सुख और आनन्द परमात्मा के गुण हैं। परन्तु तुम उसे संसार में ढूँढते हो। तुम आशा करते हो कि यह काम कर लूँ तो सुख मिले, वह काम कर लूँ तो सुख मिले; परन्तु तुम्हें सुख नहीं मिलता। तुम दिन रात सुख की खोज में भटकते रहते हो। तुम सुख को अपने अन्दर नहीं बाहर ढूँढते हो। इसी कारण तुम्हें सच्चा सुख नहीं मिलता। बाहर तो नश्वर जगत है। बाहर तो नश्वर जगत की नश्वर वस्तुएँ हैं। नश्वर वस्तुएँ तुम्हें सुख कैसे दे सकती हैं। वे तो तुम्हें दुख ही देंगी। उनके भीतर सुख प्रदान करने की सामर्थ्य है ही नहीं। सुख तो भीतर है। तुम्हें अपने भीतर ही सुख को ढूँढना होगा। जैसे कोई बीमार व्यक्ति कड़वी दवा जब मन से खाता है तो उसे वह दवा कड़वी नहीं लगती। यदि कड़वी लगे तो भी भीतर एक सुख होता है कि मेरा रोग ठीक हो जायेगा। मैं स्वस्थ्य हो जाऊँगा। दवा कड़वी होते हुए भी रोगी उस दवा को नियम से खाता है। तो सुख उस दवा में नहीं है। सुख है ठीक हो जाने की भावना में। और भावना बाहर नहीं तुम्हारे भीतर है। तात्पर्य है कि सुख के लिए तुम अपनी मनोभावना को बदलो। बाहर की इच्छा का त्याग करो। और अन्दर की यात्रा शुरू करो। इस यात्रा के बिना तुम्हें सुख, शान्ति या आनन्द की प्राप्ति नहीं होगी। क्योंकि संसार नित्य बनने-बिगड़ने का नाम है। जहाँ नित्य मिलना और बिछुड़ना होता है। इस प्रकार संसार में स्थाईत्व नहीं है। जहाँ स्थिरता नहीं है वहाँ सुख कैसे हो सकता है। सुख सदा स्थिरता में स्थित होता है, अस्थिरता या चंचलता में नहीं।

हे आत्मा ! सुख हो या दुख, दोनों ही भोग हैं। संसार में मानव सुख-दुख भोगता है। इसलिए मृत्यु उपरान्त उसे भोग योनि की प्राप्ति होती है। परिणाम स्वरूप उसे स्वर्ग या नर्क में जाना पड़ता है। इस प्रकार उस व्यक्ति की मुक्ति नहीं होती। इसलिए हे आत्मा !

तुम सुख-दुख भोग कर अपना वास्तविक स्वभाव नष्ट मत करो। तुम अपने आनन्द स्वरूप को भोगी मत बनाओ। भोग दुख का कारण है। क्यों कि भोग में अनुकूलता और प्रतिकूलता का प्रभाव होता है। भोग कभी सुखकर होता है तो कभी दुखकर होता है। तदनुसार तुम सुखी या दुखी होते हो। इस सुख-दुख के खेल में तुम अपने आनन्द स्वरूप को भूल जाते हो। तुम्हें पता ही नहीं चलता की भोग का सम्बन्ध संसार से है। संसार में परिस्थितियाँ आती जाती रहती हैं। व्यक्तियों और वस्तुओं से सम्बन्ध बनते-बिगड़ते रहते हैं। इस कारण संसार में स्थिरता नहीं है। फिर भी तुम उसे पाने के लिए सदा दौड़ लगाते रहते हो। इस भाग दौड़ के कारण ही तुम दुखी होते हो। अतः तुम भाग दौड़ के जीवन का त्याग कर स्थिरता का जीवन जीओ। एकान्त वास करो। ध्यान में लीन हो जाओ। यही सच्चा पुरुषार्थ है जिससे तुम आत्मानन्द प्राप्त कर सकते हो।

आत्मोद्गार

(एक चिन्तन)

।। भाग तीन ।।

॥ भाग - तीन ॥

हे आत्मा ! अब तो तुम्हारे इस शरीर की तीसरी अवस्था आ चुकी है। अब तो तुम इससे मोह करना बन्द करो। अब तो तुम इससे उत्पन्न होने वाले इच्छाओं का त्याग करो। इच्छाओं के कारण ही तुम्हारे भीतर अनेक प्रकार की कामनायें जन्म लेती हैं। इन इच्छाओं के कारण ही तुम्हारे भीतर अपना-पराया, राग-द्वेष, काम-क्रोध और लोभ-मोह की उत्पत्ति होती है। समय आने पर यही भावनायें तुम्हारे विनाश का कारण होती हैं। इसलिए हे आत्मा ! तुम अपने बाहर और भीतर समता का राज्य स्थापित करो। संसार को परमात्मा का रूप जानो। परमात्मा संसार के कण-कण में विराजमान है। ऐसी पवित्र भावना को धारण करो। फिर विश्व में तुम्हें कहीं कोई पराया नहीं दीखेगा। सभी अपने प्रिय हो जायेंगे। तुम्हारे अन्तर-मन के द्वन्द समाप्त हो जायेंगे। तुम्हें फिर न किसी से दुख होगा और न ही किसी से सुख होगा। तुम किसी की निन्दा नहीं करोगे। सफलता या असफलता पर तुम्हें दुख नहीं होगा। तुम्हारे भीतर से हर्ष और शोक मिट जायेगा। हर स्थिति में तुम आनन्दित रहोगे। तुमको एक अलौकिक शान्ति का अनुभव होगा।

इसलिए हे आत्मा ! तुम अपने विवेक को जाग्रत करो। विवेक से ही तुम्हारा उद्धार होगा। विवेक से तुम संसार को ही नहीं भगवान को भी बस में कर सकते हो। विवेक से ही तुम्हें कर्म-अकर्म, पाप-पूण्य आदि द्वन्दों का भेद समझ में आयेगा। विवेक से ही तुम्हें ज्ञात होगा कि नश्वर भोग और नश्वर संग्रह व्यर्थ हैं। भोग पशुता का लक्षण है और संग्रह एक आसुरी प्रवृत्ति है। ये दोनों कर्म तुम्हें पशु बना देंगे। तुम सतकर्म को भूल कर कुकर्मी बन जाओगे। यह भोग वृत्ति तुम्हें लोभी बना देगी और संग्रह वृत्ति से तुम मोही बन जाओगे। दोनों ही दोष तुम्हें संसार के बंधन में बाँध देंगे। तुम्हारा अन्तःकरण भोग और संग्रह का दास बन जायेगा। तुम इनके गुलाम बन जाओगे। तुम्हारा पतन हो जायेगा। इसलिए हे आत्मा ! तुम भोग और संग्रह का त्याग करो। हर परिस्थिति में तुम परमात्मा के साथ जीओ। इसके लिए तुम्हें दृढ़ निश्चय करना होगा कि एक परमात्मा के बिना तुम्हारे उद्धार का और कोई रास्ता नहीं है। भोग और संग्रह संसार के दो ऐसे दलदल हैं जिसमें फसने वाला कभी निकल नहीं सकता। इसलिए हे आत्मा, तुम भोग और संग्रह से बचो।

हे आत्मा ! तुम स्वतंत्र हो। तुम्हें यह अधिकार प्राप्त है कि तुम जो चाहो सो करो। कर्म अच्छा है या बुरा है; इसकी पहचान तुम्हें करनी है। क्या करूँ , क्या न करूँ, इसका निर्णय तुम्हें लेना है। अन्य योनियाँ तो भोग योनियाँ हैं। उन्हें तो पूर्व जन्म में किये गये कर्मो

के फल को भोगना है। वे नया कर्म नहीं कर सकते। वे बाध्य हैं। वे असमर्थ हैं। परन्तु तुम मनुष्य शरीर प्राप्त कर अबाध्य हो। तुम समर्थ हो। तुम कुछ भी करने के लिए आजाद हो। परमात्मा ने तुम्हें, मन, बुद्धि और विवेक देकर पूर्ण बनाया है। तुम्हें मनुष्य शरीर देकर अपना उद्धार करने के लिए इस संसार में भेजा है। तुम्हें पुराने फल को भोगना है और नये कर्म करना है। तुम्हें अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना भी करना है। तुम्हें नये पुरुषार्थ भी करना है। नये कर्म ही तुम्हारे भविष्य की नींव रखेंगे। तुम जैसा कर्म करोगे वैसा फल तुम्हें मिलेगा। ऐसा नहीं है कि कर्म बुरा करो और फल अच्छा मिले या कर्म अच्छा करो और फल बुरा मिले। इस प्रकार देखा जाय तो कर्म और कर्मफल दोनो में तुम स्वतंत्र हो। तुम्हें अच्छा फल पाना है तो अच्छा कर्म करो और बुरा फल पाना है तो बुरा कर्म करो। जिस प्रकार कर्म तुम्हारे हाथ में है उसी प्रकार फल भी तुम्हारे हाथ में है। अब तुम्हें सोचना है कि क्या करूँ और क्या न करूँ। प्रारब्ध कर्मों के अनुरूप अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियाँ आयेंगी। तद्नुसार तुम्हें सुख-दुख का अनुभव भी होगा। क्योंकि परिस्थितियाँ संसार से आती हैं, प्रकृतिगत होती हैं। परन्तु सुखी-दुखी तुम स्वयं में होते हो, अन्दर से होते हो। इन दोनों परिस्थितियों में कोई तालमेल नहीं है। फिर भी अज्ञानता में तुम बाह्य परिस्थितियों से तादात्म्य कर लेते हो और तदानुसार सुखी-दुखी होते हो। अगर तुम परिस्थितियों से तादात्म्य न कर उससे असंग रहो तो ये परिस्थितियाँ तुम्हारे उद्धार का साधन बन जायेंगी। अनुकूल परिस्थितियों में जीव की सेवा करके और प्रतिकूल परिस्थितियों में भगवान की सेवा करके तुम अपना उद्धार कर सकते हो।

हे आत्मा! चाहे जीव की सेवा हो या भगवान की, दोनों ही स्थिति में अन्तः करण में समत्व के प्रति उत्कट प्रेम होता है। भगवान से मिलने के लिए जब प्रेम व्याकुल हो उठे तो समझो कि भगवान से मिलन निश्चित है। जैसे गोपियों के उत्कट प्रेम के समक्ष अनेक विघ्न बाधाएँ आईं परन्तु उन सब को लाँघती हुई गोपियाँ श्री कृष्ण से एकाकार हो गई। उन्हें तमाम कष्ट सुखकर लगने लगे। क्योंकि उन्होने अपने सुख-दुख को भगवान पर अर्पित कर दिया था। इसलिए उन्हें उन कष्टों में भी आनन्द आता था। वे कष्ट उन्हें बाधक नहीं लगते थे बल्कि भगवान के मिलन में एक साधन प्रतीत होते थे। अतः असहनीय कष्ट भी आनन्द-दायक हो गये थे। परन्तु वही प्रेम यदि संसार के लिए होता, जैसा कि संसार में अक्सर देखा जाता है; तो गोपियाँ संसार के मोह में उलझ जाती, माया उन्हें बाँध लेती, वे सुख-दुख को अपना मान लेतीं और तदानुसार सुखी-दुखी होतीं रहती। इसलिए हे आत्मा! तुम कर्मों के फल स्वरूप मिले हुए सुख-दुख को भगवान की प्राप्ति में एक

साधन रूप मानो और सुख-दुख से परे होकर परमपिता परमात्मा के प्रति प्रेम करो।

हे आत्मा ! तुम अपने स्वरूप को पहचानो। तुम एक आत्मा हो। तुम परमपिता परमात्मा के पुत्र स्वरूप पृथ्वी लोक में आये हो। कालान्तर में तुम्हें फिर उसी परमात्मा के धाम में जाना है। इसलिए तुम्हारी सारी यात्रा लोकोत्तर की ओर होनी चाहिए। तुम अपने विवके को जागाओ। संसार की यात्रा को तुम ईश्वरीय यात्रा के रूप में ग्रहण करो। सत - असत का विचार कर सही तरफ कदम बढ़ाओ। कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के प्रति सदा सजग रहो। तुम्हारा यह देही सत है और देह असत है। शरीर जड़ है तुम चेतन हो। इस प्रकार सत-असत, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य आदि का पूर्ण विवेक हो जाना ही ज्ञान का हो जाना है। जिस दिन तुम्हें यह ज्ञान हो जायेगा कि सत-असत क्या है, जड़-चेतन क्या है, कर्त्तव्य - अकर्त्तव्य क्या है, उस दिन तुम ज्ञानी हो जाओगे। उस दिन तुम्हारे अन्दर प्रकाश प्रगट हो जायेगा। फिर शरीर के सुख-दुख में तुम सम रहोगे। तुम बीतरागी हो जाओगे। तुम्हें लोभ और मोह नहीं सतायेंगे। तुम सारे चिन्ताओं से मुक्त हो जाओगे। तुम्हारे जीवन के सारे द्वन्द खत्म हो जायेंगे। तुम जीवित अवस्था में ही मुक्त हो जाओगे। योगी जिस आनन्द के लिए निरन्तर साधनारत रहते हैं उस आनन्द को तुम सहज में ही प्राप्त कर लोगे।

हे आत्मा ! इस संसार को एक परमात्मा के द्वारा ही स्फूर्ति मिलती है। संसार के सारे जीव उसी एक सत्ता से जीवित हैं। उसकी ही विभूति, उसका ही ऐश्वर्य सारे विश्व में परिलक्षित है। उसके बिना संसार की कोई भी वस्तु स्थिर नहीं रह सकती। हे आत्मा ! तुम्हारे भीतर भी वही सत्ता विराजमान है। इसलिए तुम अपने सारे कर्म उसी एक परमात्मा के लिये करो। तुम सदा याद रखो कि परमात्मा ही मेरे इस शरीर द्वारा सारे कर्म करवाता है। मैं तो एक निमित्त मात्र हूँ। इस प्रकार तुम्हारा लक्ष्य सदा परमात्मा की ओर हो। हे आत्मा ! तुम्हारे मुक्ति का यही एक उपाय है।

हे आत्मा ! ईश्वर कृपा का सागर है। उसकी कृपा का कभी अंत नहीं होता। निरन्तर उसकी कृपा संसार पर बरसती रहती है। विविध रूपों में उसकी कृपा तुम्हारी मदद करती रहती है। उस कृपा के कारण ही तुम्हारे भीतर विलक्षणताएँ आती हैं। वह संपूर्ण ब्रह्मांड का मालिक है। उसके एक-एक अंश में अनन्त ब्रह्मांड विराजमान है। ऐसे सर्वशक्तिमान परमात्मा की कृपा प्राप्त करने वाले तुम अज्ञानता के कारण मोह रूपी दलदल में क्यों फसते हो ? क्यों तुम अपने को नहीं पहचानते ? संसार तुम्हें क्यों अच्छा लगता है ? क्या मिलता है तुम्हें संसार से मोह करके ? नश्वरता के पीछे तुम

क्यों दौड़ते हो ? कभी सोचा है तुमने कि तुम किस पिता के पुत्र हो ? तुम्हारा पिता परम कृपालु, परम दयालु और परम करुणालय है। वह तुम्हारी संपूर्ण जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लेता है। वही तुम्हारा उद्धार कर्ता है। केवल उसे ही मालूम है कि तुम्हारा कैसे उद्धार होगा। क्योंकि वह संपूर्ण संसार का दृष्टा है। वह तुम्हारे भी हर कर्म को देखता है। तुम सदा यह याद रखो कि वह तुम्हें देख रहा है। उसके बिना तुम आँख नहीं झपका सकते। उसके बिना तुम एक कदम भी नहीं चल सकते। उसके बिना तुम्हारा कोई अस्तित्व नहीं है। इसलिए हे आत्मा ! तुम अपने को उसी पर अर्पित कर दो।

हे आत्मा ! ज्ञानियों के लिए यह संसार परमात्म स्वरूप है। जैसे एक स्त्री अपने बालक के लिए माँ है, पिता के लिए पुत्री है, पति के लिए स्त्री है, वैसे ही यह संसार भी साधारण प्राणियों के लिए सच्चा, ज्ञानियों के लिए झूठा, तत्व-दर्शियों के लिए परिवर्तनशील, भक्तों के लिए भगवत-स्वरूप और कर्मयोगियों के लिए कर्म स्थल रूप है। वास्तव में तो यह संसार ईश्वर की विभूतियों का भंडार है। परन्तु भोग दृष्टि वालों को भोग स्थल दीखता है। इसलिए हे आत्मा ! दोष तो तुम्हारी दृष्टि में है, तुम्हारी सोच में है। तुम्हारी सोच अगर नीच है तो संसार तुम्हें माया लगेगा, दलदल दीखेगा। और अगर तुम्हारी सोच ऊँची है, दृष्टि निर्मल है, स्वच्छ है, दिव्य है तो संसार विराट भगवान का विराट कर्म स्थल दीखेगा। तुम्हें देखना है कि तुम्हारी दृष्टि कैसी है - ऊँच है, स्वच्छ है, निर्मल है या नीच है, गंदा है। तुम्हें आत्म चिन्तन की आवश्यकता है। तुम मोह रूपी दलदल में न फँस जाओ इसलिए ज्ञान की जरूरत है। तुम अज्ञानी बने संसार में मस्ती करते हो। लोभ और मोह में पूरा जीवन गुजार देते हो। क्या पाऊँ क्या खाऊँ की भावना लिए पशु समान अज्ञानी बने जीवन गुजारते हो। यह कैसी विडम्बना है कि तुम परम ज्ञानी पिता का पुत्र हो कर भी अज्ञानी हो। तुम जागो। अपने यथार्थ को पहचानों। अपने स्वरूप की सत्यता को मानो। फिर ये ही सारे दलदल तुम्हें पावन गंगा जल के समान प्रतीत होगे। जिसमें स्नान कर तुम संसार सागर से पार हो जाओगे।

हे आत्मा ! तुम अपने सारे सांसारिक आकर्षण; जिसके द्वारा तुम इस संसार में बंधे हो; भगवान के श्री चरणों में अर्पित कर दो। स्त्री का आकर्षण, पुरुष का आकर्षण, पुत्र-पुत्री का आकर्षण, परिवार का आकर्षण, धन-धान्य का आकर्षण, मान-सम्मान का आकर्षण आदि नाना प्रकार के आकर्षणों में फसे तुम परमात्मा को भूल गये हो। तुम इन आकर्षणों को ही अपना अस्तित्व मान बैठे हो। तुम अपने को आकर्षण ही मान

बैठे हो। तुम्हें ये आकर्षण ही जीवन लगते हैं। तुम आकर्षण की दुनियाँ में इतने विलीन हो गये हो कि उससे निकलना तुम्हारे लिए असम्भव हो गया है। उससे अलग होने को ही तुम अपनी मौत समझते हो। हे आत्मा! तुम्हें इन आकर्षणों से नाता तोड़ना है। ऐसे आकर्षणों को तुम्हें मिटाना है। ऐसे आकर्षण रूपी बन्धन से तुम्हें मुक्त होना है। लेकिन हे आत्मा! तुम आकर्षणों से लड़ कर जीत नहीं सकते। क्योंकि ये आकर्षण नश्वर होते हुए भी सदा तुम्हारे साथ चलते हैं। एक आकर्षण नष्ट हुआ कि दूसरा आकर्षण तुम्हारे सामने उपस्थित हो जायेगा। तुम छोड़ते जाओगे ये बढ़ते जायेंगे, तुम नष्ट करते जाओगे; ये उत्पन्न होते जायेंगे। क्योंकि प्रकृति सदा परिवर्तनशील है। वह निरन्तर एक रूप छोड़ कर नया रूप लेती रहती है। इसलिए आकर्षणों के नये-नये रूप तुम्हारे सामने आते जायेंगे। तुम कभी इन आकर्षणों से मुक्त नहीं हो पाओगे। मृत्यु पर्यन्त तुम अपने को आकर्षण समझने का भूल करते रहोगे। और अन्त में उसी आकर्षण की आशा लेकर तुम चल बसोगे। इसलिए हे आत्मा! आकर्षणों से मुक्त होने का केवल एक ही उपाय है कि इन आकर्षणों को भगवान का वरदान मान लो। भगवान को वरदान मानने से तुम उन आकर्षणों का सम्मान करने लगोगे। उनके प्रति तुम श्रद्धालु हो जाओगे। तुम उनसे अपने को अलग मानने लगोगे। क्योंकि श्रद्धा हमेशा दूसरों के प्रति होती है। इसलिए इन आकर्षणों को अपने से अलग ईश्वर रूप मान लो। जिससे 'मैं आकर्षण ही हूँ, आकर्षण मेरा है'-यह भ्रम नष्ट हो जायेगा। वह आकर्षण कितना ही गहरा हो पर तुम्हारे अन्दर 'मैं आकर्षण नही हूँ, मैं आकर्षण से अलग हूँ,' यह भाव पक्का हो जायेगा। फिर आकर्षण के प्रति तुम्हारी श्रद्धा जग जायेगी। तुम मानने लगोगे कि भगवान की बड़ी भारी कृपा है जो ये गुण (आकर्षण) मुझे प्रदान किये हैं। मैं इसका सदुपयोग करूँगा। मैं इसका दुरुपयोग नहीं करूँगा। मैं इन गुणों से संसार की सेवा करूँगा। मैं इन गुणों (आकर्षणों) से भगवान का जप, तप, ध्यान आदि करूँगा। इन गुणों को; जो मुझे भगवान से प्राप्त हुए हैं, मैं उन्हें ज्यों का त्यों वापस लौटा दूँगा। इस प्रकार तुम आकर्षणों से युक्त होते हुए भी मुक्त रहोगे। तुम उसे पा कर तब अभिमानी नहीं दयालु बन जाओगे। तुम्हारे ये आकर्षण तब तुम्हारे लिए भगवंत् ऐश्वर्य बन जायेंगे। तुम्हें उन आकर्षणों में भगवत्ता झलकने लगेगी। जिस आकर्षण को प्राप्त कर तुम घमंडी बन गये थे वही तब भगवान की, संसार की सेवा में लगने लगेंगे। जो आकर्षण कल तक तुम्हारे बंधन का कारण बने हुए थे आज वही तुम्हारे मुक्ति का कारण बन जायेंगे और जो आकर्षण पतन का कारण बने हुए थे वे तुम्हारे उत्थान का कारण बन जायेंगे।

इसलिए हे आत्मा ! तुम अपनी भावना को बदलो। जो कुछ वैभव, ऐश्वर्य और श्री तुम्हारे पास है, वह तुम्हारा नहीं है , वह भगवान की करुणा का, उसके आशीर्वाद का फल है, ऐसा जानो। उस ईश्वर की बड़ी कृपा है जो इन गुणों के लिए मुझे चुना, उस ईश्वर की मुझ पर असीम दया है जो मेरे ऊपर अपनी करुणामयी दृष्टि डाली- इस प्रकार से तुम अपने भावना को बदलो। तुम ईश्वर द्वारा दी गई इस सच्चाई को पहचानो। तुम इन गुणों को संसार के सेवार्थ लगाओ। ऐसा उत्तम भाव आते ही तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। आज तक जो-जो गुण तुम्हें इस संसार में डुबाने का कारण बने हुए थे वे सभी तुम्हारे उद्धार के कारण बन जायेंगे। क्योंकि भगवान सद्भाव का भूखा है। तुम एक पग उसकी ओर बढ़ाते हो तो वह सौ पग तुम्हारी ओर बढ़ाता है। उसकी कृपा अपार और असीम है। वह करुणालय, वरुणालय है। वह गुणों का खान है। वह आकर्षण स्वरूप है। संसार के सारे आकर्षण उससे ही उत्पन्न होते हैं। तुम उसके आकर्षणों का भोग मत करो। तुम सदा उसके गुणों का आदर करो। हे आत्मा ! तुम्हारी भूल यह है कि तुम सुख में तो उसकी कृपा मानते हो, उसके गुणों का आदर करते हो, उसके आकर्षणों का सम्मान करते हो, उसके गुणों को प्राप्त कर इठलाते हो, उसका संग कर उससे सुखी होते हो पर दुख में उसे कोसते हो; उसकी शक्ति पर तुम्हें भरोसा नहीं होता, उसकी सत्ता को तुम नकार देते हो। इस प्रकार तुम सुख में उसका उपभोग करते हो। यही भोग तुम्हारे बन्धन का कारण है। क्योंकि भोग वृत्ति ज्ञान को ढक लेती है। तुम्हें सत का ज्ञान नहीं रह जाता और अज्ञान में उन गुणों का अपने ढंग से उपभोग करते हुए तुम पतन को प्राप्त होते हो। परन्तु दुख में तुम इन गुणों पर रोते हो। काश ये गुण मेरे पास नहीं होते तो मैं मदमाता नहीं। मैं अभिमान में पागल नहीं होता। अगर अभिमान में पागल नहीं होता तो ऐसी गलती नहीं होती। ऐसी गलती नहीं होती तो आज यह दुख का दिन देखना नहीं पड़ता। तात्पर्य यह है कि इन गुणों का होना या इन गुणों का न होना, दोनों ही तुम्हारे लिए दुखदायी हैं। क्योंकि तुम इन गुणों से बँध चुके हो। तुम इसके इतने आदी हो गये हो कि ये गुण यदि होते हैं तो दुरुपयोग करते हो और नहीं होते तो रोते हो। हे आत्मा ! यही अज्ञानता है जिसे तुम्हें दूर करना है। जो भी इस सत्य को समझ लेता है उसका उद्धार हो जाता है और जो नहीं समझता वह इस भवसागर में डूब जाता है।

हे आत्मा ! तुम अपनी सोच को अपनी ओर मत मोड़ो वरना चिन्ता तुम्हें जला देगी। तुम चिन्ता में भस्म हो जाओगे। क्योंकि जब सोच अपनी ओर होती है तब वह स्वार्थी हो जाती है। स्वार्थी सोच सदा सोचने वाले को ही नीचे गिराती है। इसलिए तुम

अपनी सोच को संसार की ओर परमार्थ में लगाओ। तब तुम्हारी सोच चिन्ता नहीं चिन्तन हो जायेगी। क्योंकि जब सोच संसार की ओर होती है तो चिन्तन कहलाती है। तुम चिन्तन करो। तुम परमात्मा के ऐश्वर्य का चिन्तन करो। तुम्हें संसार में जहाँ भी विशेषता दीखे उसे भगवान की असीम कृपा मानकर उसका आदर करो। उदाहरण के लिए यदि कोई स्त्री बहुत सुन्दर है तो तुम उसे देखकर मोहित मत होओ। तुम उसे देखकर अपना सुध-बुध मत खोओ। बल्कि उस ईश्वर को धन्यवाद दो कि हे परमात्मा आपकी कोमल सुन्दरता इस स्त्री के रूप में प्रकट हुई है। मैं आप को प्रणाम करता हूँ। और मन ही मन उस स्त्री में ईश्वरत्व का दर्शन करो। इस सोच से उस स्त्री के प्रति तुम्हारे मन में विकार उत्पन्न नहीं होंगे। तुम्हारा मन -मानस प्रेम से भर जायेगा। तुम्हें उस स्त्री में मातृत्व का दर्शन होगा। ऐसे ही किसी सुन्दर वस्तु को देखकर उसे पाने की तुम कामना मत करो। उसे भी तुम ईश्वर का वरदान मानकर उसकी कुशलता के लिए भगवान से प्रार्थना करो। परमात्मा से कहो कि यह जहाँ भी रहे सदा सकुशल और ऐसे ही सुन्दर बना रहे। इसकी सुन्दरता कभी खराब न हो। यह सदा लोगों में आपकी सुन्दरता की याद दिलाती रहे। इस प्रकार की सोच से तुम्हारे मन में लोभ की भावना का नाश हो जायेगा। उसे पाने की तुम्हारी इच्छा समाप्त हो जायेगी। जिससे तुम्हारे मन का व्यर्थ दौड़ रुक जायेगा। इसी प्रकार जहाँ कहीं भी तुम्हें अलौकिकता या कोई विशेषता दीखे, तुम उसके प्रति परमात्मा का ध्यान करो। उसका चिन्तन करो। उसे बार-बार धन्यवाद दो। हे परमात्मा आपकी मुझ पर बहुत कृपा है जो आपने अपनी विभूतियों का दर्शन कराया। इस संसार के कण-कण में परमात्मा विद्यमान है, सारी पृथ्वी परमात्मा से परिपूर्ण है; ऐसा जान कर जो भी वस्तु या व्यक्ति तुम्हें सुन्दर दीखे उसे परमात्मा स्वरूप मानो। तुम उसकी इज्जत करो, उसे सम्मान दो, तथा उसकी कुशलता की कामना करो। इस प्रकार तुम्हारा मन निर्मल हो जायेगा। तुम्हारा कर्म पवित्र होकर कर्मयोग बन जायेगा। तुम्हारी सोच ज्ञानयोग से विभूषित हो जायेगी। इस प्रकार संसार को भगवान समझ कर प्रेम करने से तुम्हें भक्तियोग की प्राप्ति होगी और तुम्हारा मन कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का त्रिवेणी बन जायेगा।

हे आत्मा ! न जाने कब तुम्हारा यह शरीर छूट जाय, कुछ पता नहीं। इसलिए तुम अपने कर्मों को, अपने भावों को, अपने आचरण और स्वभाव को सदा पवित्र रखो। तुम अपने उद्धार के लिए ईश्वरीय सम्पत्ति का आश्रय लो। काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ का त्याग करो। ये विकार तुम्हारे गुण नहीं है। ये प्राकृतिक हैं। इसलिए ये तुम्हारे पतन का कारण हैं। तुम अपने अन्तःकरण को शुद्ध रखो। इन्द्रियों को संयम करो। सबके प्रति

समान व्यवहार रखो। सबसे सरलता से मिलो। खान-पान सदा स्वच्छ और शुद्ध रखो। सदा प्रेम से बोलो। क्रोध कभी न करो। क्रोध में व्यक्ति अंधा हो जाता है। उसका विवेक ढक जाता है। क्या अच्छा है, क्या बुरा है- यह सोचने की शक्ति समाप्त हो जाती है। हित और अहित की सोच खत्म हो जाती है। शरीर बेकाबू हो जाता है। क्रोध में किया गया कार्य क्रोधी के लिए भी दुखदायी होता है। वह अज्ञानी हो जाता है। इसलिए तुम क्रोध मत करो। हिंसा न करो। हिंसा महापाप है। अहिंसा महापूण्य है। मन, वचन और कर्म से तुम अहिंसक बनो। राग-द्वेष, काम क्रोध आदि विकारो को त्यागकर शान्त अन्त:करण वाला बनो। बिना त्याग के व्यक्ति कभी महान नहीं होता। मन में परहित की भावना हो, ईश्वर भक्ति हो, जगत के उद्धार की इच्छा हो तो त्याग में आनन्द आ जाता है। तुम सदा शान्त रहो। चिन्ता कभी न करो। अनावश्यक मत बोलो। किसी की निन्दा मत करो। सदा सत्य बोलो। गैरों के प्रति भी प्रेम करो। मन मैला मत करो। सदा औरों के प्रति कोमल भाव रखो। शास्त्रों के अनुसार आचरण करो। दुर्गुणों का त्याग करो। सतगुणों को ग्रहण करो। सदा उत्तम कार्य करो। उत्तम कार्य से मन शान्त और तेज युक्त होगा। परिस्थितियाँ चाहे अनुकूल हो या प्रतिकूल हो, तुम उसका धैर्य पूर्वक सामना करो। हर परिस्थिति में जीना सीखो। उसे भगवान का वरदान मानकर सहर्ष ग्रहण करो। अन्दर बाहर से सदा शुद्ध रहो। आलसी मत बनो, इससे शरीर दूषित होगा। अपनी बुराईयों को आप देखो। अपना निरीक्षण स्वयं करो। गुण और दोष दोनों तुम्हारे भीतर विद्यमान हैं, तुम्हें इनकी पहचान करनी है। अपने दुर्गुणों को तुम्हें ही दूर करना है। परमात्मा ने तुम्हें विवेक दिया है। तुम ज्ञान रूपी प्रकाश जलाओ। उस प्रकाश में सब कुछ दीखेगा। तुम अवगुणों को छोड़ने में समर्थ हो। तुम दैवी सम्पत्ति के स्वामी हो। उसे तुम पहचानो। उसका सदा आदर करो और अपने जीवन को धन्य बनाओ।

हे आत्मा! तुम सत स्वरूप हो। इसलिए तुम्हें निरन्तर जीने की इच्छा होती है। तुम्हें मरने से भय लगता है। यद्यपि तुम कभी नहीं मरते हो। तुम सदा जीवित रहते हो। तुम्हें प्रकाश अच्छा लगता है। क्योंकि तुम अनन्त प्रकाश लोक के वासी हो। तुम ज्ञान सागर के पुत्र हो। तुम सर्वशक्तिमान के अंश हो। इसलिए तुम महाज्ञानी और महाशक्तिशाली हो। तुम्हारा वास्तविक स्वभाव भी यही है। अवास्तविकता को तो तुम ऊपर से ओढ़े हो। अज्ञानता के कारण तुमने मरण-धर्मा शरीर से तादात्म्य किया है। शरीर को मैं मान कर उसके द्वारा होने वाले कार्य को तुम अपना मान लिये हो। तुम भूल गये हो कि शरीर मैं नहीं हूँ। शरीर तो प्रकृति का अंश है। यह पृथ्वी, जल, अग्नि, गगन और हवा से बना ऐसा तत्व है जो तुम्हें

उपयोग के लिए मिला है। तुम्हारी भूल यह है कि तुम उसका उपयोग न कर उपभोग करते हो। तो, एक तो शरीर को मैं मानना और दूसरा शरीर का उपयोग न कर उपभोग करना, दोनों वृत्तियाँ तुम्हारे स्वभाव के विपरीत हैं। इस भूल के कारण तुम सत स्वरूप होते हुए भी सत को पहचान नहीं पाते। तुम सुख स्वरूप, आनन्द स्वरूप होते हुए भी दुखी रहते हो। तुम निरन्त जीवित रहते हुए भी मरने से डरते हो। तुम शान्त स्वरूप होते हुए भी अशान्त रहते हो।

हे आत्मा ! यह सब दोष तुम्हारा अपना है। ईश्वर ने तो तुम्हें शाश्वत और अजन्मा बनाया है। सत-चित-आनन्द स्वरूप बनाया है। परन्तु तुम जड़ प्रकृति से तादात्म्य कर अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गये हो। तुम शरीर से ज्ञानी बनना चाहते हो, शरीर से ही सुखी होना चाहते हो और शरीर से ही महान बनना चाहते हो। पर शरीर तुम्हें कभी ज्ञानी, सुखी या महान नहीं बना सकता। क्योंकि शरीर खुद में एक जड़ तत्व है। जड़ कैसे ज्ञानी बना सकता है, जड़ कैसे महान बना सकता है। जड़ तो एक न एक दिन नष्ट हो सकता है। जड़ तो मृत्यु की ओर ले जा सकता है। अमरता की ओर तो तुम्हें खुद जाना होगा। ज्ञानी बनने के लिए तुम्हें खुद जागना होगा। महान बनने के लिए तुम्हें खुद प्रयत्न करना होगा। शरीर तुम्हारा माध्यम या उपकरण बन सकता है पर करण तो तुम्हें ही होना होगा। बिना करण के उपकरण क्या कर सकता है। उपकरण में तो नाना- प्रकार के अवगुण होते हैं। जैसे- वह मरण धर्मा है, निरन्तर परिवर्तनशील है, क्षणभंगुर है, अवगुणों की खान है। ऐसे उपकरण का क्या भरोसा। ऐसे उपकरण का उपयोग तो किया जा सकता है पर उसका उपभोग नहीं किया जा सकता। क्योंकि उपभोग करने से तुम उसके प्रति मोहित हो जाते हो। मोहित होने से ही 'मैं शरीर हूँ' यह भाव दृढ़ हो जाता है। ऐसी भावना दृढ़ होते ही तुम्हें अपने शरीर के प्रति अभिमान हो जाता है। तत्पश्चात् सारे अच्छे-बुरे कार्य उस अभिमान की छाया में होते रहते हैं। तुम किसी की सेवा करते हो तो अभिमान से करते हो- मैंने सेवा की। किसी को हानि पहुँचाते हो तो भी अभिमान करते हो- मैंने उसको हानि पहुँचाई। यह अभिमान तुम्हें अपने स्वभाव से दूर ले जाता है। परन्तु तुम सुख-दुख से परे, मान-अपमान से परे, हानि लाभ से परे, कर्ता-अकर्ता स परे सच्चिदानन्द स्वरूप हो। तुम अभिमान कैसे कर सकते हो। तुम किसी को हानि कैसे पहुँचा सकते हो। लेकिन तुम अज्ञानवस नाशवान शरीर से तादात्म्य कर शरीर के गुण धर्म को ही अपना गुण धर्म मान लेते हो, जो तुम्हारे पतन का कारण है।

इसलिए हे आत्मा ! तुम जड़-संग से बचो। जड़ता का संग छोड़ने से तुम्हारे भीतर दैवी शक्तियाँ स्वतः प्रगट होने लगेंगी। क्योंकि जप, तप, सेवा, सत्य और अहिंसा आदि दैवी शक्तियाँ पूर्व से ही तुम्हारे भीतर विद्यमान हैं। उदाहरण के लिए तुम्हारा मूल स्वभाव अहिंसक है। तुम जड़ता के संग से हिंसा को ग्रहरण करते हो। यदि हिंसा छोड़ दो तो जो शेष बचेगा वह अहिंसा ही होगा। जिस प्रकार पानी के ऊपर सैवाल के छा जाने से पानी ढक जाता है। यदि सैवाल को पानी के ऊपर से हटा दिया जाय तो नीचे पानी फिर दीखने लगता है। तुम्हें पानी कहीं से लाना नहीं पड़ता। पानी तो पूर्व से ही विद्यमान है। सिर्फ यात्रा सैवाल को हटाने तक है। उसी प्रकार सत्य, अहिंसा आदि दैविक गुण तुम्हें बाहर से लाना नहीं है। ये तो तुम्हारे भीतर पहले से ही विद्यमान हैं। इनके द्वारा ही तो तुम्हारा अस्तित्व है। जो सदा तुम्हारे भीतर विद्यमान है। परन्तु तुम आसुरी गुणों को ग्रहण करके दैवी गुणों पर पर्दा डाल देते हो। जिस कारण तुम्हें दैवी गुण दिखाई नहीं देते। हे आत्मा ! तुम्हें इस परदे को हटाना है। यदि तुमने इस परदे को हटा दिया तो तुम देवता रूप में प्रगट हो जाओगे। इसलिए तुमने जो माया का पर्दा ओढ़ रखा है, जो आसुरी गुणों को अपना मान बैठे हो, तुमने जो जड़ता का संग कर लिया है उसका त्याग कर दो। तुम उस भ्रम को दूर कर दो। तुम अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानों। तुम अपने ज्ञान चक्षु को खोलो। तुम्हें अपना वास्तविक स्वरूप दिखाई देगा। तुम्हारा वास्तविक स्वरूप बहुत निर्मल है, पवित्र है, सत-चित है और आनन्द स्वरूप है। इसलिए हे आत्मा ! तुम व्यर्थ की जड़ता में मत फसो। जड़ता तुम्हारी चेतना पर एक काला दाग है। जड़ता तुम्हारी चेतना का नाश कर देगा। जिस कारण तुम्हें बार-बार जन्म लेना पड़ेगा, तुम्हें बार-बार नरकीय जीवन भोगना पड़ेगा।

हे आत्मा ! तुम अपनी मुक्ति के लिए अपने दैविक गुणों को पहचानो। दैविक गुणों में ही सुख है, शान्ति है और संतोष है। हे आत्मा ! सुख जड़ता में नहीं है। जड़ता में तो केवल दुख है, बेचैनी है, लाचारी है, लोभ है, मोह-माया है, ममता और कामना है। जड़ता में अगर कुछ नहीं है तो वह सुख नहीं है। जिसे तुम सुख कहते हो वास्तव में वह दुख की शुरूआत है। हे आत्मा ! तुम्हें जड़ता को पाने के लिए बहुत मेहनत करनी पड़ती है। चूँकि ये आसुरी वृत्तियाँ प्रकृति की हैं और प्रकृति में ही विद्यमान रहती हैं। अतः इसे पाने के लिए तुम्हें प्रकृति के साथ संघर्ष करना पड़ता है। इस संघर्ष में कभी तुम हारते हो तो कभी जीतते हो। यदि तुम हार गये तो टूट जाते हो। और यदि तुम जीत गये तो इन आसुरी वृत्तियों के गुलाम हो जाते हो। अर्थात तुम जीतकर भी हार जाते हो। तुम इन आसुरी वृत्तियों से इतना तादात्म्य कर लेते हो कि इसे ही तुम 'मै' समझ लेते हो। और

इसके सुख-दुख को अपना सुख-दुख मान लेते हो। और इसी सुख-दुख के बंधन में फसे तुम अपना सारा जीवन व्यर्थ ही गवा देते हो। परन्तु हे आत्मा! जो अपना है, जो अपने भीतर पूर्व से ही विद्यमान है, उसे प्राप्त करने में कैसी कठिनाई। अपने को पाने में परिश्रम नहीं करना पड़ता। दैवी गुण अपने हैं। उन्हें पाने के लिए परीश्रम की जरूरत नहीं है। उदाहरण के लिए तुम शान्ति और क्रोध को ले सकते हो। शान्ति दैवीगुण है। शान्ति तुम्हारा स्वभाव है। तुम चौबीस घंटे शान्ति में रह सकते हो। क्योंकि शान्ति तुम्हारे भीतर प्रति क्षण विद्यमान है। परन्तु क्रोध जो आसुरी गुण है, उसे बाहर से प्राप्त करना होता है। क्रोध तुम्हारा स्वभाव नहीं हैं। क्रोध तुम्हारे मन मुताबिक कार्य न होने का परिणाम है। यदि तुम्हारे अनुकूल कोई कार्य नहीं होता हैं तो जिसके कारण उस कार्य में बाधा पहुँचती है उसके प्रति तुम्हारे मन में क्रोध उत्पन्न होता है। जिसमें क्रोधी, क्रोधक (जिसके कारण क्रोध आता है) तथा एक विशेष परिस्थिति, ये तीन बातें सम्मिलित होती हैं। इस प्रकार एक कठिन परिस्थिति में क्रोध का प्रादुर्भाव होता है। ये तीनों तत्व प्रकृति के हैं। तुम्हें क्रोध के लिए प्रकृति के साथ संघर्ष करना पड़ता है। परन्तु दैवी गुण शान्ति को प्राप्त करने में तुम्हें कोई कठिनाई नहीं होती। इसी कारण तुम क्रोध मे कुछ मिनट या कुछ घंटे ही रह सकते हो। परन्तु शान्ति में तुम अपना पूरा जीवन व्यतीत कर सकते हो। क्योंकि क्रोध तुम्हारा स्वभाव नहीं है परन्तु शान्ति तुम्हारा स्वभाव है। शान्ति तुम खुद हो। इसलिए हे आत्मा, तुम आसुरी गुणों अर्थात् जड़ता का त्याग कर देवी गुणों अर्थात् अपने स्वभाव को ग्रहण करो। दैवीगुण अपने हैं। इनसे तुम्हें सच्चा सुख, सच्ची शान्ति और सच्चा आनन्द मिलेगा।

हे आत्मा! दूषित कर्मों से बचो। तुम्हारे छोटे-छोटे पाप-कर्म एक दिन पहाड़ बन जाते हैं जो आगे चलकर तुम्हारे घोर दुख का कारण बनते हैं। जिसके कारण तुम नर्क के भागी होते हो; और चौरासी लाख योनियों में भटकते हो। इसलिए तुम अपनी गलती को ईश्वर के समक्ष प्रगट कर दो। अपने से श्रेष्ट लोगों को अपनी गलती के विषय में बता दो। तुम भगवान के समक्ष खड़े हो कर क्षमा माँगो और प्रार्थना करो कि- 'हे भगवान! मुझे क्षमा कर दो। मुझसे ऐसी गलती फिर कभी नहीं होगी।' तुम भगवान के समक्ष सपथ लो। अपनी गलती को छिपाओ मत। गलती को छिपाना महान पाप है। परन्तु अपनी गलती को प्रगट करने से पाप का नाश होता है। मन शुद्ध और पवित्र होता है। अक्सर देखा जाता है किं तुम बुरे कर्म करके उसे छिपाने के लिए मदिरा पान करते हो। एक पाप को छिपाने के लिए दूसरा पाप करते हो। तुम अपनी गलती को छिपाने के लिए मदिरा पीते हो, परन्तु मदिरा

तुम्हें ही पी जाती है। वह तो तुम्हारे होश को ही पी जाती है। फिर बेहोशी में तुमसे और न जाने कितने पाप होते हैं। इसलिए पाप को छिपाओ मत, वरना व्यभिचार बढ़ेगा। कर्म दूषित होंगे। मन मैला होगा और तुम्हारा जीवन नर्क बन जायेगा। इसलिए व्यभिचार मत करो। चोरी मत करो। जो कुछ भी तुम्हारे पास है उससे संतुष्ट रहो। असंतुष्टि ही सारे पापों की जड़ है। असंतुष्टि से ही व्यक्ति चोरी करता है, व्यभिचार करता है, पशु हो जाता है। यहाँ तक कि जब उसकी कामना पूरी नहीं होती तो भगवान पर से उसकी आस्था उठ जाती है। फिर मानव अनेक कुकर्म करता है और नर्क का भागी होता है। इसलिए हे आत्मा ! तुम अपने आप में संतुष्ट रहो। क्योंकि संतोष में ही परम सुख और शान्ति है।

हे आत्मा ! तुम असंतुष्ट और बेचैन हो। क्यो न हो तुम असंतुष्ट और बेचैन ! न जाने कितने दूषित विचार तुम्हारे अन्दर हैं। न जाने कितने खटकरम तुम करते हो। कहाँ-कहाँ तुम नहीं जाते, क्या-क्या तुम नहीं करते, कैसा-कैसा तुम नहीं सोचते। सब कुछ तो तुम सोचते हो। अनगिन अनर्गल बातें तुम्हारे भीतर भरी पड़ी हैं। नमक, तेल से लेकर चोरी, डाका, घर-परिवार, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, शारीरिक और न जाने कहाँ-कहाँ की अनगिनत विचारों से तुम ग्रसित हो। हजारों विचार तुम्हारे भीतर सूई की तरह चुभते रहते हैं- क़भी नरक का विचार हो कभी स्वर्ग का विचार, कभी देह का विचार तो कभी आत्मा का विचार। हे आत्मा, इन्ही अनगिनत विचारों में से एक विचार है - 'मैं आत्मा हूँ। मैं देह नहीं हूँ।' इस शुद्ध और सत्य विचार पर तुम्हारा ध्यान कभी नहीं जाता। तुम इसके प्रति कभी गंभीर नहीं होते। तुम सांसारिक विचारों के प्रति, असत विचारों के प्रति गंभीर रहते हो। सत्य विचार तुम्हारे भेजे में नहीं आते। इसीलिए तो तुम बेचैन रहते हो। सत विचार तुम करोगे नहीं और असत विचार तुम छोड़ोगे नहीं। यही तो तुम्हारी अज्ञानता है। इसलिए तो तुम दुख पाते हो। इसलिए हे आत्मा ! तुम यदि चैन से जीना चाहते हो तो इन सत विचारों का चिन्तन करो। यह जानना अन्य जानने से कही ज्यादा महत्वपूर्ण है कि तुम आत्मा हो, तुम शरीर नहीं हो। यह जानने के बाद फिर तुम्हें कुछ जानना शेष नहीं रहेगा। जैसे प्राण के लिए वायु आवश्यक है वैसे ही यह जानना तुम्हारे अस्तित्व के लिए आवश्यक है। अनर्गल विचार तुम्हारे लिए आवश्यक नहीं हैं। ऐसे विचारों से तुम्हारी अज्ञानता बढ़ती है। इसलिए तुम्हें इस एक सत्य विचार के ऊपर अपने हजारों असत विचारों की कुर्बानी देनी होगी। तभी तुम अच्छी तरह जान सकोगे कि तुम आत्मा हो, देह नहीं हो। इस सत्य तथ्य को दृढ़ता पूर्वक जानने से ही आत्मा का कल्याण है। फिर तुममें और

भगवान में कोई फर्क नहीं होगा। तुम्हारे भीतर से सारे राग-द्वेष मिट जायेंगे। तुम शुद्ध-बुद्ध आत्मा हो जाओगे।

इसलिए हे आत्मा ! तुम असत (जड़) से तादात्म्य मत करो। असत के संग से अहंकार की उत्पत्ति होती है। फिर तुम जो भी कार्य करोगे उसी अहंकार के वशीभूत होकर करोगे। वह अहंकार तुम्हें तुम्हारे स्वरूप को याद नहीं करने देगा। वह सदा सत और असत के पहचान में आड़े आता रहेगा। तुम जो भी कर्म करोगे उसमें तुम अपने को ही कर्ता मानोगे। तुम्हारा अहंकार सर्प की तरह फुफकारता रहेगा। तुम्हारे भीतर आसुरी गुण भर जायेंगे। तुम अपने कार्यों और विचारों को ही ठीक मानोगे। तुम सदा दूसरे के कार्यों को उनके विचारों को गलत मानोगे। तुम मानने लगोगे कि संसार में एक मैं ही सत्य हूँ, अन्य सभी असत के पुतले हैं। संसार में जो कुछ पूण्य है वह मेरे कारण ही है। बाकी सारा संसार तो कुकर्म में फसा पड़ा है। तुम्हारा अहंकार यहाँ तक बढ़ जाता है कि मैं जो कुछ भी चाहूँगा उसे पूरा कर लूँगा। मुझे किसी अन्य सहारे की आवश्यकता नहीं है। हे आत्मा, तुम इसी अहंकार में फस जाते हो और इसी अहंकार के कारण भोग की प्रबल इच्छा तुम्हारे अन्दर जाग्रत होती है। इसी कारण तुम्हें सुख और दुख भोगना पड़ता है। अहंकार के कारण ही तुम्हारे भीतर जड़ता के प्रति कामना और ममता उत्पन्न होती है। यद्यपि संपूर्ण सांसारिक क्रियायें प्रकृति के कारण और प्रकृति में होती है। परन्तु तुम जड़ता से तादाम्य के कारण उसे अपना मान लेते हो। मैं कर्ता हूँ ऐसा अहंकार तुम्हारे भीतर जाग्रत हो जाता है। तुम अहंकारी हो जाते हो। तुम जड़ता को नश्वर जानते हुए भी उससे मोह करने लगते हो। अन्यथा कहाँ जड़ता और कहाँ चेतना। जड़ता में इतना कहाँ सामर्थ्य है जो तुम्हारे संग चल सके। जड़ हर क्षण परिवर्तित हो रहा है, नाश हो रहा है। परन्तु तुम अपरिवर्तनशील और अविनाशी हो। तुम्हारा और उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। तुम उसे पकड़ते हो और वह परिवर्तित हो जाता है। तुम फिर उसे पकड़ते हो वह फिर परिवर्तित हो जाता है। वह भाग रहा है और तुम पीछे-पीछे दौड़ रहे हो। तुम उसकी जड़ता को, उसकी नश्वरता को और उसकी परिवर्तनशीलता को नहीं रोक सकते, बस पागलों की तरह उसके पीछे भाग सकते हो। उससे तुम्हें कुछ मिलता नहीं फिर भी तुम अज्ञानता के कारण सोचते हो कि सब कुछ इसी जड़ता से मिलता है। चाहे वह दुख हो, चाहे वह सुख हो, सबका दाता यही है। यह सब तुम्हारी भूल है। तुम अज्ञानी हो। तुम्हें पता नहीं कि प्रकृति ही प्रकृति के साथ खेलती है। जड़-देह से ही जड़-देह को सुख-दुख होता है। तुम उसी जड़ देह से तादाम्य कर जड़ देह के सुख-दुख को अपना सुख-दुख मान लेते हो। उसके कार्य व्यवहार को अपना कार्य

व्यवहार मान लेते हो। तुम उससे इतनी घनिष्टता कर लेते हो कि वह तुम्हें अपने जैसा दीखने लगता है। यह तुम्हारी मुर्खता है। यह तुम्हारी अज्ञानता है। तुम अपने इस भूल को सुधारो। तुम महसूस करो कि उसका और मेरा कोई मेल नहीं है। तुम इस सत्य तत्व को पहचानो। यही सच्चा ज्ञान है। जिस दिन तुम्हारे भीतर यह सत्य का प्रकाश उदित होगा उस दिन तुम्हारा कल्याण हो जायेगां, उस दिन तुम जीते जी मुक्त हों जाओगे।

हे आत्मा ! तुम परमात्मा में श्रद्धा रखो। शास्त्रों में जो पढ़ते हो, सतसंगों में जो सुनते हो और बड़ों से जो सीखते हो उस पर विश्वास करो। पक्का विश्वास का नाम ही श्रद्धा है। बिना विश्वास के श्रद्धा नहीं हो सकती और बिना श्रद्धा के विश्वास नहीं टिक सकता। बिना विश्वास और श्रद्धा के शाश्वत प्रीति नहीं हो सकती। बिना श्रद्धा और विश्वास के तुम्हारी ईश्वरीय यात्रा अधूरी रह जायेगी। इस यात्रा से पूर्व तुम्हें सबसे पहले अपने आचरण को सुधारना होगा। तुम, जप, तप, ध्यान और दान में अपने को लगाओ। जिससे तुम्हारा अन्तर मन शुद्ध हो सके। तुम भजन कीर्तन करो। जिससे तुम्हारे अन्दर आत्मिक प्रेम प्रगट हो सके। तुम जो कार्य करो उसे ध्यान से करो। जैसे दान दो तो सुपात्र को दो। अन्न,जल, वस्त्र और औषधि के दान में तुम भेद मत करो क्योंकि ये चारो चीजें प्राणी मात्र के लिए आवश्यक हैं। इसमें ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा, जात-परजात मत देखो। हाँ यदि कोई दुष्ट व्यक्ति है तो उसे आवश्यकता से अधिक दान मत दो वरना वह इन चीजों का दुरुपयोग करेगा। इस प्रकार सतकर्म करने से तुम्हारे मन के अन्दर भगवान के प्रति श्रद्धा बढ़ेगी। ईश्वर में विश्वास बढ़ेगा। प्रत्येक प्राणी के प्रति तुम्हारे हृदय में प्रेम उमड़ेगा। धीरे-धीरे तुम्हारे सद व्यवहार को देख कर सभी अपने हो जायेंगे, कोई पराया नहीं रहेगा। फिर किसी को तुम दुखी नहीं देख सकोगे। तुम दूसरों के दुख को देखकर स्वयं दुखी हो जाओगे। तुम्हारे भीतर सौहादूर्य का भाव उठने लगेगा। तुम सोचने पर मजबूर हो जाओगे कि जब परम पिता परमात्मा किसी को दुख नहीं देता या किसी को दुखी नहीं देख सकता तो मैं उसका पुत्र हो कर कैसे किसी को दुख दे सकता हूँ या दुखी देख सकता हूँ। मैं अपने अंतिम साँस तक सेवा करूँगा। इसके लिए भले ही मुझे कष्ट उठाना पड़े, पर मैं किसी को कष्ट नहीं दूँगा। फिर तुम्हारा स्वभाव उस परमपिता परमात्मा के समान हो जायेगा। तुम मन, वचन और कर्म से उस परमात्मा के हो जाओगे। तुम्हारा मन इतना पवित्र हो जायेगा कि उसमें उठने वाले हर भाव दैवी हो जायेंगे। तुम्हारा व्यवहार घर से लेकर सारे संसार तक पवित्र हो जायेगा। तुम्हारे सारे विकार नष्ट हो जायेंगे। तुम्हें यथार्थ का ज्ञान हो जायेगा और तुम्हें भगवान से ही नहीं प्राणी मात्र के प्रति श्रद्धा हो जायेगी, प्रेम हो जायेगा।

हे आत्मा ! तुम इस स्थिति में पहुँच कर निर्विकार और एकरस हो जाओगे। प्रकृति में होने वाली क्रियाएँ तुम्हें अपने से अलग दीखेंगी। तुम प्रकृति स्वरूप देह से अपना तादात्म्य छोड़ दोगे। तुम्हें यह स्पष्ट ज्ञान हो जायेगा कि प्रकृति स्वरूप देह में अहंता और ममता करने से या इसके तादात्म्य से मैं दूषित हो जाऊँगा। इसलिए तुम आगे से देह के साथ तादात्म्य नहीं करोगे। तुम्हें महसूस हो जायेगा कि प्रकृति जड़ होने के कारण तुम्हारे पास तादात्म्य के लिए नहीं आती बल्कि तुम ही उसके संग के लिए व्याकुल रहते हो। तुम्हें यह ज्ञात हो जायेगा कि असत को सत मानने से ही सब बन्धन है। जड़ देह में अहंता और ममता विद्यमान है। जब तक अहंता और ममता विद्यमान है तब तक कर्म बन्धन से तुम छूट नहीं सकते। जब तक तुम कर्म और फल के साथ अपना संबंध रखोगे तब तक त्यागी नहीं हो सकते। त्यागी वही है जो कर्म और फल से मुक्त है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि तुम कर्म को ही त्याग दो। बल्कि इसका तात्पर्य यह है कि तुम जो भी कार्य करो उसके प्रति मोह मत रखो। और उस कर्म से जो फल मिलेगा, अच्छा या बुरा, उससे आसक्ति भी मत करो। कर्म करो पर कर्म फल से आसक्ति त्याग कर करो। इसे ही सच्चा त्याग कहते हैं। कर्म न करने की जो भूल करता है वह आलसी है, निकम्मा है और प्रमादी है। तुम्हें आलसी नहीं बनना है। तुम्हें निकम्मा नहीं बनना है, तुम्हें प्रमादी नहीं बनना है। ये सब तामसी गुण हैं। ये तुम्हारे पतन के कारण हैं। ऐसा भूल मत करो। फल पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। तुम कितना भी कर्म करो पर फल तो ईश्वर के हाथ में है। जरा सोचो कि तुम कितनी सारी इच्छायें रखते हो। तद्नुसार तुम कार्य भी करते हो। परन्तु क्या तुम्हारी सभी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं, नहीं। इच्छायें वही पूर्ण होती हैं जिसको ईश्वर पूर्ण करना चाहता है। तुम्हारे चाहने से क्या होगा। दरअसल जब तुम चाहते हो तो तुम्हारी चाहत क्रिया, पदार्थ और फल को अपना बना लेती है। उससे तुम तादात्म्य कर लेते हो। क्रिया, पदार्थ और फल को अपना मानना और उससे तादात्म्य कर लेना ही तो उसके प्रति आसक्ति है। यही आसक्ति तो बंधन का कारण है, जिससे तुम्हें छूटना है, जिसको तुम्हें तोड़ना है। इसमें और बधो मत। तुम्हारे सामने जो भी सतकर्म आते हैं उसे स्वाभाविक रूप से करो। उस काम को करने में पूर्ण ध्यान रखो। वह कार्य पूर्ण होगा या नहीं होगा, फल मिलेगा या नहीं मिलेगा, फल अच्छा मिलेगा या बुरा मिलेगा, यह सोचने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु आवश्यकता है पूरी निष्ठा से, पूरी इमानदारी से, पूरी लगन से उस कार्य को करना। यही तुम्हारा अधिकार है। इसके आगे अगर तुमने कुछ भी इच्छा रखी तो तुम उसमें बंध जाओगे। और यह बंधन ही तुम्हारे दुख का कारण होगा। क्योंकि यदि तुम्हारी

इच्छा के विरुद्ध फल मिला तो तुम्हें दुख होगा और यदि संयोग बस तुम्हारी इच्छा के अनुकूल फल मिला तो उससे तुम्हारी प्रीति हो जायेगी और तुम उसे सदा अपने पास रखना चाहोगे। यही तुम्हारी सदा अपने पास रखने की इच्छा ही तुम्हारे भीतर मोह को जन्म देगी। और तुम मोह के बंधन में बंध जाओगे।यही बंधन तुम्हारे दुख का कारण होगा। क्योंकि जो कुछ भी फल मिलेगा वह प्रकृति के परबस होंगा। चूँकि प्राकृतिक सभी क्रियाएँ सदा परिवर्तनशील हैं अतः तुम्हारे द्वारा प्राप्त उस फल में भी परिवर्तन होगा। अर्थात् जो फल आज तुम्हें मिला है वह कल या तो तुम्हारा नहीं रहेगा, किसी दूसरे का हो जायेगा या फिर उसमें बदलाव आ जायेगा, जो तुम्हारे अनुकूल नहीं होगा या फिर नष्ट हो जायेगा। तात्पर्य यह है कि उस फल में परिवर्तन निश्चित होगा। हे आत्मा ! तुम्हें इसी परिवर्तन से दुख होता है क्योंकि तुम फल को सदा ज्यों का त्यों चाहते हो। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहते। क्योंकि परिवर्तन तुम्हारा स्वभाव नहीं है। तुम आत्मा अपरिवर्तनशील हो, शाश्वत हो, अविनाशी हो इसलिए तुम्हें दुख होता है। इसलिए हे आत्मा ! तुम फल की इच्छा त्याग कर केवल कर्म करो। तुम कर्म करो पर कर्म के प्रति आसक्ति मत रखो। इस प्रकार तुम कर्मासक्ति और फलासक्ति दोनों का त्याग कर कर्म करो। तभी तुम्हें उस कर्म में आनन्द और शान्ति मिलेगी। क्योंकि तब तुम्हारी शान्ति, तुम्हारा आनन्द फल पर नहीं कर्म करने पर निर्भर होगा। क्योंकि तब तुम्हारे लिए दोनों ही स्थितियाँ समान होंगी। उदाहरण के लिये मान लो दो अलग-अलग देश की टीमें फुटबाल खेल रही हैं। तुम दर्शक बने देख रहे हो। उस समय कोई भी टीम जीते या हारे उससे तुम्हें दुख नहीं होता। किसी टीम के हारने पर न तो तुम्हें दुख होता है और न ही किसी टीम के जीतने पर तुम्हें हर्ष होता है या खुशी होती है। क्योंकि उस हार या जीत से तुम्हारा कोई संबंध नहीं होता है। तुम हार या जीत दोनो ही परिस्थिति में समान रहते हो। उस समय तुम्हें मात्र खेल में आनंद आता है। क्योंकि उस हार या जीत से तुम्हारा कोई संबंध नहीं है, कोई तादात्म्य नहीं है, कोई इच्छा नहीं है। परंतु यदि तुम्हारे देश की टीम से किसी दूसरे देश की टीम खेल रही हो तो तुम पूरे खेल और खेल के परिणाम के प्रति चिन्तित रहोगे। कहीं तुम्हारी टीम हार न जाय, इस बात की चिंता सदा बनी रहेगी। तुम्हें खेल में उतना आनंद नहीं आयेगा जितना पहले आ रहा था। क्योंकि अभी तुम परिणाम से चितिंत हो। खेल में हमारी टीम हारेगी या जीतेगी इस सम्भावित परिणाम से तुम बधे हो। तुम्हें परिणाम में आसक्ति है। इसलिए पूरा खेल तुम्हारे लिए तनावपूर्ण रहेगा। चूँकि अपने टीम में तुम्हारी आसक्ति है अतः उसकी जीत या हार में भी आसक्ति है। यह आसक्ति ही तुम्हारे दुख का कारण है। अगर तुम इस बंधन

में नहीं बँधते, तुम्हारी आसक्ति केवल अपने टीम के प्रति नहीं होती तो खेल में जीत हो या हार हो, तुम हर हालत में खुश रहते। लेकिन तुम अज्ञानता के कारण अपनी टीम की जीत या हार रूपी परिणाम से बंध जाते हो और दुखी या सुखी होते हो। इस प्रकार परिणाम से बँधना ही आसक्ति में बँधना है और परिणाम से न बंधना ही समता में रहना है। समता की स्थिति में कोई भी टीम हारे या जीते तुम आनन्द में होते हो। क्योंकि तब तुम्हारे मन में किसी भी टीम के प्रति मोह नहीं होता। दोनों टीमें तुम्हारे लिए समान होती हैं। तब तुम हार या जीत से ऊपर उठ कर अनासक्त भाव से खेल में आनंद लेते हो। यही समत्व की स्थिति है। इसी स्थिति में पहुँच कर मानव सभी दुर्विचारों से मुक्त हो जाता है, सभी द्वन्दों से मुक्त हो जाता है और संपूर्ण संसार उसका अपना हो जाता है।

हे आत्मा! विकारी कर्म-फल से तुम्हारा कोई संबंध नहीं है। क्योंकि तुम निर्विकारी हो। निर्विकारी का विकारी के साथ कैसा संबंध। तुम अज्ञानता के कारण कर्म और फल में आसक्त होते हो। ज्ञानी मानव कभी इनके बंधन में नहीं बँधता। ज्ञानी मानव जानता है कि यह सब माया है, असत्य है। इनसे सत का कोई संबंध नहीं है। ज्ञानी को यह पता है कि ये सारे संबंध जीव की ओर से हैं न कि प्रकृति की आरे से। प्रकृति में तो अपने नियम के अनुसार सदा परिवर्तन होता रहता है। उसमें नित नई-नई वस्तुयें, नये-नये लोग, नई-नई परिस्थितियाँ और नई-नई क्रियायें होती रहती हैं। ये सभी कभी बढ़ती हैं, कभी घटती हैं और कभी नष्ट हो जाती हैं। उनके इस क्रम में कोई परिवर्तन नहीं होता। वह तो तुम हो जो अज्ञानतावस उससे संबंध जोड़ कर चाहते हो कि उसमें कोई परिवर्तन न हो। यदि व्यक्ति, वस्तु, परिस्थिति या क्रिया अच्छे हों तो हमसे कभी दूर न हो, और बुर हों तो कभी हमारे पास न आवें। स्वार्थी तुम हो प्रकृति नहीं। प्रकृति के पास सोचने की शक्ति नहीं है। वह तो अपने स्वभाव के अनुरूप बनती बिगड़ती रहती है। चाहे तुम लाख कोशिश करो परंतु उसके क्रम में कोई परिवर्तन नहीं आता। इसलिए तुम इस वास्तविकता को समझो। तुम इस सत्यता को जानो कि इनमें हमारे चाहने से न बदलाव होगा, न ही बदलाव रुकेगा, न ही इनमें परिवर्तन होगा और न ही परिवर्तन रुकेगा। ये हमारी मरजी से न तो हमारे पास रहेंगे और न ही हमारी मर्जी से हमसे बिछुड़ेंगे। हमारी इच्छा से न तो ये हमें सुख देंगे और नहीं दुख देंगे। फिर हम इनके पीछे क्यों दौड़ते हैं? क्यों न हम इनसे निर्लिप्त रहे। ये आये तो आयें, जायें तो जायें। उनके पास रहने में भी खुश और उनके बिछुड़ने में भी खुश। क्यों इनसे हम मोह कर दुखी हों। क्यों अपनी बनी को बिगाड़ें। क्यों जन्म-जन्मान्तर के चक्कर में पड़ें। हे आत्मा, तुम जरा सोचो। इन बातों पर गौर करो। तुम क्यों नहीं सोचते कि

आत्मा (पुरूष) में कभी परिवर्तन नहीं होता। सारे परिवर्तन प्रकृति में होते हैं। बिना परिवर्तन के प्रकृति रह नहीं सकती। तुम इस परिवर्तन को अपना परिवर्तन क्यों मानते हो ? क्यों तुम प्रकृति के साथ ममता, कामना और तादात्म्य कर बंधन में बँधते हो ?

हे आत्मा ! तुम प्रकृति से उत्पन्न ममता और कामना का त्याग कर कर्म करो। ममता और कामना से मुक्त कर्म ही अकर्म कर्म कहलाता है। ऐसे कर्मों में कर्म के प्रति आसक्ति नहीं होती, मात्र क्रिया होती है। ऐसे कर्मों के करने में ही पूर्णता का अनुभव होता है। अकर्म कर्म कभी बंधन कारक नहीं होते। ज्ञानी पुरुष को यह मालूम है कि ये सारे कर्म शरीर द्वारा होते हैं और मैं शरीर नहीं हूँ, मैं आत्मा हूँ। अत: ज्ञानी पुरुष कर्म तो करता है पर उससे बँधता नहीं है। कर्म करते हुए भी वह मुक्त रहता है। ज्ञानी मानव का यही सच्चा त्याग है। ऐसा मानव ही सच्चा साधूं कहलाता है। केवल वस्त्र बदल लेने से या घर का त्याग कर देने से कोई साधू नहीं हो जाता। ऐसे व्यक्ति को क्रियमाण और संचित कर्म बाँध नहीं सकते। वह प्रारब्ध कर्म फलों को अवश्य भोगता है परंतु उसमें लिप्त नहीं होता। ऐसा मनुष्य अपने संचित कर्म फल को भी बदल देता है।

इसलिए हे आत्मा ! तुम सात्विक ज्ञान को प्राप्त करो। वही तुम्हारा प्रकाशक है। वह कभी विभक्त नहीं होता। वह मैं- तू, यह-वह में भेद नहीं करता। वह सभी मानव का सत ज्ञान है। मानव को वह ज्ञान अपने विवेक से प्राप्त होता है। विवेक पूर्वक किया गया कार्य सात्विक होने से परमात्मा की ओर जाता है। मन, बुद्धि और विवेक ये ऐसे सूक्ष्म यंत्र हैं जिनसे मनुष्य निरन्तर प्रभावित होता रहता है। मन-मुताबिक चलने वाला व्यक्ति तामसी होता है। बुद्धि से कार्य करने वाला व्यक्ति राजसी कहलाता है। और विवेक से कार्य करने वाला व्यक्ति सात्विक होता है। विवेक मानव को परमार्थ की ओर ले जाता है। बुद्धि व्यक्ति को संसार के पदार्थों और भोगों में फसाती है। तथा मन मानव के पतन का कारण होता है। केवल मन के अनुसार किया गया कार्य मानव को नर्क में ले जाने वाला होता है। विवेक से आचरण मर्यादित होता है। बुद्धि से कर्म व्यस्थित होता है। पर मन तो चंचल है। उससे आचरण और कर्म दोनों बिगड़ते हैं। मन द्वारा किये गये कार्यो की परिणति निराशा में होती है, आलस में होती है, निद्रा में होती है। ऐसा व्यक्ति भयभीत और तामस भावों से ग्रसित होता है। विवेकी मनुष्य ज्ञानी होता है उसका उद्देश्य चेतन स्वरूप को जानना होता है। इस कारण उसके कार्य पारमार्थिक होते हैं। उसके अन्दर क्रियाएँ स्वत: ही प्रकट होती हैं। ऐसी क्रियाएँ सत प्रधान होती हैं तथा सदा परमात्मा के लिए होती हैं। इसलिए हे

आत्मा ! तुम विवेक पूर्वक कार्य करो। विवेक से ही ज्ञान का उदय होगा और तुम्हें परमात्म - तत्व का ज्ञान होगा। बिना विवेक के तुम संसार में बधोगे। मन और बुद्धि तुम्हें संसार में फसायेंगे। इसलिए तुम जागो। सत-असत को पहचानो, वरना पीछे पछताओगे।

हे आत्मा ! परमात्मा और प्रकृति दोनों अनादि और अनन्त हैं। ये दोनों अलग अलग होते हुए भी एक हैं। ये दोनों ज्ञान के द्वारा ही जाने जाते हैं। चूँकि विवेक मनुष्य में ही होता है प्रकृति में नहीं, अतः मनुष्य को ही पता है कि प्राकृतिक वस्तुएँ, क्रियाएँ और परिस्थितियाँ अलग हैं और परमात्मा अलग है। जब मनुष्य अज्ञान बस प्राकृतिक वस्तुओं का सहारा लेता है तो अपने को प्राकृतिक ही मान लेता है। और वह प्राकृतिक गुणों को अपना ही गुण मान लेता है। जैसे मनुष्य अज्ञानता के कारण शरीर को ही मैं मान लेता है और कहता है कि 'मैं शरीर हूँ।' यद्यपि वह शरीर नहीं है। फिर भी शरीर के साथ रहते-रहते 'मैं शरीर हूँ' ऐसा अनुभव करने लगता है। इस कारण प्रकृति के अर्थात् शरीर के गुण जन्म, मृत्यु, परिवर्तन, क्षणभंगुरता और नश्वरता आदि को अपना गुण मान लेता है। और उसी के अनुसार भोग भोगता है, उसी के अनुसार सुख-दुख का अनुभव करता है। इन प्राकृतिक मूलभूत गुणों के अनुसार सुख-दुख का अनुभव करता है। इन प्राकृतिक मूलभूत गुणों के कारण ही मानव के अन्दर काम, क्रोध, मद, मोह और लोभ आदि विकार पैदा होते हैं। उसके अन्दर ममता और कामना यहाँ तक भर जाती है कि उसे सत दिखाई ही नहीं देता। राग और द्वेष में फँसे मानव का जीवन कब बीत जाता है वह जान ही नहीं पाता। देखते देखते मृत्यु आ जाती है। और फिर चौरासी लाख का चक्कर। हे आत्मा ! यह सब चक्कर अज्ञानता के कारण है। इसलिए तुम मन बुद्धि तक ही अपने को सीमित मत रखो। तुम अपने विवेक को जाग्रत करो। बिना विवेक के ज्ञान का उदय नहीं होगा। विवेक से जीना ही जाग्रत जीवन कहलाता है। विवेकी मानव सदा वर्तमान में जीता है। वह भूत और भविष्य का चिन्तन करता हुआ भी सदा वर्तमान में ही रहता है। वह वर्तमान के प्रति सदा सजग रहता है। हे आत्मा ! जो वर्तमान के प्रति सजग होता है उसे भविष्य की चिंता नहीं होती। क्योंकि भविष्य की जड़ वर्तमान में है। यदि तुमने वर्तमान को ठीक बना लिया है तो भविष्य बिगड़ नहीं सकता। जैसे; जो विद्यार्थी पूरे वर्ष पूरी निष्ठा और लगन से पढ़ते हैं वे कभी असफल नहीं होते। उसे सफलता या असफलता की चिन्ता नहीं होती है। चूँकि उसका आज ठीक है, सुदृढ़ है इसलिए उसका कल भी सुदृढ़ होगा। उसे कल की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए हे आत्मा ! तुम आज को पूरे विवेक के साथ जीओ। कल की चिन्ता मत करो। यदि आज ठीक है तो कल तो ठीक होगा ही।

इसलिए हे आत्मा ! तुम्हारी अज्ञानता ही तुम्हारे सारे दुर्गुणों का मूल है। अज्ञानता के कारण ही मानव प्राकृतिक वस्तुओं, व्यक्तियों, क्रियाओं और परिस्थितियों में फसता है, उसमें आसक्त होता है। जिसके कारण मानव के अन्दर राग और द्वेष पैदा होते हैं। राग और द्वेष मानव के लिए नर्क समान हैं। रागी मनुष्य अपने और पराये के मोह में फस जाता है। वह इस दलदल में फस कर स्वयं कों और परमात्मा को भी भूल जांता है। द्वेष उसे अंधा बना देता है। उसके सत और असत के ज्ञान को हर लेता है। ऐसा मानव अज्ञानी बना संसार के उपहास का कारण बनता है।

हे आत्मा ! तुम संसार को देख कर भी क्यों अनदेखा करते हो ? क्या तुम्हें दिखाई नहीं देता है कि प्राकृतिक वस्तु, व्यक्ति, घटनायें, परिस्थितियाँ और क्रियायें निरन्तर अभाव की ओर जा रहे हैं, निरंतर नाश की ओर जा रहे हैं, निरंतर मृत्यु की ओर जा रहे हैं। जो बना है वह बिगड़ रहा हैं। जो जन्म लिया है वह मर रहा है। संसार में नित प्रति परिवर्तन हो रहे हैं। फिर भी तुम इस शरीर को अपना कहते हो ? फिर भी तुम अपने इस नश्वर शरीर पर अभिमान करते हो। फिर भी तुम असत वस्तुओं की इच्छा रखते हो। हे आत्मा ! तुम क्यों खुद को खुद से धोखा दे रहे हो। क्यों नहीं विवेक द्वारा असत से संबंध विच्छेद करते ? क्यों नश्वर वस्तुओं के ढेर को अपना सुख मानते हो ? जो एक न एक दिन अवश्य छूट जायेगा उसे क्यों अपने सुख का आधार मानते हो ? क्यों अज्ञानता के वशीभूत तुम दुख को अपने सर लेते हो ? क्या तुम्हें वस्तुओं को इकट्ठा करने का दुख नहीं दीखता ? क्या तुम्हें उससे बिछुड़ जाने का भय नहीं होता ? चोर चुरा न लें, डाकू उसे छीन न लें, प्रकृति के प्रकोप से वस्तुएँ नष्ट न हो जाँय .... आदि अनेक दुख क्या तुम्हें दिखाई नहीं देते ? जिसकी सत्ता से संसार की सारी सत्ताएँ हैं, वह परम सत्तावान परमात्मा तुम्हें क्यों नहीं दीखता ? वही सच्चिदानन्द है। ये सांसारिक वस्तुएँ, व्यक्ति, घटनाएँ, परिस्थितियाँ या क्रियाएँ आदि सच्चिदानन्द नहीं हैं। वही परमात्मा निरंतर विद्यमान होने से सत है, ज्ञान स्वरूप होने से चित है और आनन्द स्वरूप होने से आनन्द है। ऐसे सत को छोड़ कर असत के पीछे पागल हो रहे हो। क्यों नहीं अपने विवेक को जाग्रत करते ? क्यों नहीं तुम ज्ञान के द्वारा सत को पहचानते ?

हे आत्मा ! असत से संबंध होने के कारण तुम्हारा सत विस्मृति हो गया है। इस विस्मृति के कारण ही इन वस्तुओं, व्यक्तियों या परिस्थितियों में होने वाले परिवर्तन को तुमने अपना परिवर्तन मान लिया है। उसकी अनुकूलता एवं प्रतिकूलता को अपनी

अनुकूलता या प्रतिकूलता समझ लिया है। यही तुम्हारी सबसे बड़ी भूल है। तुम सत स्वरूप हो। तुम्हें परमात्मा ने सत ज्ञान प्राप्त करने के लिए शरीर दिया है; मन, बुद्धि और विवेक दिया है। तुम उसका सदुपयोग न कर दुरुपयोग करते हो। तुम शरीर को अपने सुख के लिए उपयोग करते हो। मन, बुद्धि का उपयोग अपनी अनुकूलता के लिए करते हो। तुम क्षणिक असत सुख के पीछे ऐसे दीवाने हो गये हो कि सत सुख क्या है उसको तुम देख ही नहीं पाते। यही तो तुम्हारी विस्मृति है। अपनी इसी विस्मृति को तुम्हें दूर करना है। तुम्हें अपने विवेक को जाग्रत करना है। जिस दिन तुम्हें यह स्मृति हो जाय कि संसार से संयोग माया का बंधन है उस दिन तुम मानना कि तुम्हारी स्मृति लौट आई है। परमात्मा के संयोग से ही तेरा कल्याण होगा। उसका संबंध ही तुम्हारा वास्तविक संबंध है। उसे प्राप्त करने के लिए ही तुम्हें यह मानव शरीर मिला है। शरीर के सुख के लिए तुम्हें यह शरीर नहीं मिला है। शरीर प्राप्ति का उद्देश्य है सत तत्व का ज्ञान, और परमात्म तत्व की प्राप्ति। हे आत्मा ! तुम अपने इसी लक्ष्य को भूल गये हो। तुम्हें पता नहीं है कि परमात्मा तुम्हारे इस कार्य की पूर्ति के लिए सदा तुम्हारे साथ है। तुम सदैव उसकी निकटता का अनुभव करो। वह तुमसे इतना निकट है कि तुम्हारा अपना हाथ भी उतना निकट नहीं है। परमात्मा का हाथ और पाँव सदा तुम्हारे साथ है। तुम भूल जाओ कि तुम अकेले हो। परमात्मा उठते - बैठते, सोत-जागते चौबीसो घंटा तुम्हारे साथ है। वह एक पल के लिए भी तुम्हारा साथ नहीं छोड़ता। जब तुम अकेले रहते हो, तुम देखते हो कि अब कोई हमारे साथ नहीं है; तब भी वह तुम्हारे साथ रहता है। वह तुम्हारे हर कार्य व्यवहार को देखता है। उससे कुछ भी छिपा नहीं है। यहाँ तक कि तुम अपने मन के भीतर जो कुछ भी सोचते हो, अच्छा या बुरा उसे भी वह देखता है, जानता है। तुम मत सोचो कि रात के अँधेरे में जो कुछ तुम करते हो उसे परमात्मा नहीं देखता। वह अंधकार में भी तुम्हारे इतने पास है कि उसे सब कुछ दिखाई देता है। तुम उसकी निकटता का अनुभव करो। वह तुम्हें अकेले कभी नहीं छोड़ता। जब तुम गिरते हो तो वही तुम्हें संभालता है। जब तुम चलते हो तो वही तुम्हारा राह है। जब तुम्हें भूख लगती है तो वही तुम्हारा भोजन बनता है। वह तुम्हारे हर कण-कण में विद्यमान है। तुम उसकी उपस्थिति कां अनुभव करो। गलत बात न सोचो, न सुनो, न देखो, न करो; क्योंकि बुराई से उसे बहुत नफरत है।

हे आत्मा ! तुम्हारा वास्तविक संबंध परमात्मा से ही है। परंतु तुमने जन्मजात संबंध और सम्पादित संबंधों में अपने को ऐसा उलझा रखा है कि तुम अपने वास्तविक संबंध को भूल ही गये हो। तुम्हारे जन्म जात संबंध माता पिता, भाई बहन, चाचा-चाची,

आजा-आजी आदि से है। इनसे ही तुम वास्तविक संबंध मानते हो। परंतु इनसे तुम्हारा वास्तविक संबंध नहीं है, इनसे तुम्हारा जन्म-जात संबंध है। इनकी सेवा करना तुम्हारा फर्ज है। परंतु इन्हें ही अपना सब कुछ मानना तुम्हारी अज्ञानता है। ये सब संबंध तब तक है जब तक तुम जीवित हो। मृत्यु उपरान्त ये सारे संबंध समाप्त हो जाते हैं। कभी-कभी तो मृत्यु से पहले ही ये संबंध टूट जातें हैं - जैसे; भाई-भाई एक दूसरें के दुश्मन हो जाते हैं, माता पिता से बेटा अलग हो जाता है। क्योंकि ये संबंध अस्थाई हैं। ये संबंध जन्म लेने के साथ जुड़ते हैं। ये संबंध जन्म के पहले नहीं थे और मृत्यु के बाद भी नहीं रहेंगे। बीच में जो संबंध दीख रहा है वह भी धीरे-धीरे कम होता जा रहा है या फिर टूटने की ओर चल रहा है। वास्तविक संबंध तो परमात्मा से है। जो जन्म से पूर्व था, अभी है और मृत्यु के बाद भी रहेगा। जो कभी टूटता नहीं, जो कभी घटता नहीं, जो चिर स्थाई है। इसलिए तुम अपने चिर स्थाई परमात्मा से ही प्रेम करो। संसार को प्रेम करते समय यह याद रखो कि वह हमारे परम पिता परमात्मा का ही रूप है। संसार जब तुम्हें ईश्वर रूप दीखने लगे तब समझो कि तुम वास्तविक प्रेम को प्राप्त कर चुके हो।

हे आत्मा! कुछ सम्बन्ध जन्म के बाद बनते हैं। जैसे - पत्नी, सास, ससुर, साला, साली, पुत्र, पुत्री, मित्र आदि। ये सम्पादित संबंध हैं। कभी-कभी ऐसे संबंध जन्मजात संबंधों से भी अच्छे लगते हैं। क्योंकि ये युवा अवस्था के संबंध हैं। इन संबंधों के अपने कुछ खास सपने होते हैं। कभी-कभी तो इन संबंधों को निभाने के लिए लोग अपने प्राण भी दे देते हैं। परंतु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि ये संबंध बनते ही टूट जाते हैं। बँधना और टूटना इन संबंधों के गुण हैं। क्योंकि ये सांसारिक सम्बन्ध हैं। सांसारिक सम्बन्ध जुड़ते और टूटते रहते हैं। ये स्थाई नहीं होते। बनने और बिगड़ने वाला संबंध स्थाई कैसे हो सकता है। स्थाई तो एक परमात्मा का संबंध है। वही तुम्हारा माता-पिता है, वही तुम्हारा मित्र और वही सखा है। वही तुम्हारा प्रेमी या प्रेमिका है। जिस भी रूप में तुम उससे संबंध बनाना चाहते हो वह उसी रूप में तुमसे संबंध बनाने को लालाहित है। तुम्हारा वास्तविक सम्बन्ध एक परमात्मा से ही हो सकता है क्योंकि वह तुम्हारा उद्गम श्रोत है। जैसे नदियाँ अपने उद्गम स्थल सागर से मिलने को सदा उसी ओर दौड़ती हैं, जैसे अग्नि की लव सदा ऊपर की ओर उठती है क्योंकि सूर्य ही अग्नि का मूल श्रोत हैं, वैसे ही परमात्मा हीं तुम्हारा परम पिता है। वह तुम्हारा मूल श्रोत है। इसलिए तुम्हारा सारा बहाव उसी तरफ होना चाहिए। यदि तुम उलटे संसार की तरफ बहोगे तो सूख जाओगे। मूल श्रोत से तुम्हारा नाता टूट जायेगा।

इसलिए हे आत्मा ! चाहे जन्म जात संबंध हो या सम्पादित संबंध हो, सभी संबंध झूठे हैं। ये सारे संबंध तुम्हें माया में बाँधने वाले हैं। ये सम्बन्ध ममता और कामना उत्पन्न करने वाले हैं । इन सम्बन्धों से राग और द्वेष का जन्म होता है। और मानव काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ में फस जाता है। इसलिए हे आत्मा ! तुम एक परमात्मा से ही संबंध जोड़ो और अपने जीवन को धन्य बनाओ।

हे आत्मा ! जब परमात्मा मानव को अपना ऐश्वर्य बताने के लिए उल्लसित हुआ तब वह जगत में सद्‌गुरु के रूप में अपने को प्रगट किया। इसलिए इस जगत में सद्गुरु स्वयं ईश्वर रूप है। इसकी शक्ति के समक्ष ईश्वरीय शक्ति भी ठंढी पड़ जाती है। क्योंकि सद्गुरु ही तो वह गुड़ है जिसकी मिठास को चखकर मानव गुणातीत परमात्मा का स्वाद चखता है। सद्गुरु की कृपा से मानव के समस्त पाप और ताप नष्ट हो जाते हैं। सद्गुरु मानव के ज्ञान को जगाता है। उसके पास ईश्वरीय ज्ञान का ऐसा तेज होता है जिसके प्रकाश के समक्ष सूर्य का प्रकाश भी बौना पड़ जाता है। सूर्य से तो स्थूल आँख वाला ही प्रकाश पाता है। परंतु सद्गुरु के प्रकाश में इतना तेज होता है कि उससे अंधा भी प्रकाशित हो जाता है। वह भी सब कुछ देखने लगता है। इसलिए हे आत्मा ! तुम सद्गुरु की शरण में जाओ। वही तुम्हारा उद्‌धार करेगा। वही बतलायेगा कि सच्चा जीवन क्या है। जड़ चेतन में भेद क्या है। आत्मा और परमात्मा का क्या संबंध है। तुम कहाँ से आये हो और तुमको कहाँ जाना है। सत और असत में क्या भेद है। जन्म और मृत्यु का क्या रहस्य है। शरीर, मन, बुद्धि और अहंकार किसे कहते हैं। कर्म और अकर्म में भेद क्या है। मनुष्य माया में कैसे और क्यों फसता है और उससे मुक्ति कैसे मिलती है - आदि अनेक गुत्थियों को खोल कर सद्गुरु तुम्हारे सामने रख देता है। वह तुम्हें अपने ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित करता है। तुम्हारे भीतर जो अग्नि तत्व है उसे सद्गुरु ही लव रूप दे सकता है। जब तक अग्नि लव रूप में परिवर्तित नहीं होती तब तक प्रकाश नहीं होता। सुषुप्त अग्नि प्रकाश नहीं दे सकता। गुरु तुम्हारे भीतर सुषुप्त ज्ञान-अग्नि को लव रूप देता है। वह तुम्हारे ज्ञान अग्नि को जलाता है फिर तुम प्रकाश रूप होते हो। इसलिए हे आत्मा ! तुम मन, वचन और कर्म से सद्गुरु के श्री चरणों में पूर्ण श्रद्धा और विश्वास से समर्पित हो जाओ। तुम्हारी बिगड़ी सुधर जायेगी। तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। तुम मुक्त आत्मा हो जाओगे।

हे आत्मा ! तुम अंधकार से निकलो। तुम क्रियाजन्य, भावजन्य और विचारजन्य सुख के चक्कर में मत फसो। ये सब नश्वर हैं। ये परिवर्तनशील हैं। ये स्थाई नहीं हैं। ये

तुम्हें धोखा दे रहे हैं। तुम अज्ञान के कारण इसे ही सच्चा सुख मानकर प्रसन्न हो रहे हो। तुम अपने मकान, दुकान और नौकरी के सुख में ही मदमस्त हो रहे हो। तुम अपने भावना में उड़ रहे हो। तुम अपने विचारों के गुलाम बन रहे हो। यही तुम्हारी अज्ञानता है। तुम सच्चे सुख को पहचानते नहीं। वरना तुम इस सुख को सुख नहीं मानते। जैसे कूएँ के मेढक को सागर की गहराई और विंशालता का पता नहीं होता। जब तक वह कूएँ में है; तब तक उसे कूँआ ही सबसे गहरा और विशाल दीखता है। उस कूएँ में तैर कर उसे जो सुख मिलता है उसे ही वह सबसे बड़ा सुख मानता है। परन्तु जब वह कूएँ से बाहर आता है और सागर को देखता है तब उसे पता चलता है कि मैं आज तक भ्रम में था। कूआँ तो मेरा बंधन था। वह तो मुझे आज तक भ्रम में बाँध रखा था। इस कूएँ द्वारा मेरी स्वतंत्रता छीन ली गई थी। कूआँ तो मेरे लिए कैदखाना था। सच्चा सुख तो सागर में है। सागर की गहराई और विशालता को देखकर वह मुग्ध हो जाता है। ऐसे ही जब मानव क्रियाजन्य सुख, भावजन्य सुख और विचारजन्य सुख से बाहर आता है, ऊपर उठता है तब उसे अनुभव होता है कि मैं किस कूएँ में पड़ा हुआ था। मैं आज तक ऐसे सुख को अपनासुख मान रहा था जो सुख था ही नहीं। ये मकान-दुकान, ये धन-दौलत, ये मान-सम्मान भला क्या सुख देंगे। इनको जोड़ते-जोड़ते पूरा जीवन समाप्त हो जाता है परंतु और जोड़ने की तृष्णा कभी घटती नहीं। फिर क्या इन्हें जोड़ना ही सुखकर है। इसका उपयोग तुम्हारे जीवन में कहाँ है। तुम्हें जीने के लिए थोड़ा सा भोजन, रहने के लिए थोड़ी सी जगह और तन ढकने के लिए थोड़े से कपड़े की जरूरत है। ये करोड़ों रूपये, अनेकों मकान और सैकड़ों बीघा जमीन भला तुम्हारे किस काम का। ये तो तुम्हारे लिए बोझ हैं जिन्हें तुम अपने सिर पर रखे ढो रहे हो। तुमसे अच्छे तो वे लोग है जो इस भार से मुक्त हैं। क्या इसी बोझ को तुम सुख कहते हो। यह सुख कैसे हो सकता है। यह तो महान दुख है। जिस कंकड़ पत्थर को इकठ्ठा करने में तुमने अपना पूरा जीवन लगा दिया और जिसे सभालने, सवारने में तुम खुद समाप्त हो रहे हो वह तुम्हारे किस काम का है। तुझे सुख कहाँ मिला। सब तो यही धरा रह गया। तो क्या इन कंकड़ पत्थरों को इकट्ठा करने और सिर पर ढोने में ही सुख है। क्या इसकी चौकीदारी करने में ही सुख है। तुम इसके किस बात से सुखी हो। तुम जरा सोच कर तो देखो। तुम जीवन भर जिस धन दौलत को पच-पचकर कमाते हो, जिसके लिए छल-कपट करते हो, बेईमानी करते हो, झूठ बोलते हो, जब वही धन तुम्हारी तिजोरी में आ जाता है तो क्या तुम उसे खा सकते हो। क्या उससे तुम्हारे पेट की भूख मिट सकती है। क्या तुम्हारी मृत्यु टल सकती है- नहीं उलटे उसे कोई तुमसे छीन न ले, कोई चुरा न ले जाय, इस चिंता में

तुम्हारा जीना मुश्किल हो जाता है। तुम उसकी चौकीदारी करते-करते एक दिन चले जाते हो। इस कार्य में तुम्हें सुख कहाँ नजर आता है। हे आत्मा ! वह सुख नहीं है। जब तब तुम इस संसार रूपी कूएँ में पड़े हो तब तक इस झूठे सुख को सुख मान रहे हो। जब तुम इस कूएँ से बाहर निकलोगे और परमात्म प्रेम रूपी महासागर की गहराई और विशालता को देखोगे तब तुम्हें पता चलेगा कि आज तक तुम जिसे सुख मान रहे थे वह सुख नहीं था वह तो महान दुख था। वास्तविक सुख तो अब मिला है। सच्चा सुख तो सागर समान असीमित परमात्म प्रेम में ही है। तब तुम कूएँ के सुख को भूल जाओगे। तब तुम जान सकोगे कि यदि इकट्ठा करना है तो परमात्म-प्रेम ही इकट्ठा करो। उस सुख के समक्ष संसार का कोई भी सुख टिक नहीं सकता। कहाँ कूएँ का सुख और कहाँ महा सागर का सुख; कोई तुलना नहीं है। इसलिए हे आत्मा ! तुम अपने को परमात्म-प्रेम में समर्पित कर दो।

हे आत्मा ! तुम सागर रूप परमात्म-प्रेम में डुबकी लगाओ। तुम सदा यह याद रखो कि तुम्हें इस माया रूपी कूएँ से बाहर निकलना है। इस कूएँ से बाहर निकलने के लिए तुम्हारे पास केवल एक रास्ता है, और वह है सद्गुरु की कृपा। सद्गुरु की कृपा के बिना इस माया रूपी कूएँ से बाहर निकलना असम्भव है। इसलिए तुम गुरु की कृपा प्राप्त करो। गुरु की कृपा से ही तुम्हें माया रूपी कूएँ से बाहर निकलने का रास्ता मिलेगा। तुम्हारी अज्ञानता दूर होगी। तुम्हारे ज्ञान का उदय होगा। तुम ज्ञान के प्रकाश से सत-तत्व को पहचान सकोगे। तुम्हें यह ज्ञान हो जायेगा कि तुम्हारा यह जीवन हीरे के समान है। तुम अनजाने में इसे कंकड़ मानकर व्यर्थ लुटा रहे हो। न जाने फिर कब यह मानव तन मिले। इसलिए इस जीवन का सदुपयोग करो। ईश्वर से प्रेम करो। अपने को परोपकार में लगाओ। सदा आत्म चिन्तन करो। छोटे बड़े सभी को समान जानो। संपूर्ण प्राणी परमात्मा के अंश हैं; किसी में कोई भेद नहीं है। सभी के अन्दर परमात्मा का वास है। अतः तुम किसी से घृणा मत करो। सबसे प्रेम करो। अपने स्वभाव को जानो। क्रोध कभी मत करो। क्रोध नाश का मूल है। क्रोध से बुद्धि का नाश हो जाता है। अहंकार बढ़ जाता है। देहगत सुखों से सदा दूर रहो। देह के पाँचो सुख शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध नर्क में ले जाने वाले हैं। इससे तमोगुण का प्रकोप बढ़ जाता है। इससे सुख का अनुभव जरूर होता है। परंतु वह सुख दुख का मूल होता है। देहगत गुणों के कारण मानव चिंतन को भूल जाता है। उसे चिंता दबोच लेती हैं। ऐसा मानव सदा दुख ही पाता है।

हे आत्मा ! तुम पर-सेवा कार्य प्रारम्भ करने से पहले अपने अंतःकरण की बुराईयों

को दूर करो। क्योंकि अपना अन्तःकरण शुद्ध होने से अन्दर और बाहर दोनों ओर की शुद्धि हो जाती है। भीतर की शुद्धि से भाव और विचार शुद्ध होते हैं, मन और बुद्धि शुद्ध होते हैं। अन्तःकरण निर्मल और पावन होता है। विवेक जाग्रत होता है। ज्ञान का उदय होता है। जिसका प्रकाश प्राणी मात्र के लिए हितकर होता है। फिर तुम्हें परहित हेतु सोचना नहीं पड़ता बल्कि परहित स्वतः ही तुम्हारी इन्द्रियों से होता रहता है। इन्द्रियाँ अन्तःकरण की अभिव्यक्ति के रूप में कार्य करती हैं। जैसा अन्तःकरण होगा, जैसा अन्दर का भाव होगा उसी के अनुरूप इन्द्रियों का व्यवहार होगा। यदि अन्तःकरण शुद्ध है तो तुम्हारे द्वारा किये गये सारे कार्य शुद्ध होंगे। ऐसी ही क्रियाओं से समाज का कल्याण होता है। परन्तु यदि तुम्हारा अन्तःकरण मैला है तो जगत के प्रति तुम्हारा व्यवहार भी मैला होगा। तुम भले ही बाहर से परहित में लगे हो, परंतु अन्दर में अभिमान भरा रहेगा। चूँकि अभिमान एक आसुरी गुण है, इसलिए यह अभिमान तुम्हारे मन और बुद्धि को अहंकार से भर देगा। यह अहंकार लोगों के साथ-साथ तुमको भी जलाता रहेगा। तुम्हारे मन में यह भाव रहेगा कि यह कार्य मैनें किया है। मैं का अभिमान दूसरों के साथ-साथ अपने को भी जलाता है। ऐसी स्थिति में किया गया सेवा कार्य ईश्वर को प्रिय नहीं होता। क्योंकि परहित में बाह्य क्रियाओं और पदार्थों की प्रधानता होती है। क्रिया और पदार्थ तुम्हारे अपने नहीं हैं। पदार्थ में चाहे चेतन देह हो या जड़ तिनका हो, सभी पराये हैं। इन पराये उपकरणों से किया गया सेवा कार्य तुम्हारा अपना नहीं है। परन्तु तुम भूल से उसे अपना मानते हो और उसके द्वारा किये गये संपूर्ण कार्यों पर अभिमान करते हो। जब कि तुम्हारा देह या अन्य बाह्य पदार्थ सभी संसार के हैं। अगर उसे संसार की सेवा में नहीं लगाते हो तो संसार के प्रति और स्वयं अपने प्रति भी अन्याय करते हो, जो कि घोर पाप का कारण है। क्योंकि संसार की चीज अगर संसार को नहीं दोगे तो चोर कहलाओगे। यदि तुम दूसरे के हितकर पदार्थों को केवल अपने हित में ही उपयोग करते हो, औरों को उपयोग हेतु नहीं देते हो तो औरों के साथ तुम अन्याय करते हो। इसे ही तो औरों का हक छीनना कहते हैं। तो दूसरे का हक छीन कर अपना बनाना कहाँ तक ठीक है। परन्तु तुम हो कि अच्छे बुरे का बिना ख्याल किये उसका उपयोग करते हो। यदि कभी-कभी इस पराये वस्तुओं को परहित में लगाते हो तो तुम्हारे अन्दर अभिमान भर जाता है कि मैनें सेवा कार्य किया। लेकिन दूसरे की वस्तु को उसकी ही सेवा में लगाने पर अभिमान करना कहाँ तक ठीक है। फिर भी तुम अभिमान करते हो क्योंकि तुम्हारा अन्तःकरण गंदा है। तुम्हारे भीतर बुराई है। तुम्हारे अन्दर कुछ न कुछ कमी है। जिसके कारण तुम्हारे भीतर अभिमान प्रगट होता है। वास्तव

में ऐसे व्यक्ति द्वारा किया गया सेवा कार्य अपने अन्दर के बुराईयों को छिपाने के लिए ही है। ऐसे सेवा कार्य में सेवा की भावना कम अभिमान ज्यादा होता है। इसलिए ऐसे सेवा कार्य का फल भी प्रतिकूल ही मिलता है।

इसलिए हे आत्मा! तुम अपने अन्तःकरण को शुद्ध करो। अपने अन्दर के बुराइयों को दूर करो। अन्दर की बुराई दूर होते ही तुम्हारे द्वारा किये गये सारे कार्य परहितकारी हो जायेंगे। तुम्हें अलग से प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं होगी। तुम अपने विवेक को जगाओ। बिना विवेक के जो भी कार्य करोगे उस पर बाद में पछताओगे। इसलिए कोई भी कार्य बिना विचारे मत करो। विवेक का सहारा लो। सदा ध्यान रखो - चाहे अपना शरीर हो या अन्य कोई वस्तु हो, सब संसार के हैं तुम्हारे नहीं हैं - इतना मानते ही उसके प्रति तुम्हारा मोह समाप्त हो जायेगा। तत्पश्चात् तुम्हारे द्वारा जो भी परहित-कारी कार्य होंगे उसमें अभिमान नहीं होगा। क्योंकि, तब तुम जान लोगे कि ये वस्तुएँ मेरी नहीं हैं। अतः इसको खर्च करने में या दूसरे के सेवार्थ़ लगाने में तुम्हें तनिक भी संकोच नहीं होगा। तब तुम भयंकर बुराई से बच जाओगे। तुम मैंपन के दोष से निवृत्त हो जाओगे। तुम्हारे द्वारा सदा जगत का मंगल होगा। तुम्हारा निर्मल प्रकाश सारे विश्व को आलोकिक करता रहेगा।

हे आत्मा! तुम असली बुराई को तो पहचान लोगे परंतु नकली भलाई को कैसे पहचानोगे। नकली भलाई को पहचानना बड़ा कठिन काम है। उदाहरण के लिए कोई बुरा आदमी किसी की मदद करे और लोगों से अपनी बखान करता फिरे कि मैंनें अमुख की मदद की है। तो बात समझ में आती है। तुम सोच सकते हो कि यह व्यक्ति बुरा है इसलिए अमुख की मदद कर अभिमान में गली-गली ढिढोरा पीट रहा है। और यह कह रहा है कि मैने अमुख की मदद की है वरना् उसकी क्या दशा होती भगवान ही जाने। इस बुरे आदमी का अभिमान करना तो स्वाभाविक लगता है क्योंकि बुरे आदमी की सोच कुछ ऐसी ही होती है। परंतु यदि कोई व्यक्ति देखने में अच्छा हो, ऊपर से उसका आचरण उत्तम हो, वेष-भूषा और रहन-सहन से सभ्य हो- ऐसा व्यक्ति किसी की मदद करे और लोगो से कहता फिरे कि मैंने अमुख की मदद की है। मैं नहीं होता तो बड़ा बुरा होता। मेरे कारण ही उस आदमी की इज्जत बच गई है। मैं सदा सबकी भलाई करता हूँ। बुराई तो मेरे स्वभाव में ही नहीं है। आदि अनेक प्रकार से अपनी बड़ाई खुद करे तो बात कुछ समझ में नहीं आती। यदि अच्छा आदमी किसी की मदद करके ढिढोरा पीटे तो अच्छे और बुरे आदमी

में क्या अन्तर रह जायेगा। दोनों अभिमान में चूर दीखेंगे। ऐसे में बुरे आदमी की बुराई तो आसानी से पहचानी जा सकती है। परन्तु भला दीखने वाले आदमी की बुराई (अभिमान) को पहचानना बड़ा कठिन हो जायेगा। यहाँ मदद करके दोनों ही प्रकार के व्यक्ति अभिमानी हो गये हैं। बुरे आदमी का अभिमान (बुराई) तो साफ दीख रहा है। परन्तु भले आदमी का अभिमान उसके अच्छाई के परदे के पीछे से झाँक रहा है। ऐसे नकली भलाई को पहचानना बड़ा कठिन है। क्योंकि ऐसी बुराई भलाई का रूप ले कर आती है, ऐसा असत सत का रूप धारण करके आता है, ऐसा अज्ञान ज्ञान का चोला पहन कर प्रकट होता है। यह सोने की हथकड़ी है। जिसका त्याग करना बहुत कठिन है। क्योंकि सोने का आवरण तुम्हारे मोह रूपी सारे बुराईयों को ढक लेता है। तुम किसी की मदद करके उससे भी अपनी मदद चाहते हो। यदि वह मदद नहीं करता तो तुम बदला लेने को उतारू हो जाते हो। और इस बदले की भावना को ठीक भी मानते हो। तुम सोचते हो कि मैं बदला लेकर ठीक कर रहा हूँ। इस प्रकार की भलाई का रूप लेकर आई हुई अभिमान की भावना रूपी बुराई को दूर करना बड़ा कठिन है। ऐसी बुराई अर्थात् नकली भलाई को पहचानना भी बहुत कठिन है। इसलिए हे आत्मा! तुम ऐसी बुराईयों से सदा सावधान रहो। **'नेकी कर दरिया में डाल'** के अनुसार किसी की मदद करके भूल जाओ। उसे याद कर अभिमान मत करो। दूसरे की सेवा कर उससे सेवा लेने की भावना मत रखो। सेवा लेने की भावना अपने-पराये को जन्म देती है। और जहाँ अपना-पराया है, वहाँ राग और द्वेष है। वहाँ माया का बंधन है, वहाँ काम और क्रोध है। वहाँ भलाई नहीं है। इसलिए हे आत्मा! तुम सदा सावधान रहो। बुराई अनेक प्रकार से अच्छाई का रूप धारण कर तुम्हें छल सकती है। इसलिए तुम अपने विवेक को जाग्रत करो। विवेक के बिना तुम अपने अन्दर की बुराई को पहचान नहीं सकते।

हे आत्मा! तुम ज्ञान-सागर परमात्मा के अंश हो। इसलिए तुम अपने ज्ञान रूपी दीपक को जलाओ। तुम उस प्रकाश में अपने को पहचानों। तुम जिनके साथ रह रहे हो वे तुम्हारे अपने नहीं हैं। वे तुम्हारे साथ सदैव रह भी नहीं सकते। उन्हें छोड़ कर या तो तुम्हें जाना पड़ेगा या वे तुम्हें छोड़कर चले जायेंगे। तात्पर्य यह है कि तुम्हारा सांसारिक संबंध टूट रहा है। हर क्षण तुम्हारे संबंध की घड़ी कम होती जा रही है। इसलिए तुम इस संबंध को अटूट मत मानो। परिवर्तन सांसारिक संबंधों का गुण है। इसमें परिवर्तन भी होगा और ये टूटेंगे भी। इस अलगाव को तुम रोक नहीं सकते। इसलिए तुम इनके प्रति मोह मत रखो। निर्मोही होकर इनकी सेवा करो। सेवा करना तुम्हारा स्वभाव है। मोह तुम ऊपर से ओढ़े हो। अपने पराये का भाव तुम संसार से सीखे हो। इसलिए तुम इस ओढ़नी को

उतार फेको। तुम अपने स्वभाव को ग्रहण करो। तुम्हें अपने स्वभाव को ग्रहण करना सरल है। जैसे अहिंसा तुम्हारा अपना स्वभाव है, निर्मोह तुम्हारा अपना स्वभाव है। करुणा, प्रेम, दया, भक्ति, श्रद्धा, विश्वास आदि सतगुण मानव के स्वाभाविक धर्म हैं। इन गुणों को धारण करने वाला मानव उत्तम होता है। तुम अपने स्वभाव को प्रफुल्लित करो। उसे सारे संसार में फैलाओ। तुम जितना इसे बाँटोगे उतना ही यह बढ़ेगा। यह ऐसा धन है जो कभी कम नहीं होता। यह अपने-पराये के भेद को मिटा देता है। यह व्यक्तित्व को निखार देता है। इसलिए हे आत्मा ! तुम सब पर अपने स्वाभाविक प्रेम को बरसाओ। सबके प्रति उदार बनो। उदारता तुम्हारा सर्वोत्तम गुण है। उदारता से ही पर-सेवा की भावना जाग्रत होती है। इसलिए हे आत्मा ! तुम अज्ञान को दूर कर अपने स्वभावगत सतगुणों को ग्रहण करो। यही तुम्हारा धर्म है।

हे आत्मा ! बिना सतकर्म के परमात्म-तत्व (मोक्ष) की सिद्धि नहीं होती। जप, तप, ध्यान, मनन, चिन्तन, सतसंग, स्वाध्याय, पर-सेवा आदि सतकर्म हैं। परमात्म-तत्व कर्मो का फल है। अतः जैसे-जैसे तुम्हारा सतकर्म बढ़ता जायेगा वैसे ही वैसे परमात्म-तत्व (मोक्ष) की ओर तुम्हारी मात्रा बढ़ती जायेगी। जितना तुम कर्म-फल के प्रति अनासक्त होते जाओगे उतना ही परमात्मा तुम पर प्रसन्न होता जायेगा। क्योंकि कर्मफल के प्रति अनासक्त भाव होने से जड़ पदार्थों के प्रति मोह समाप्त हो जाता है। मोह विहीन जड़ पदार्थ तुम्हें राग में बाँध नहीं सकते। यदि तुम शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ या अन्य प्राकृतिक पदार्थो से बँधे नहीं हो तो उसके द्वारा मिलने वाला फल प्राणी मात्र की सेवा में लग जाता है। इस प्रकार तुम्हारा कर्म-फल जीव की सेवा में लगने से परमात्मा तुम पर प्रसन्न होता है और तुम्हें परमात्म-तत्व की प्राप्ति होती है। अज्ञानी मानव जड़ पदार्थो से अपना संबंध जोड़ लेता है। यही जड़ता के प्रति अनुराग ही मानव के पतन का कारण है। इसलिए हे आत्मा ! तुम सतकर्म करो परंतु कर्म-फल के प्रति अपनी आसक्ति को जला दो। तुम परमात्मा से संबंध जोड़ो। परमात्मा को प्राप्त करना ही तुम्हारा परम लक्ष्य है।

हे आत्मा ! इस प्रकार जड़ता के प्रति सम्बन्ध विच्छेद होने से उससे कुछ पाने की लालसा समाप्त हो जाती है। परिणाम स्वरूप लोभ और मोह रूपी दुर्गुण मन में उत्पन्न नहीं होते। मन में लोभ और मोह उत्पन्न न होने से राग और द्वेष की विभीषिका से मानव मुक्त हो जाता है। यदि राग और द्वेष से तुम्हारा अन्तर मन मुक्त है तो काम और क्रोध से तुम आजाद रहोगे। काम और क्रोध से मुक्त हो कर ही मानव परम-मुक्ति को प्राप्त कर सकता

है। यदि मानव काम और क्रोध से मुक्त नहीं है तो उसका नाश हो जाता है। क्योंकि काम और क्रोध महापापी हैं। ये सारे अवगुणों के उद्गम श्रोत हैं। संयोग-सुख एवं पदार्थों के संग्रह की इच्छा का नाम काम है। जब काम अपूर्ण होता है तो जिसके कारण काम की पूर्णता में बाधा पहुँचती है उसके प्रति क्रोध उत्पन्न होता है। यह क्रोध ही बढ़कर बैर का रूप धारण करता है जो तुम्हारे विनाश का कारण होता है। और यदि काम पूर्ण हो जाता है तो जिसके कारण काम पूर्ण हुआ है उसके प्रति राग उत्पन्न हो जाता है। राग उत्पन्न होते ही मन में इच्छा जाग्रत होती है कि वह वस्तु, व्यक्ति, घटना या परिस्थिति सदा हमारी ही बनी रहे। मन में उसे संग्रह करने की इच्छा जाग्रत होती है। जिस कारण तुम्हारी सारी दैविक शक्ति उसे प्राप्त करने में ही लग जाती है और तुम्हारा ध्यान परमात्मा से दूर हो जाता है। फलत: तुम्हें परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती और तुम्हारा पतन हो जाता है। हे आत्मा ! जो परमात्मा से दूर हो जाता है उसे सपने में भी सुख नहीं मिलता। इसलिए तुम जड़ पदार्थों के पाने की लालसा का त्याग करो। जब तुम्हारी जड़ पदार्थों से आसक्ति मिट जायेगी तो जीने की इच्छा से भी तुम मुक्त हो जाओगे। क्योंकि जीने की इच्छा तो वस्तु, क्रिया और परिस्थिति के प्रति मोह या संग्रह से होता है। मानव सोचता है कि ऐसे ही और सुखकर स्थिति निर्मित होती रहे और मैं ऐसे ही जीता रहूँ। वह संग्रहित चीजों को भोगना चाहता है, और इसीलिए जीना चाहता है। परन्तु जब इन जड़ पदार्थों के प्रति आसक्ति नहीं होती तो जीवन रहे या न हरे कोई फर्क नहीं पड़ता। ऐसी स्थिति में वह स्वच्छन्द विचरता है। उसे जीने या मरने की कोई परवाह नहीं होती। सतगुणी साधु-संतो, पीर-फकीरों को देखिये, वे कैसा मस्त जीवन जीते हैं। न किसी से दोस्ती न किसी से बैर। उन्हें सारा संसार अपना दीखता है। मन में किसी के प्रति न राग होता है, न द्वेष होता है। वे हर प्राणी में भगवान का दर्शन करते हैं। जीवन जीने की आशा छोड़कर जीवन जीना कितना आनन्द दायक होता है उसकी कल्पना सच्चा योगी ही कर सकता है। वही जानता है कि सच्चा जीवन क्या होता है।

हे आत्मा ! जब जीवन में किसी से मोह न हो, किसी से राग न हो, किसी चीज की इच्छा न हो तो फिर मरने का भय क्यों होगा। मरने का भय तो तब होता है जब मानव प्राकृतिक वस्तुओं में आसक्त होता है , जब उससे सुख पाने की मन में इच्छा होती है। लेकिन जब यह ज्ञात हो जाय कि मैं आत्मा हूँ, मैं अविनाशी हूँ, मैं नित्य हूँ, मैं सत्य हूँ, मैं शाश्वत हूँ तो फिर निरंतर अभाव में जा रहे इस शरीर के मरने का कैसा भय। अर्थात् तब इस शरीर के मरने का भय समाप्त हो जायेगा और वह नित्य-निरन्तर रहने वाले अपने

आत्म-स्वरूप में स्थित हो जायेगा। आत्म-स्वरूप में स्थित मानव को न जीने की इच्छा होती है और न मरने का भय होता है। मन में भय तो तब होता है जब आत्मा शरीर को अपना मान लेता है, उससे तादात्म्य कर लेता है। फिर शरीर के मरने को ही अपना मरना मानता है। परन्तु वह शरीर के प्रति मोह के कारण मरना नहीं चाहता, अर्थात् जीने की इच्छा रखता है। लेकिन आत्मज्ञानी विवेकी मानव में ये दोनों ही इच्छायें नहीं होतीं। अतः उन्हें मरने का भय नहीं होता।

हे आत्मा! जब जीने की इच्छा और मरने का भय न हो तो कर्म फल की इच्छा भी नहीं होती। फल की इच्छा तो जीने की इच्छा रखने वालो को ही होती है। परन्तु जो आत्मरामी हैं, जिनके अन्दर विवेक जाग्रत हो गया है, जो ज्ञानवान हैं, उन्हें न जीने की इच्छा होती है और न मरने का भय होता है। उन्हें कर्म-फल के प्रति आसक्ति भी नहीं होती। जब कर्मफल के प्रति आसक्ति न हो तो कर्म ही अकर्म हो जाता है। इसे ही निष्काम कर्म कहते हैं। निष्काम कर्म के सारे कर्म परसेवा युक्त होते हैं। ऐसा ज्ञानी मानव कर्म तो करता है पर कर्मफल में बँधता नहीं। वह, फल की चिंता ही नहीं करता। ऐसा नहीं है कि उसे फल नहीं मिलता। कर्म और फल का तो शाश्वत सम्बन्ध है। कर्म होगा तो फल अवश्य मिलेगा। पर उस फल के प्रति ज्ञानी मनुष्य बँधता नहीं। फलाकांक्षा से रहित ज्ञानी मनुष्य के सारे फल प्राणी मात्र के हितार्थ होते हैं। आत्मज्ञानी मनुष्य में कुछ करने की इच्छा नहीं होती। क्योंकि जब कुछ पाना ही नहीं है तो कुछ करने से मोह क्यों? ऐसा योगी कर्म करते हुए भी कुछ नहीं करता, फल पाते हुए भी कुछ नहीं पाता। उसके सारे कर्म प्राणी मात्र के हितार्थ होते हैं और सारे परिणाम पर-सेवार्थ होते हैं। इसे ही कर्मयोग कहते हैं। न कार्य करने का मोह, न फल की इच्छा, फिर भी सारे कर्म करना और फल को परहितार्थ त्याग देना। हे आत्मा! सारे वेद शास्त्र, सारे धर्म, सभी संत, फ़कीर, पैगम्बर इसी कर्म की बात करते हैं। चाहे ज्ञानयोगी हों, चाहे कर्मयोगी हों, चाहे भक्तयोगी हों- सभी इसी कर्मफल त्याग का संदेश देते हैं। जिसमें न कर्म के प्रति मोह हो और न फल की इच्छा हो, जिसमें न कर्म न करने का त्याग हो और न ही नये कर्म करने की चाह हो - ऐसा योगी यह मानता है कि इस शरीर से जो भी कार्य होते हैं सब ईश्वर के कारण होते हैं। इसलिए उसके परिणाम भी ईश्वरार्थ होते हैं। वह स्वच्छन्द, निर्द्वन्द, निर्भय और निष्काम जीवन जीता है। ऐसे योगी को शीघ्र ही ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। इसलिये हे आत्मा! तुम निष्कामी जीवन जीओ। तुम अपने जीवन को परमात्मा के श्री चरणों में समर्पित कर दो। यही तुम्हारे जीवन का लक्ष्य

है, यही तुम्हारे लिए शाश्वत और सत्य है।

हे आत्मा! तुम्हारे बंधन का मूल कारण तुम्हारा अपना शरीर है। शरीर को मैं मान कर भ्रम के जाल में फसे तुम दिन रात छटपटाते रहते हो। अविवेक के कारण तुम्हें यह ज्ञान नहीं होता कि मेरे बंधन का मूल कारण मेरा यह शरीर ही है। तुम्हें यह भी ज्ञात नहीं होता कि जो बंधन का मूल कारण है उसके ही त्याग से तुम बंधन मुक्त हो सकते हो। इसके अतिरिक्त तुम चाहे जैसा भी प्रयत्न करो पर बंधन से मुक्त नहीं हो सकते। इसलिए तुम्हें बंधन मुक्त होने के लिए अपनी अभियान यात्रा शरीर से ही शुरू करनी होगी। तुम पहले शरीर को ही लक्ष्य बना कर चलो। यह शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और हवा इन पाँच तत्वों से निर्मित है। इन पाँच तत्वों से बना यह शरीर पंच-तत्व यंत्र भी कहलाता है। इस यंत्र के विषय में तुम विचार करो। कोई भी यंत्र किसी के द्वारा बनाया जाता है। जो बनाने वाले से सदा अलग होता है। बनाने वाला तमाम कल पूर्जों के संयोग से यंत्र बनाता है। वह यंत्र सदा बनाने वाले के अनुसार कार्य करता है। जैसा बनाने वाला चाहता है यंत्र वैसा चलता है; अर्थात् यंत्र अपने बनाने वाले के अधीन होता है न कि बनाने वाला यंत्र के अधीन होता है। दूसरा भाव यह है कि यंत्र एक निश्चित समय के बाद नष्ट हो जाता है। इस प्रकार यंत्र पहले नहीं होता, बाद में भी नहीं होता और वर्तमान समय में भी वह नष्ट होने की यात्रा करता रहता है। अर्थात् यंत्र में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। और वह परिवर्तन नष्ट होने की ओर ही होता है। तीसरी बात; उस यंत्र के परिवर्तन से बनाने वाले में कोई परिवर्तन नहीं होता। बनाने वाला तंत्र में हो रहे परिवर्तन को देख सकता है परंतु स्वयं उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। अर्थात् बनाने वाला दृष्टा है और यंत्र दृष्य है। दृष्टा और दृष्य दोनों कभी एक नहीं होते। दोनों सदा अलग-अलग होते हैं। चौथी बात यह है कि यंत्र के नष्ट होने से बनाने वाला नष्ट नहीं होता। अर्थात् दृष्य के गुजर जाने पर भी द्रष्टा विद्यमान रहता है। वह दृष्य के गुजरने की प्रक्रिया को देखता रहता है। हे आत्मा! तुम इस दृष्टि से अपने शरीर को देखो। तुम द्रष्टा हो, शरीर दृष्य है। तुम अपरिवर्तनशील हो, शरीर परिवर्तनशील है। तुम नित्य हो, देह अनित्य है। तुम इसके रक्षक हो और शरीर तुमसे रक्षित है। इस प्रकार तुममें और देह में चेतन और जड़ का अंतर है। तुम चेतन हो और शरीर जड़ है। हे आत्मा! यह ज्ञान होते ही कि मैं चेतन हूँ और देह जड़ है, तुम्हारे सारे भ्रम नष्ट हो जायेंगे। तुम देह के अन्दर होने वाले परिवर्तन को अपना परिवर्तन नहीं मानोगे। देह के सुख-दुख को अपना सुख दुख नहीं जानोंगे। देह के मृत्यु होने पर तुम अपनी मृत्यु नहीं समझोगे। फिर न तो तुम्हें कोई दुख होगा और न ही सुख होगा। तुम बैरागी हो जाओगे।

हे आत्मा ! जड़ तो जड़ है। उसमें विकार या निर्विकार कहाँ। ऐसे ही दृष्य तो दृष्य है। उसमें अच्छाई या बुराई कहाँ। बुराई या अच्छाई तो चेतन में है, दृष्टा में है। चेतन की चेतनता से जड़ तत्व में हलचल पैदा होता है। अर्थात् दृष्टा की जैसी दृष्टि होगी वैसा ही दृष्य दीखेगा। अच्छी दृष्टि होगी तो अच्छा दृष्य दिखेगा और बुरी दृष्टि होगी तो बुरा दृष्य दिखेगा। इसलिए हे द्रष्टा रूप आत्मा ! तुम अपनी दृष्टि शुद्ध रखो। तुम्हारे ही दृष्टि में सब गुण दोष है। तुम दोष दृष्टि से देखते हो तो दृष्य दोषपूर्ण दीखता है और तुम गुण दृष्टि से देखते हो तो दृष्य गुणवान दीखता है। जैसे एक नारी केवल नारी है। उसमें न गुण है न अवगुण है। उसे देखकर द्रष्टा के मन में जैसी भावना जाग्रत होती है उसी रूप में वह नारी तुम्हें दिखाई देती है। माँ रूप में देखता है तो वह माँ रूप में दीखती है। यदि पत्नी रूप मे देखता है तो पत्नी रूप में दीखती है। तात्पर्य यह कि तुम्हारी देखने की नजरिया कैसी है, किस रूप में तुम देखते हो। इसी प्रकार गुरु तो गुरु है। अगर तुम्हारी नजारिया शुद्ध है, तुम शुद्ध मन, बुद्धि से, पूर्ण श्रद्धा और विश्वास से उसके श्री चरणों में समर्पित हो तो गुरु तुम्हें शुद्ध दिखेगा और यदि तुम्हारे मन में उस गुरु के प्रति अश्रद्धा है, विश्वास नहीं है तो वह सच्चा सतगुरु होते हुए भी तुम्हें पाखंड़ी दीखेगा। सद्गुरु होते हुए भी तुम्हें पाखंडी दिखना या सदगुरु दिखना यह तुम्हारे ऊपर निर्भर है कि तुम किस दृष्टि से उसे देख रहे हो। ऐसे ही यह देह वैसा ही दीखता है जैसा तुम देखते हो। यदि तुम अपना रूप देखते हो तो यह अपना बन जाता है। यदि अपने से अलग जड़ तत्व देखते हो तो यह जड़ दीखता है। अपना स्वरूप दीखना या जड़ रूप में दीखना, यह देह का धर्म नहीं है। देह तो जड़ है। वह तो जैसा है वैसा ही रहेगा। देखने की नजरिया तुम्हारी बदलती है। तुम जड़ देखोगे तो देह जड़ दीखेगा और यदि चेतन देखोगे तो चेतन दीखेगा। इसलिये हे आत्मा ! तुम अपनी नजरिया को शुद्ध करो। जड़ को चेतन या चेतन को जड़ मत मानो। जड़ को चेतन मानने से ही सारे भ्रम विद्यमान हैं। तुम जड़ को चेतन मान लेते हो और उसके अनुसार व्यवहार करते हो। तुम उसका गुलाम बन जाते हो। अत: तुम इस भ्रम को सुधारो। जड़ को जड़ मानो। वह तुम्हारा गुलाम है। तुम उसके गुलाम नहीं हो। तुम्हारे एक इशारे पर ये देह, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि चलें; ऐसा विवेक जांगाओ। विवेक ही तुम्हारी शक्ति है। बिना विवेक के तुम अपूर्ण हो। चेतन का गुण है विवेक। बिना विवेक के चेतनता नहीं है। तुम बिना विवेक के जो जड़ के साथ तादत्म्य किये हो वह तुम्हारा स्वभाव नहीं है। तुम अपने स्वभाव से विमुख हो गये हो। हे आत्मा ! तुम जागो। तुम अपने स्वभाव को जानो और अपना कल्याण स्वयं करो।

हे आत्मा ! तुम ऐसा मत सोचो कि परमात्मा मंदिर में ही रहता है घर में नहीं रहता, ऊँचाई पर रहता है निचाई में नहीं रहता, बड़ों में रहता है छोटों में नहीं रहता, हिन्दू में रहता है मुसलमान में नहीं रहता, स्वदेश में रहता है परदेश में नहीं रहता। वह तो सर्वत्र समान रूप से रहता है। वह कभी भेद नहीं करता। उसकी दृष्टि में सभी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, क्रिया और घटना समांन हैं। सब उसकी ही लीला है। उसने श्रृष्टि रची है। सभी उसके अपने हैं। उसकी इस श्रृष्टि में तुम भेद करने वाले कौन हो। तुम उसके पुत्र होकर उसकी श्रृष्टि में भेद कैसे कर सकते हो। जब स्वयं परमात्मा भेद रहित है तो उसके द्वारा श्रृजित यह श्रृष्टि कैसे भेद युक्त हो सकती है। यह जो संसार में भेद दीखता है वह तो तेरे ही दृष्टि का अवगुण है। वरना, संसार में कहीं कोई भेद नहीं है। सभी एक है; एक परमात्मा की संतान हैं, एक परमात्मा के अंश हैं। इसलिए गीता में भगवान श्री कृष्ण ने समता का संदेश दिया है, समता को योग बताया है - 'समत्वं योग उच्यते।'

इसलिए हे आत्मा ! तुम सभी जीव-जन्तुओं को, पेड़-पौधों को, पशु-पक्षीयों को समान जानो। सबके भीतर परमात्मा का दर्शन करो। ईश्वर की अपार करुणा और कृपा से तुम्हें यह मानव तन मिला है। न जाने कब मृत्यु आ जाय, न जाने कब शरीर छूट जाय, न जाने कब इस संसार से तुम्हें जाना पड़े - इसके पहले तुम समत्व योग में प्रतिष्ठित होकर अपना उद्धार कर लो। वृद्ध तन से तुम सत्य तक नहीं पहुँच सकते। इसलिए जवानी को बर्बाद मत करो। उसे सतगुणों के अनुसार आचरण में लाओ। समय को पहचानो। समय बहुत मूल्यवान है। जो समय चला गया वह फिर नहीं आयेगा। इसलिए जो वर्तमान समय है या जो आ रहा है उसका स्वागत करो। उसका सदुपयोग करो। उसके मूल्य को पहचानो। तुम्हें एक स्वर्णिम अवसर मिला है। तुम उसका सही-सही उपयोग करो। समय के साथ चलना सीखो। समय कभी बुरा नहीं होता। बुरी परिस्थितियाँ होती हैं। तुम उसे ईश्वर का वरदान जान कर उसका स्वागत करो। तुम हर परिस्थिति में जीना सीखो। फिर समय तुम्हारे पीछे-पीछे चलेगा। समय तुम्हारे नाम से याद किया जायेगा। समय सुबह दोपहर शाम या रात्रि का नाम नहीं है। समय महापुरूषों के जीवन लीला का नाम है। जो सतकर्मो के साथ चलता है। समय न तो एक मिनट का होता है न एक घंटे का, समय न तो एक माह का होता है और न ही एक वर्ष का। समय अनादि और अनन्त है। इसके जिस बिंदु को जिसने अपने सतकर्मी रंगों से रँग दिया, समय उसी का हो जाता है। समय एक ऐसा प्रवाह है जिसके साथ चल तो सकते हो पर उसे रोक नहीं सकते। इसलिए हे आत्मा ! तुम समय के साथ चलो। उसे रोकने का प्रयत्न मत करो।

हे आत्मा ! तुम जिन स्थितियों के मोह में फस कर समय का साथ छोड़ते हो, वे स्थितियाँ एक न एक दिन तुम्हारा साथ छोड़ देंगी। संसार की कोई भी वस्तु या व्यक्ति, घटनायें या परिस्थितियाँ सदा प्रिय नहीं होती। उसके प्रति कभी न कभी तुम्हारी अरुचि अवश्य होती है। जड़ वस्तु के प्रति रुचि क्रमशः घटती रहती है। लोभी व्यक्ति पहले जड़ तत्व के साथ तादात्म्य करता है , फिर उससे बधता है, फिर धीरे-धीरे उसमें उसकी रुचि हो जाती है। समय पाकर वही रुचि क्रमशः कम होती जाती है। चूँकि जड़ तत्व अस्थाई है, उसका अस्तित्व ही नश्वर है; अतः उससे होने वाली प्रीति कैसे स्थाई हो सकती है। वह भी नश्वर ही होती है। जड़ चीजों से जितनी अधिक रुचि होती है उतना ही अधिक बाद में अरुचि होती है। क्योंकि जिस तत्व के कारण जड़ वस्तुओं में तुम्हारी रुचि होती है, वह तत्व समय के साथ घटता रहता है। और एक समय ऐसा भी आता है जब वह प्रीति तत्व बिलकुल ही नष्ट हो जाता है। प्राकृतिक वस्तुओं के जीवन का यही क्रम है - पहले उत्पत्ति फिर विनाश। इसलिए हे आत्मा ! तुम जिन जड़ पदार्थो, व्यक्तियों, परिस्थितियों, घटनाओं या क्रियाओं से प्रीति कर बँधे हुए हो, वे सब एक न एक दिन नष्ट हो जाने वाले हैं। वे न तो पहले तुम्हारे साथ थे और नहीं बाद में तुम्हारे साथ रहेंगे। बीच में जो संयोग दिखाई दे रहा है। वह भी विनाश की ओर हीं जा रहा है। इसलिए ऐसे नश्वर संसार से प्रीति छोड़ कर तुम परम पिता परमात्मा से प्रीति करो। यही तुम्हारे जीवन की सार्थकता है।

हे आत्मा ! तुम मन, बुद्धि और इन्द्रियों द्वारा जो वेद शास्त्र पढ़ते हो या उसे पढ़कर जो ज्ञान प्राप्त करते हो वह भी प्राकृतिक ही है। उसमें भी प्रकृति के गुण- परिवर्तन, क्षणभंगुता, नश्वरता, उत्थान और पतन तथा जन्म और मृत्यु आदि विद्यमान रहते हैं। इस कारण तुम भले ही पोथी पढ़कर विद्वान बन जाओ, वेद शास्त्र में पारंगत हो जाओ परंतु परमात्म-तत्व का अनुभव नहीं कर सकते। क्योंकि प्राकृतिक कार्यो के करने से सत्य-तत्व का ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए हे आत्मा ! तुम्हें परमात्म-तत्व को जानने के लिए, चेतन-तत्व के ज्ञान के लिए, नित्यता का अनुभव करने के लिए, मैं और मेरे में भेद को जानने के लिए अपने अन्दर की ज्योंति विवेक को जगाना होगा। विवेक जाग्रत होने पर ही जड़ और चेतन का भेद स्पष्ट होगा। तुम मन, बुद्धि और इन्द्रियों पर भरोसा मत करो। अपने स्वरूप की पहचान के लिए अपने विवेक को जगाओ। विवेक जाग्रत होते ही मैं एक आत्मा हूँ, इस सत्य तत्व पर तुम्हारा दृढ़ विश्वास हो जायेगा। मैं देह नहीं हूँ, यह प्रकृति का अंश है। क्योंकि यह प्रकृति द्वारा संचालित हैं। मैं परमात्मा द्वारा संचालित हूँ। इनका स्वभाव हमारे स्वभाव से भिन्न है। ऐसा ज्ञान होते ही तुम्हारी प्राकृतिक वस्तुओं के प्रति

मोह अपने आप समाप्त हो जायेगा। तुम निष्कामी हो जाओ।

परन्तु हे आत्मा ! तुम जीवन भर इसी मोह रूपी परिवर्तन को सुलझाने में लगे रहते हो; लेकिन इसे सुलझाना तुम्हारे बस की बात नहीं है। क्योंकि प्रकृति में परिवर्तन अपने आप होता है। तुम लाख कोशिश करो परंतु वह तुम्हारे हाथ नहीं आयेगी। उसका परिवर्तन तुम्हारे अधिकार से बाहर है। फिर भी अज्ञानता के कारण तुम उसे अपने अनुरूप ढालने की कोशिश करते हो और अपनी कोशिश में असफल होने पर दुखी होते हो। इसलिए हे आत्मा ! तुम प्रकृति को प्रकृति के सहारे छोड़ दो। तुम अपनी सारी कोशिश परमात्मा को जानने में लगाओ। जहाँ कोई परिवर्तन नहीं होता। जहाँ न सुख होता है और न ही दुख होता है। जहाँ सिर्फ आनन्द ही आनन्द है।

इसलिए हे आत्मा ! तुम अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करो। यही तुम्हारा सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। बड़े से बड़ा युद्ध जीतना आसान है परंतु इन्द्रियों को जीतना बहुत कठिन है। जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया उससे बड़ा और कोई योद्धा नहीं है। क्योंकि इन्द्रियाँ अपने स्वभाव के अनुसार तुम्हें निरंतर फसाती रहती हैं। जैसे आँख सुन्दर दृष्य देखने के लिए तुम्हें आकर्षित करती है। कान मधुर संगीत सुनने के लिए तुम्हें अपनी ओर खीचते हैं। नाक सुगन्ध सूँघने के लिए तुम्हें लुभाती हैं। जिह्वा मधुर रस चखने के लिए तुम्हें लालाहित करती है। और त्वचा कोमल स्पर्श के लिए तुम्हें दीवाना बनाती है। इन इन्द्रियों को जीतना प्रकृति के बस में नहीं है। बल्कि प्रकृति तो इसकी और मदद करती है। इन्हें जीतने के लिए परमात्मा की कृपा की आवश्यकता है। बिना परमात्मा के इन आकर्षणों से लड़ना बहुत कठिन है। जप, तप, ध्यान, योग और परसेवा से परमात्म-कृपा प्राप्त होती है। परमात्म-कृपा से आत्म-ज्ञान का उदय होता है और तुम आत्मज्ञान से ही इन्द्रियों की वास्तविकता को जान सकते हो। और जब तुम्हें इन्द्रियों की वास्तविकता का ज्ञान हो जायेगा तो उसके प्रति तुम्हारा आकर्षण समाप्त हो जायेगा। इन्द्रियों का आकर्षण खास समय पर खास परिस्थित में ही अच्छा लगता है। जैसे कितना भी सुंदर दृष्य हो, चाँदनी रात हो, शीतल मंद सुगन्धित वायु हो, मधुर संगीत बज रहा हो, अच्छे स्वादिष्ट भोजन की थाल लगी हो, नृत्य संगीत हो रहा हो ऐसे समय में यदि किसी की मौत हो जाय तो यह मन मोहक दृष्य फीका पड़ जायेगा। फिर से दृष्य मन को लुभा नहीं सकेंगे। उलटे इस दृष्य के कारण मन और दुखी हो जायेगा। अर्थात् सुख-दुख की अनुभूति अंतर मन पर निर्भर है न कि बाह्य दृष्य पर। इस प्रकार का आत्मिक ज्ञान होने से इन्द्रियों पर

विजय पाई जा सकती है। इसलिए हे आत्मा ! तुम अपने आत्म-तत्व को पहचानो। परमात्म-तत्व को जानो और अपने स्वभाव के अनुसार परमात्मा से प्रेम करो। परमात्म-प्रेम सब आकर्षणों का सार है। जिसके प्राप्त होते ही सारे रस स्वमेव प्राप्त हो जाते हैं। जिसके समक्ष इन्द्रियों का आकर्षण तुच्छ होता है। सत्य यह है कि परमात्म-रस से ही इन्द्रियाँ रसात्मक प्रतीत होती हैं। अलग से इन्द्रियों का कोई अस्तित्व नहीं है। यदि इन्द्रियों का अलग से अस्तित्व होता तो मृत्यु उपरान्त भी इन्द्रियाँ पूर्ववत रस लेती रहतीं। परन्तु मृत्यु उपरांत इन्द्रियाँ कोई भी रस नहीं ले पाती। न ही आँखो द्वारा दीखता है, नहीं कानों द्वारा सुनाई देता है, न तो जीभ द्वारा स्वाद मिलता है और न हीं नाक द्वारा गंध का एहसास होता है। शरीर भी निष्प्रभाव पड़ा रहता है। कितना भी कोई स्पर्श करे पर उसे स्पर्श सुख का अनुभव नहीं होता। क्योंकि शरीर में एक आत्म-तत्व का अभाव हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि आत्म-तत्व में ही सारी अनुभूतियाँ विद्यमान हैं। उसी में सारे रस हैं। उसी से सारे आनन्द हैं। तुम उसी अपने आत्म स्वरूप को पहचानो। उसी में डूबकी लगाओ। तभी तुम्हें सत्य और असत्य का अनुभव होगा। तभी तुम संसार से नाता छोड़कर परमात्म-तत्व में लीन हो सकोगे।

हे आत्मा ! तुम्हारी भूल यह है कि तुम दुख का निदान दुख के (असत्य के) साधनों से ही करते हो। परिणाम स्वरूप सुख मिलता नहीं और दुख मिटता नहीं। जैसे-यदि तुम्हें काम (इच्छा) सताता है तो तुम उस व्यक्ति या वस्तु को पाना चाहते हो, उसके संयोग में आना चाहते हो जो प्रकृति से निर्मित जड़ है, नश्वर है अनित्य है। और तुम यह भी चाहते हो कि वह वस्तु या व्यक्ति सदा हमारे पास बना रहे। अर्थात् प्रकृति से उत्पन्न काम (इच्छा) को प्रकृति से उत्पन्न व्यक्ति या वस्तु से तुम पूर्ण करना चाहते हो। तुम्हें मालूम है कि प्रकृति-जन्य वस्तु या व्यक्ति में स्वाभाविक परिवर्तन होगा, बिछुड़ेगे भी और नष्ट भी होंगे। अर्थात् उसके ये तीनों गुण तुम्हारे दुख को और बढ़ायेंगे। अर्थात् तुम्हारा दुख कम होने के बजाय बढ़ जायेगा। इसी प्रकार जब तुम्हें क्रोध आता है तो तुम प्रकृति-जन्य वस्तु या व्यक्ति से द्वेष करते हो। उससे बदला लेना चाहते हो। नतीजा यह होता है कि तुम अन्दर से खोखले होते जाते हो। तुम्हारा दुख बढ़ता जाता है। अर्थात् तुम सभी प्रकार के दुख को मिटाने के लिए प्रकृति-जन्य साधनों का उपयोग कर निरन्तर दुखमय जीवन जींते हो। इस प्रकार तुम ज्ञान से दूर होते जाते हो। जब कि वास्तविकता यह है कि जब कभी काम (इच्छा) या क्रोध सताये तो ईश्वर का सहारा लो। उसके नाम का स्मरण करो। अपने विवेक को जगाओ। संसार के समस्त प्राणी को ईश्वर तुल्य समझो

ताकि खुद तुम जाग सको और तुम अपने सत्य-तत्व परमात्मा से संबंध जोड़ सको। जब तुम अपने स्वभाव के अनुरूप सत्य-तत्व को प्राप्त कर लोगे तो तुम्हारे मन से काम, क्रोध स्वतः ही भस्म हो जायेंगे। क्योंकि जहाँ तुम्हें ईश्वर का सहारा मिला कि सारे दुर्गुण दूर हुए। दुर्गुण तो तभी तक है जब तक तुम ईश्वर से विमुख हो। ऐसे ही लोभ, मोह या मद जब मन में उत्पन्न हों तो 'वसुधैव कुटुम्बकम' का स्मरण करो। सारा संसार एक परिवार है। सब में परमात्मा विद्यमान है। एक ईश्वर ही सबका पिता है। हम सब प्राणी उसकी संतान हैं। ऐसा मन में भाव आते ही तुम लोभ, मोह, मद आदि दुर्गुणों से मुक्त हो जाओगे। तुम्हारे अन्दर प्राणी मात्र के प्रति हार्दिक प्रेम उत्पन्न हो जायेगा। कण-कण में ईश्वर की आभा दीखने लगेगी और तुम्हारा प्रेम ईश्वरीय हो जायेगा।

परन्तु हे आत्मा ! इस ईश्वरीय प्रेम में जब तुम्हारा अहंकार, तुम्हारा स्वार्थ आड़े आता है तब वह प्रेम ईश्वरीय नहीं सांसारिक हो जाता है। तुम्हारे प्रेम का क्षेत्र सीमित हो जाता है। तुम्हारा प्रेम लोभ और मोह में कैद हो जाता है। फिर प्रेम, प्रेम नहीं रह जाता बल्कि कामना और ममता का रूप ले लेता है। धीरे-धीरे प्रेम पूर्णतः स्वार्थी हो जाता है। यही स्थिति तुम्हारे दुख का कारण है। तुम अज्ञानता में खुद दुख ओढ़ते हो। अगर तुम अहंकार रहित निस्वार्थ भाव से प्रेम करते हो तो सारा संसार तुम्हारा अपना है और तुम सारे संसार के हो।

हे आत्मा ! तुम्हें विश्वास नहीं है कि पुनर्जन्म होता है ? तुम्हें भरोसा नहीं है कि जीव मानव योनि में जन्म लेता है। तुम्हें यकीन नहीं होता कि जीव अपने कर्मो के द्वारा ही चौरासी लाख योनियों में जन्म लेता है ? क्यों नहीं भरोसा होता तुमको इन बातों पर ? तुम्हें अपने लड़कपन पर, अपनी जवानी पर बड़ा भरोसा होता है तो क्या बुढापा नहीं आता। मृत्यु तुमको छीन नहीं लेती। क्या तुम चाहते हो वृद्ध होना। क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारी मृत्यु हो जाय। परंतु प्रकृति के नियमानुसार सब कुछ होता चला जाता है और तुम देखते रह जाते हो। इसी प्रकार प्रकृति का नियम है कि कर्म के अनुसार फल मिलेगा और फल के रूप में सुख-दुख की तरह पुर्नजन्म तथा चौरासी लाख योनियों में से कोई भी योनि (कर्मानुकूल) तुम्हें मिलेगी। तुम्हारे लिए सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि तुम अपने कर्मो का फल भोग रहे हो। कर्म के अनुसार ही कोई व्यक्ति धनी है तो कोई निर्धन है, कोई रोगी है तो कोई निरोगी है, कोई विद्वान है तो कोई बुद्धू है। गरीब में भी कोई ज्यादा गरीब है तो कोई कम गरीब है, कोई ज्यादा स्वथ्य है तो कोई कम स्वथ्य है, कोई ज्यादा रोगी है तो

कोई कम रोगी है, कोई बहुत ज्यादा बुद्धू है तो कोई कम बुद्धु है, कोई ज्यादा विद्वान है तो कोई कम विद्वान है। ये सब कर्मफ़ल के कारण ही तो हैं। वरना उस नन्हें शिशु का क्या दोष हो सकता है जो निर्धन के घर पैदा होता है। जिसे दूध तक नहीं मिलता। जो आकाश तले, कड़कती धूप और अकड़ती सर्दी में बिना वस्त्र के अपना बचपन गुजारने पर मजबूर होता है। उसने तो अभी जन्म ही लिया है। जन्म लेते ही उसने कोई गुनाह तो नहीं कर दिया। फिर क्यों उसे गरीबी से गुजरना पड़ता है। कारण एक ही है- पूर्वजन्म के संचित और प्रारब्ध कर्म। इन्ही कर्मो के फल स्वरूप उसे यह दुख भोगना पड़ता है। इसके विपरीत कई बच्चे राजमहलों में जन्म लेते हैं। उनके जन्म लेते ही शहनाइयाँ बजती हैं। गरीबों को दान दिया जाता है। उनका जन्मोत्सव मनाया जाता है। चारो तरफ खुशियाँ ही खुशियाँ होती हैं। अब इस बच्चे ने जन्मते ही कौन सा अच्छा कर्म कर लिया कि इतने उत्सव मनाये जां रहे हैं। कारण एक ही है- पूर्वजन्म के कर्मो का फल; जो संचित और प्रारब्ध रूप में आज सामने प्रगट हुआ है। इसी प्रकार इस जन्म में मानव-मानव के कर्मो में काफी भेद होता है। कोई सतोगुणी कर्म करता है तो कोई रजोगुणी कर्म करता है। कोई तमोगुणी कर्म करता है तो कोई मिश्रित कर्म करता है। जो जैसा कर्म करता है उसे बाद में वैसा ही फल भोगना पड़ता है। कोई खराब कर्म करके कुत्ता, बिल्ली बनता है तो कोई अच्छा कर्म करके मानव जन्म लेता है। कोई बुरा कर्म करके नरक पाता है तो कोई भला कर्म करके स्वर्ग जाता है। कोई-कोई तो अपने सारे कर्म ईश्वर को समर्पित कर मोक्ष को प्राप्त होते हैं। तात्पर्य यह है कि ये सब भोग कर्मो के फल स्वरूप ही मानव को भोगना पड़ता है। जब मानव-मानव के कर्मो में इतनी विभिन्नता है तो पुनर्जन्म के योनियों में क्यों विभिन्नता नहीं होगी। जो कुत्ते के समान नीच कर्म करेगा उसे कुत्ते की योनि मिलेगी। वह अगले जन्म में कुत्ता बनेगा। और यदि कोई मानवीय कर्म करता है तो उसे अगले जन्म में मानव योनि मिलेगी। आज इस संसार में इसके बहुत से उदाहरण देखने को मिलते हैं। कई बच्चे जन्म के बाद बताते हैं कि मैं पूर्वजन्म में अमुख स्थान का था, मेरा नाम अमुख था। वे अपने माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री आदि सम्बन्धियों के नाम बताते हैं। वे पूर्वजन्म की कई ऐसी घटनायें बताते हैं जिनको सुनकर और उसकी सत्यता की जाँच कर विश्वास करना पंड़ता है कि पुनर्जन्म होता है। और वह भी कर्मो के अनुसार होता है। इसलिए हे आत्मा ! तुम कर्मो की गति पर पूरा विश्वास रखो। कर्मो का फल एक न एक दिन अवश्य तुम्हें भुगतना होगा। इसलिए तुम अपने कर्मो को सुधारो। कर्म सुधार की शुरूआत मन से होता है। फिर वचन का क्रम आता है। तत्पश्चात् कर्म स्वमेव शुद्ध होने लगते हैं। इसलिए तुम मन,

वचन और कर्म से शुद्ध बनो। यही मानव जीवन की सार्थकता है, यही आनन्द है, यही मुक्ति है।

हे आत्मा ! कोई भी कर्म तीन बातों पर निर्भर होता है - कर्ता, करण और कर्म। कर्म को करने वाला कर्ता कहलाता है। कर्म में आनेवाले साधन और सामग्री को करण कहते हैं। तथा कर्ता द्वारा जो कार्य किया जाता है उसे कर्म कहते हैं। इन तीनों के संयोग से ही कोई कार्य पूर्ण होता है। इस कर्म की पूर्ति पर प्रतिफल अवश्य मिलता है। हे आत्मा ! यदि तुम कर्म के इन तीनों तत्वों में से कर्ता होते हुए भी कर्तापन का भाव हटा दो, अर्थात् मैं कर्ता नहीं हूँ, ऐसा भाव हो जाय तो उस कर्म की पूर्ति पर मिलने वाला फल तुम्हें नहीं भोगना पड़ेगा। क्योंकि कर्तापन के भाव के कारण ही तुम्हें फल की प्राप्ति होती है। और वह फल कभी तुम्हें तुरन्त भोगना पड़ता है और कभी संचित हो जाता है। संचित कर्म फल बाद में भुगतना पड़ता है। यदि तुम्हारे अन्दर कर्तापन का भाव न हो अर्थात् कर्म करने वाला मैं नहीं ईश्वर है, ऐसा मान लो तो उसका फल भी ईश्वर को ही मिलेगा; जो ईश्वर रूप संसार के सेवार्थ होगा। इसलिए हे आत्मा ! तुम कर्तापन का भाव छोड़कर कर्म करो। ताकि तुम्हें फ़ल से मुक्ति मिल सके। मनुष्य कर्मफल के प्रति आसक्ति के कारण ही संसार से बँधा रहता है और कामना, ममता में फसा एक दिन मर जाता है। तुम्हारे समस्त कार्य फल की इच्छा से ही होते हैं। तुम फल की इच्छा में इतना आसक्त हो जाते हो कि तुम्हारा कर्तापन का भाव दृढ़ से दृढ़तर होता जाता है और तुम्हारे अन्दर कर्तापन का अहंकार पैदा हो जाता है। तुम सोचने लगते हो कि मैं ही कर्ता हूँ। मेरे सिवा यह कार्य कोई कर ही नहीं सकता। यह अहंकार इतना विकट रूप धारण कर लेता है कि तुम कर्म और अकर्म का बिना विचार किये विकर्म करते रहते हो और इसी में बधते जाते हो। इसलिए हे आत्मा ! तुम संसार पर अपनी कामना और ममता की आहूति दे दो। जैसे; साधक अग्नि में जिन-जिन वस्तुओं की आहूति देता है वे आहूति से पहले अलग-अलग रूप में होते हैं परन्तु आहूति के पश्चात् सबका रंग एक सा हो जाता है। अग्नि जला कर एक राख रूप में कर देती है। फिर अपनापन समाप्त हो जाता है। इसलिए तुम भी अपने को संसार रूपी अग्नि में आहूति दे दो। फिर तुम जो भी कर्म करोगे वह तुम्हारा नहीं होगा। वह पूरे संसार का होगा, संसार के सेवार्थ होगा। इस प्रकार निष्काम पूर्वक किया गया कर्म संसार की सेवा के लिए ही होगा। संसार के हितार्थ किये गये कर्म पर परमात्मा प्रसन्न होता है और जीवात्मा को मुक्ति की प्राप्ति होती है। इसलिए तुम साधारण से साधारण कार्य भी लोक हितार्थ करो। इसी में तुम्हारा कल्याण है।

इसलिए हे आत्मा ! यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो अपनी जीवन चर्या को चार भागों में बाँट दो। पहले खंड में शरीर का ध्यान रखो। क्योंकि सारे साधनों में शरीर सबसे श्रेष्ठ साधन है। यह शरीर तुम्हें वरदान रूप में परमात्मा से मिला है। इस शरीर की पुष्टि के लिए तुम्हें भोजन करना आवश्यक है। अत: शुद्ध आहार करना, टहलना, सात्विक मनोरंजन करना, समय पर सोना और उठना, समय पर स्नान, ध्यान, योग आदि करना अति आवश्यक है। दूसरे खंड में तुम जिस भी सामाजिक मान्यता प्राप्त व्यवसाय से जुड़े हो उसमे चौथाई समय लगाओ। उसे पूरी निष्ठा और ईमानदारी से पूर्ण करो। तुम नौकरी या व्यवसाय जिस भी कार्य में जुड़े हो उसे कुशलता पूर्वक पूर्ण करो। तीसरा खंड सोने में व्यतीत करो। गृहस्त छ: घंटे सोये, पर योगी चार घंटे ही सोये तो अच्छा है। चौथे खंड में भगवान का भजन-कीर्तन, जप-तप, चिन्तन-ध्यान, स्वाध्याय और योगाभ्यास आदि करो। इस प्रकार से सात्विक जीवन व्यतीत करने वाला मनुष्य ही सद्गति को प्राप्त कर सकता है। इसलिए हे आत्मा ! तुम अपनी दिनचर्या को ऐसे ही सुगम बनाओ। ऐसा न हो कि सारा सयम मनोरंजन में समाप्त हो जाय, देहाभिमान में ही समाप्त हो जाय या धन-धान्य कमाने में ही लग जाय। तुम सदा याद रखो कि जिस परमात्मा ने तुम्हें संसार में भेजा है उसे स्मरण करना तुम्हारा परम कर्त्तव्य है। उसे भूलकर तुम सुख नहीं पा सकते। इसी प्रकार उपार्जन से प्राप्त धन-धान्य को भी तुम चार भागों में बाँट दो। एक भाग पर-सेवा में दान करो। शेष तीन भाग से ही अपने घर-परिवार का पालन पोषण करो। हे आत्मा ! तुम स्वतंत्र हो। इसलिए अपनी स्वतंत्रता का गलत उपयोग मत करो। उसका नाजायज फायदा मत उठाओ। तुम सदा याद रखो कि तुम्हारी हर चाल को परमात्मा देख रहा है। उससे कुछ भी छिपा नहीं है। इसलिए अपने कर्म को कर्मयोग बनाकर परसेवा में लगाओ। यही तुम्हारी सच्ची साधना है। तुम्हारा ध्यान क्षण भर को भी परमात्मा से न हटे। जिस वस्तु या व्यक्ति में तुम्हारी प्रीति हो उसे परमात्मा ही मानो। तुम सदा यह स्मरण रखो कि एक परमात्मा के अतिरिक्त संसार में और कुछ नहीं है। सब उसी की लीला है। यदि मन भटकता है तो बार-बार परमात्मा का स्मरण करो। सांसारिक संकल्प और विकल्प का त्याग करो। ये तुम्हारे मुक्ति में बाधक हैं। संकल्प-विकल्प तुम्हें संसार में बाँधेगे जिस कारण तुम परमात्मा से विमुख हो जाओगे।

हे आत्मा ! चाहे पापी मानव हो या पुण्यात्मा; परमात्मा किसी को भी अपने पास आने से नहीं रोकता। वह तो बस इतना ही चाहता है कि तुम सदा आनन्दित रहो। ईश्वर सभी प्राणियों का पिता है। अत: वह भेद-भाव कैसे कर सकता है। वह न किसी के प्रति

राग करता है और न द्वेष करता है। दुराचारी से भी परमात्मा द्वेष नहीं करता। उस पर भी वह सदा अपनी करुणा और कृपा बरसाता रहता है। उसके द्वारा दिया गया दुख भी उसके प्रेम का ही परिचायक है। वह दुख देकर तुम्हें तुम्हारे कर्त्तव्यों के प्रति सजग करता है। तुम्हारे पापों को हरता है। तुम्हें साफ और शुद्ध करता है। वह तो ऐसी माँ के समान है जिसके हृदय में कभी विषमता आती ही नहीं। वह अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी सबके प्रति समान भाव रखता है। इसलिए हे आत्मा तुम संसार को भगवान का ही रूप जानो। संसार में जो कुछ भी है वह सब परमात्मा की कृपा ही है। तुम ऐसा जानो कि यह संसार नहीं परमात्मा ही प्रगट रूप में विद्यमान है। इस प्रकार हे आत्मा! तुम अपने संपूर्ण जीवन काल को परमात्मा की सेवा में लगा दो। अगर तुम जीवन भर परमात्मा का चिन्तन करते रहे तो ही अंत घड़ी में परमात्मा याद आयेगा। अन्यथा घर-परिवार, धन-धान्य आदि सांसारिकता की ही याद आयेगी जो तुम्हारे पतन का कारण होगी। क्योंकि अन्त घड़ी में जैसा स्मरण होता है वैसा ही मानव का पुनर्जन्म होता है। और वैसी ही योनि मिलती है। इसलिए हे आत्मा! यदि तुम संसार की याद करोगे तो संसार में आओगे और भगवान की याद करोगे तो भगवान के धाम परमधाम को जाओगे। अतः तुम्हें निर्णय करना है कि तुम किस राह के राही बनना चाहते हो। लेकिन हे आत्मा! तुम इतना याद रखना कि परमात्म-तत्व में चित्त लगाने से ही तुम्हारा कल्याण होगा। संसार में आसक्त होने से बंधन और नर्क ही मिलेगा।

हे आत्मा! जिस दिन तुम्हारा विवेक जाग्रत हो जायेगा और जिस दिन तुम जान लोगे कि 'मैं आत्मा हूँ, मैं शरीर नही हूँ' उस दिन तुम इस जड़ शरीर से जो भी कार्य करोगे वे सभी सतोगुणी होंगे। उनमें राग या द्वेष नहीं होगा, उनमें कामना या ममता नहीं होगी, उनमें सुख या दुख नहीं होगा, और उनमें अनुकूलता या प्रतिकूलता नहीं होगी। मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ तुम्हें भ्रम में नहीं डाल सकेंगे। क्योंकि इन पर विवेक का अधिकार होगा। उस समय तुम भी पवित्र होगे और तुम्हारे द्वारा संचालित देह और देह के सभी कार्य पवित्र होंगे।

हे आत्मा! तुम्हें परमात्मा को ढूढने घर-द्वार छोड़ कर कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। परमात्मा हर व्यक्ति, वस्तु, घटना, परिस्थिति और क्रिया में विद्यमान है। वह हर स्थिति में प्राणी मात्र पर मेहरबान है। वह कभी भेद नहीं करता। वह निर्जीव पेड़-पौधों में है तो सजीव मानव और पशु पक्षियों में भी है। वह जल में है, तो थल में भी विद्यमान है। वह आकाश में है तो पाताल में भी है। वह पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारो दिशाओं में मौजूद है। इसलिए तुम्हें उसे पाने के लिए कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। सब कुछ

उसका है, सब कुछ उसके लिय है ऐसा भाव उसे द्रवित कर देता है। तुम जो भी करो उसके लिए करो। 'तेरा तुझको अर्पित क्या लागे मेरा' की भावना से सब कुछ उसके ही चरणों में अर्पित कर दो। हे परमात्मा जो कुछ है सब तेरा ही है, मेरा तो कुछ नहीं है। यह शरीर भी तेरी ही कृपा का प्रसाद है। संसार में सब साधन तेरी ही करुणा से विद्यमान हैं। तेरे अलावा मेरा कौन है, मेरे सभी कर्म तुम्हारे लिए हैं। इस प्रकार समर्पित भाव से किया गया कर्म कर्मयोग हो जायेगा। तुम्हें जंगल में या हिमालय पहाड़ पर जाने की जरूरत नहीं है। घर एक मंदिर है। उसे अपने सतकर्मो से इतना पवित्र बनाओ कि वह परमात्मा की पूजा स्थली बन जाय। तुम्हारे सारे कर्म पूजा हो जाँय। विवेक रूपी दीपक के प्रकाश में घर का कोना-कोना जगमगा उठे। और घर में ही परमात्मा प्रगट हो जाय।

हे आत्मा ! तुम्हारे कल्याण के लिए परमात्मा ने तुम्हें यह मानव शरीर दिया है। अगर उसे तुम्हारा कल्याण न करना होता तो तुम्हें यह मानव तन क्यों देता ? तुम्हारे भीतर मन, बुद्धि, विवेक क्यों भरता ? ज्ञान इन्द्रियों और कर्म इन्द्रियों से तुम्हें क्यों सुशोभित करता ? वास्तव में परमात्मा तुम्हें चौरासी लाख योनियों में तपाकर, नर्क की यातनाओं से तुम्हारे पापों को धोकर तुम्हें शुद्ध किया है। तभी तुम्हें यह मानव शरीर मिला है। इस शुद्ध-बुद्ध शरीर से तुम्हें अपना कल्याण करना है। तुम अपने विवेक का उपयोग कर यह चिन्तन करो कि तुम्हारा कल्याण राग और द्वेष में है , संसार से नेह लगाने में है, संसार का सुख-दुख भोगने में है या राग और द्वेष से मुक्त होने में है, ईश्वर से प्रेम करने में है, सुख-दुख से मुक्त परमात्मा के सत-चित-आनन्द स्वरूप में नेह लगाने में है। चिन्तन करते समय तुम यह याद रखना कि ये राग और द्वेष समय पा कर मिट जायेंगे, संसार का प्रेम समाप्त हो जायेगा और सांसारिक सुख-दुख बदलते रहेंगे। परन्तु हे आत्मा ! परमात्म-प्रेम कभी नहीं बदलता। एक बार मिल जाने पर फिर उसका कभी खोना नहीं होता। उसके सानिध्य से मिली हुई शान्ति और आनन्द कभी कम नहीं होती। उसके राज्य में ज्ञान का प्रकाश सदा जलता रहता है। अब निर्णय तुम्हें करना है कि कौन सा पथ तुम्हें प्रिय है। तुम प्रकृति के बंधन में बँधना चाहते हो या परमात्मा से प्रेम कर स्वतंत्र और मुक्त होना चाहते हो। तुम अपने को नर्क में डालना चाहते हो या फिर परमधाम का वासी बनना चाहते हो। यह अंतिम अहम निर्णय तुम्हें ही करना है।

हे आत्मा ! इस ज्ञान-विज्ञान को बतलाना मेरा उत्तरदायित्व था; जिसे मैंने पूर्ण किया। तुम स्वतंत्र हो। तुम समर्थ पिता के समर्थ पुत्र हो। तुम्हारे पास मन, बुद्धि और

विवेक है। इसलिए तुम्हें अपना रास्ता खुद चुनना है। अब तुम्हीं निर्णय करो कि परमात्मा से प्रेम कर अपने घर परमधाम जाना चाहते हो या संसार में बँध कर पच-पच कर मरना चाहते हो। परंतु हे आत्मा ! तुम निर्णय लेने से पूर्व इतना जरूर सोचना कि तुम एक आत्मा हो, तुम नित्य हो, तुम अपरिवर्तनशील हो, तुम अविनाशी हो, तुम परमात्मा के पुत्र हो और परमधाम ही तुम्हें जाना है। तुम देह नहीं हो, देंह अनित्य है, देह प्रकृति का अंश है, देह परिवर्तनशील है, देह विनाशी है, देह एक दिन अवश्य नष्ट हो जायेगा। हे आत्मा ! यही मूल मंत्र है। इसी मूल मंत्र पर तुम अपनी पूरी श्रद्धा, पूरी आस्था और पूरा विश्वास रखना।

परिचय
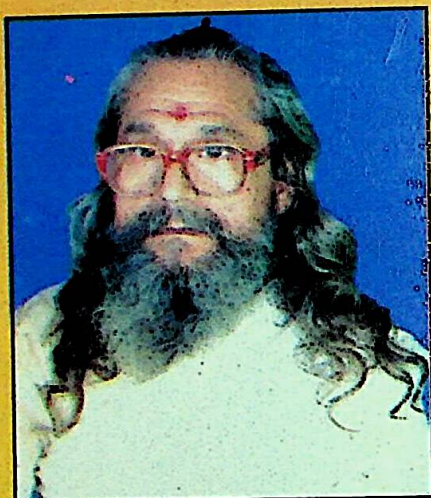
1. नाम -चन्दरदास
2. पूरा नाम-चन्दशेखर उपाध्याय शास्त्री
3. जन्म-25/7/1948
4. स्थान ग्राम-अजाँव, जिला-वाराणासी, (उ.प्र.)
5. पिता-स्वर्गीय श्री उमाशंकर उपाध्याय
6. माता श्रीमती राजमती देवी
7. शैक्षणिक योग्यता-एम.ए. (हिन्दी)
8. अन्य कृतियाँ-कल और आज, प्रियदर्शिनी इन्द्रिरा गाँधा, वसुधैवकुटुम्बकम (महाकाव्य)
9. वर्तमान स्थाई पता-म.न 647, ज्ञानदीप विद्यापीठ, विद्यानगर लालचौकी, खण्डवा, (म.प्र.)
10. वर्तमान में लेखक मध्य प्रदेश राज्य सहकारी विपणन संघ मर्या. खण्डवा में सहायक प्रबंधक के पद पर कार्यरत हैं।

मुद्रक : जिला सहकारी संघ मुद्रणालय (खण्डवा) फोन : 2223374